CC-0. Academic Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञान लोक

२

धरती माता

कृष्णवल्लभ द्विवेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञानलोक

नई पीढ़ी का ज्ञानकोश

२

धरती माता

: भूविज्ञान : पृथ्वी की कहानी :

: लेखक :

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

4641

State Museum Library Lucknow

प्रकाशन-गृह : पानदरीबा, लखनऊ

ज्ञानवर्द्धक साहित्य के प्रकाशक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशकीय वक्तव्य

नए भारत के उदय के साथ हमारे ऊपर अनेक नवीन उत्तरदायित्वों का भार आ गया है ! इनमें से एक है—देश के भावी नागरिकों का स्थान ग्रहण करनेवाली नई पीढ़ी की उचित शिक्षा-दीक्षा का !

उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली पाठ्य-पुस्तकों के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान की सामान्य जानकारी करानेवाली अन्य सहायक पुस्तक-पुस्तिकाओं की कितनी अधिक आवश्यकता है, यह बताने की जरूरत नहीं है ।

आज यह निर्विवाद स्वीकार किया जा रहा है कि केवल भाषा, गणित या इतिहास-भूगोल की टकसाली जानकारी कराकर ही शिक्षा की लक्ष्य-पूर्ति नहीं की जा सकती ।

आज का युग 'विज्ञान-युग' है ! 'विज्ञान' ही इस युग का मेरुदण्ड है । आज आदमी रेडियो-टेलिविजन, जेट-वायुयान और रॉकेट-भूउपग्रह आदि चमत्कारों के द्वारा तो पृथ्वी को मानो एक तिलिस्म बना ही रहा है, साथ ही परमाणु-शक्ति की कुंजी पाकर, आज वह अन्य लोकों की सैर करने के लिए अंतरिक्ष में छलाँग मारने को भी तैयार खड़ा है !

अतः आज की शिक्षा की पुकार है—नई पीढ़ी को ज्ञान-विज्ञान से सुसज्जित कर वैज्ञानिक दृष्टि से अभिभूत कर देना !

यही है 'ज्ञानलोक' के आविर्भाव की पृष्ठभूमि और यही इस प्रकाशन का बीड़ा उठाने के लिए सन्नद्ध करनेवाली मुख्य प्रेरणा है !

हिन्दी के प्रकाशन-क्षेत्र में ज्ञानवर्द्धक साहित्य का नवीन कीर्तिमान स्थापित करनेवाली इस ग्रंथमाला की विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक भाग अपने विषय की एक स्वतंत्र और परिपूर्ण पुस्तक है । ये पुस्तकें अपने-अपने विषयों के शुष्क टकसाली संकलन जैसी नहीं, वरन् पाठकों की मानसिक पृष्ठभूमि के अनुरूप विशेष रूप से लिखी गई ज्ञान-विज्ञान के विविध अंगों की रोचक कहानियाँ हैं !

संशोधित नवीन संस्करण

१९६९ ई०

: सर्वाधिकार स्वरक्षित :

मूल्य

प्रति भाग दस रुपए

मुद्रक : : नव ज्योति प्रेस, लखनऊ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्या और क्यों ?

ज्ञा न लो क

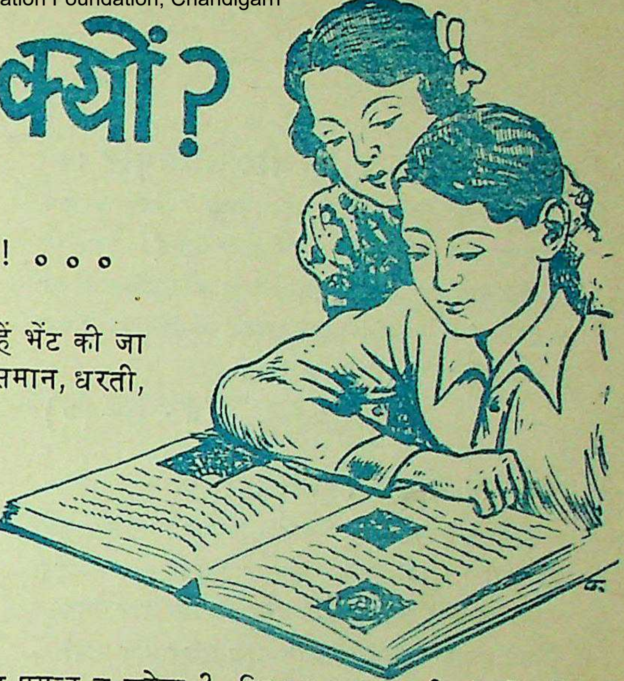

उगती हुई पीढ़ी के पाठको ! ० ० ०

'ज्ञानलोक' के नाम से तुम्हें भेंट की जा रही यह सचित्र पुस्तकमाला आसमान, धरती, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु और मनुष्य की अचरज से भरी उस दुनिया का एक मनोरंजक चित्रपट है, जिसके रहस्यभरे परदे के उस ओर ताकने-झाँकने को शायद तुम्हारा जी हर घड़ी ललका करता होगा। भला, तुममें से कौन होगा, जो उस दुनिया की सैर करना पसन्द न करेगा ? किसका मन उसकी रंग-बिरंगी झाँकियाँ देखने को एकबारगी ही न उमग पड़ेगा ? शायद तुम्हें खेल-तमाशा देखना सबसे ज्यादा पसंद है ! भला, इससे अधिक रोचक और बढ़िया खेल-तमाशा दूसरा क्या होगा, जिसे कि प्रकृति ने हमारे चारों ओर रच रक्खा है ?

तो फिर आओ, इस चित्रपट के द्वारा प्रकृति की उस अनूठी दुनिया की ओर तुम्हें ले चलें ! और सबसे पहले तुम्हें दिखाएँ उस अद्‌भुत आकाश के कौतुकों की एक झलक, जोकि अपने अनंत पसार में अनगिनत लट्‌टुओं की तरह सूरज, चाँद, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, नीहारिकाओं आदि को लगातार नचाता हुआ न जाने कब से कौन-सा खेल किसके लिए रचाए हुए है !

तब दिखाएँ उस हरी-भरी प्यारभरी धरती माता के अनोखे रूप की भी कुछ झाँकियाँ, जिसकी कि गोद में पलकर हम सब अपने जीवन का खेल खेलते, हँसते-रोते, लड़ते-झगड़ते और भाँति-भाँति के खेल-खिलौनों की रचना करते हुए इस सूने आसमान में सूर्य के आसमास लगातार चक्कर लगा रहे हैं !

और इसी तरह बारी-बारी से देखें पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं और मनुष्य की उस चहलपहल से भरी अनोखी दुनिया को भी, जिसकी कि बदौलत यह धरती इतनी रंगीन और सजीव है और मनुष्य होने के नाते जिससे हमारा इतना ज्यादा लगाव है !

यह सब तुम्हारे लिए बड़ा आवश्यक कर्त्तव्य है——केवल इसीलिए नहीं कि इससे तुम्हारा जी बहले, बल्कि इसलिए भी कि तुम्हारे ज्ञान का भंडार भरता चला जाय और सच्चे अर्थ में तुम इस 'धरती के लाल' बन सको !

यह है तुम्हारे लिए अँधेरे से उजाले की ओर बढ़ने का पहला पाठ——इस दुनिया के बाहरी रूप की झाँकी पाकर अंत में उसके भीतरी रहस्य की खोज करने और उसी प्रयत्न में अपने आपको भी पहचानने की पहली तैयारी ! ० ० ०

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी—हमारी जननी और लीलाभूमि :

जीवन की दिव्य दीपशिखा—पृथ्वी के रूप, आकार, आधार आदि के बारे में प्राचीन मान्यताएँ—वैज्ञानिक समाधान के आदि प्रयास—आज के विज्ञान की निगाह में पृथ्वी—हमारे प्रस्तुत अध्ययन का दायरा—'भूविज्ञान' :: क्या और क्यों।

(पृ० ७–१२)

पृथ्वी की जीवन-कहानी :

पृथ्वी कैसे जनमी और कब—आग का दहकता हुआ गोला :: पृथ्वी के जन्मकाल का पहला प्रहर—धरती की कोख से चन्द्रमा का जन्म—अग्नि और वरुणदेव का संग्राम :: हजारों बरस तक मूसलाधार वर्षा—जल-स्थलखंडों का निर्माण—पृथ्वी पर जीवन का प्रस्फुटन :: धरती माता बनी—चट्टानों की पर्तों पर अंकित पृथ्वी की अद्भुत आत्मकथा—धरती के भूभौतिक इतिहास का तिथिपत्र—प्रस्तरविकल्प या पाषाणभूत ठठरियाँ—प्री-कैम्ब्रियन युग—कैम्ब्रियन युग—आर्डोविशियन, सिलूरियन और डेवोनियन युग—कार्बोनिफैरस और पर्मियन युग—ट्रायेसिक, जुरासिक और क्रिटेशश युग—उरंगम-वर्ग के भीमकाय प्राणी—टर्टिएरी और क्वाटर्नेरी युग—अभिनव कल्प के प्रभातकाल में पृथ्वी की झाँकी—मनुष्य का प्रादुर्भाव—धरती का रूप निरन्तर बदलता रहा है—क्या कभी भूपृष्ठ के सभी स्थलभाग एक थे—'अटलांटिस' नामक लुप्त महाद्वीप की समस्या।

(पृ० १३–३०)

महाद्वीप और महासागर :

भूपृष्ठ का मानचित्र कैसे उतारा जाय :: भाँति-भाँति के प्रक्षेप—अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ—शून्य अक्षांश या भूमध्यरेखा तथा शून्य देशान्तर—'यूरेशिया' अर्थात् एशिया और योरप—अफ्रीका—उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका—ऑस्ट्रेलिया—पंच महासागर—धरातल का प्राकृतिक विभाजन—शीत कटिबन्ध—समशीतोष्ण कटिबन्ध—उष्ण कटिबन्ध।

(पृ० ३१–४०)

भूगर्भ का रहस्य :

धरती का अन्तराल : 'सेंट्रोस्फीयर' नामक केन्द्रीय पिण्ड—'बैरीस्फीयर' और 'लीथोस्फीयर' नामक ऊपरी पर्तें—भूगर्भ के बारे में प्राप्त अब तक की जानकारी—भूगर्भ कितना उष्ण है।

(पृ० ४१–४४)

चट्टानों की कहानी :

तीन प्रकार की चट्टानें : आग्नेय, जलज और रूपान्तरित—आग्नेय चट्टानें :: ग्रेनाइट, बेसाल्ट और हाइपैसिबल वर्ग की शिलाएँ—जलज या तलछटी परतीली चट्टानें—बलुआ चट्टानों का रचना-क्रम :: 'कांग्लोमिरेट', 'मडस्टोन', 'शेल' आदि—'लाइमस्टोन', 'खड़िया' आदि के स्तर—रूपान्तरित चट्टानें :: स्लेट, संगमर्मर आदि—रूपान्तरीकरण की अन्य विधियाँ :: अबरक, हार्नब्लैण्ड आदि की रचना—शिला-रसायन अर्थात् चट्टानों की रचना करनेवाले रासायनिक और खनिज तत्व—सिलिकेट खनिज-समूह—अन्य महत्वपूर्ण खनिज-समूह—चट्टानों की व्यवस्था और अव्यवस्थाएँ :: स्तर-रचना, जोड़, मोड़, स्तर-स्खलन, अन्तर्प्रवाह, शिलाभित्ति, अधोशिला, शिलापट, शिलाछत्रक आदि—चट्टानों का पुटीकरण कैसे हुआ—आकुंचन या मोड़—स्तरों के मध्यवर्ती जोड़ या 'ज्वाइंट'—स्तर-स्खलन या 'फाल्ट'—स्तर-स्खलन के तीन प्रकार—शिलाओं का अन्तर्प्रवाह :: 'शिलाभित्ति', 'अधोशिला' आदि।

(पृ० ४५–६०)

ज्वालामुखी और भाप के फव्वारे :

ज्वालामुखी :: क्या और क्यों—निकास-नली या 'क्रेटर' का निर्माण—जाग्रत और सुप्त ज्वालामुखी—प्रमुख ज्वालामुखी-शृंखलाएं—'विसुवियस', 'एटना' और 'स्ट्राम्बोली' नामक प्रसिद्ध ज्वालामुखी—हवाई द्वीप के अद्भुत अग्निकुंड—'माण्ट पेली' नामक ज्वालामुखी का भीषण उद्गार—क्राकातोआ द्वीप का महान् विस्फोट—गाइसर या भाप के फव्वारे—'धुँआरे' और 'पंक-ज्वालामुखी'।

(पृ० ६१–७०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब धरती हिल उठती है :

भूकंप के कारण—कंपन-लहरों की उत्पत्ति और गतिविधि—पृथ्वी के प्रधान भूकंप-क्षेत्र—एशियाई क्षेत्र के उल्लेखनीय भूकंप—पश्चिमी क्षेत्र के महान् भूकंप—पचास वर्षों में डेढ़ लाख भूकंपों का दौरा—क्या आनेवाले भूकंपों की पूर्वसूचना दी जा सकती है।

(पृ० ७१–७६)

जलमंडल :

जलमंडल कितना गहरा है—सागर में कुल कितना पानी है—गहराई का असाधारण दबाव—सागर की गहराई कैसे नापी जाती है—भीतर छिपी हुई गिरिश्रृंखलाएँ—सागरतल का मानचित्र—समुद्रजल का ताप और रंग—महासागर जलभंडार ही नहीं, रत्नभंडार भी है—सागर सदैव बेचैन-सा क्यों रहता है :: उसकी हलचल के कारण—सागर के अंचल में बहनेवाली जलधाराएँ—'गल्फ स्ट्रीम—अन्य महत्व-पूर्ण धाराएं—ज्वार-भाटा का कौतुक :: क्या और क्यों।

(पृ० ७७–८८)

वायुमंडल और ऋतुओं का चक्र :

अनोखा रक्षाकवच—वायुमंडल के तीन महाविभाग :: (१) सबसे निचला स्तर 'ट्रापोस्फीयर'—(२) 'स्ट्रेटो-स्फीयर' नामक मध्यवर्ती स्तर—(३) 'आयनोस्फीयर' नामक अंतिम सर्वोच्च स्तर—वायुमंडल किन पदार्थों से बना है—वायुमंडल में संचित प्रकृति की महान् जलराशि—बादल :: क्या और क्यों—वर्षा का रहस्य—वायुमंडल में दवाव की घट-बढ़—हवाएँ :: क्या और क्यों—प्रमुख वायुक्षेत्र और उनमें बहने-वाली हवाएँ—आँधी, तूफान, बवंडर, चक्रवात आदि—बवंडर कैसे उपजते हैं—जलस्तंभ :: क्या और क्यों—मौसम की जाँच—ऋतुओं का चक्र—पृथ्वी के अक्ष के झुकाव की करामात—वसंत और शरद संपात।

(पृ० ८९–१०३)

धरती कैसे रूप बदलती है :

धरती के रूप-परिवर्तन की लीला संतत जारी है—धरातल की तोड़-मरोड़ और पुनर्रचना का महायज्ञ—इस लीला में भाग लेनेवाली प्रमुख शक्तियाँ—जल का क्रिया-कलाप—नदियों, झीलों आदि के निर्माण की कहानी—घाटी-निर्माण—हिमानी या तुषार-नदी—धरातल के रूप-परिवर्तन में हिमानी का योगदान—सागर की करतूत—समुद्रजल द्वारा स्थल के विखंडन की क्रिया—सागर का रचनात्मक कार्य—आभ्यन्तरिक जल की क्रिया-प्रक्रिया—वायु द्वारा भूतल का उलटफेर—धरती के रूपान्तरीकरण में भाग लेनेवाली अन्य शक्तियाँ—पर्वतमालाओं का उद्भव और विकास।

(पृ० १०४–१२०)

शुद्धि-पत्र

छापते समय रह जानेवाली निम्न अशुद्धियों को कृपया सूचित पृष्ठों पर शुद्ध कर लें :

पृष्ठ	स्थल	अशुद्धि	शुद्ध रूप
९	पंक्ति २०	चुके	चूंके
११	पंक्ति २२	धन	घन
१४	पंक्ति ३४	विषवत्	विषुवत्
१४	पंक्ति ३५	गसीय	गैसीय
१८	पंक्ति २०	जोड़ो	जोड़ी
१८	पंक्ति २३	गय	गया
२१	टिप्पणी (चित्र)	'डैवोनिवन	'डैवोनियन
२३	टिप्पणी (चित्र)	बनी	बनीं
२५	पंक्ति १	खड़	खड़े
२७	पंक्ति १६	गई	गईं
२८	पंक्ति ६	प्रादुर्भाव	प्रादुर्माव
३२	पंक्ति १०	शंकु की	शंकु के
३६	पंक्ति २५	संपति	संपत्ति
३८	पंक्ति १२	अथात्	अर्थात्
३९	पंक्ति १४	हैं	है
४०	पंक्ति १	क्षत्र	क्षेत्र
४५	पंक्ति १८	हैं	है
४६	पंक्ति १	इन्ही	इन्हीं
४६	पंक्ति ३२	कहीं-कही	कहीं-कहीं
५०	पंक्ति ६	विशष	विशेष
५२	पंक्ति २	जसी	जैसी
५५	टिप्पणी (चित्र)	मूल्यवान	मूल्यवान्
६५	पंक्ति ११	है	हैं
६९	पंक्ति २६	पराकष्ठा	पराकाष्ठा
७४	पंक्ति १५	भूकंप में	भूकंप ने
७४	पंक्ति ३५	है	हैं
७८	पंक्ति ३६	करोड़घन किलोमीटर	करोड़ घन-किलोमीटर
८०	पंक्ति ८	डौ०	डा०
८८	पंक्ति ३५	साउ थैम्पटन	साउथैम्पटन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमंडल का सर्वोच्च स्थल––हिमालय का 'एवरेस्ट' शिखर

संसार की इस सबसे ऊँची पर्वतीय चोटी की ऊँचाई (समुद्र की सतह से) लगभग ८८०८ मीटर आँकी गई है। यह गौर करने की बात है कि पृथ्वी का स्थलभाग अधिक से अधिक जितना ऊँचा है उससे जलभाग अर्थात् महासागर की अधिकतम गहराई, जिसका आँक १०,८६३ मीटर है, कहीं अधिक ! वस्तुतः स्थलखण्ड की औसत ऊँचाई जहाँ ७५० मीटर है, वहाँ जल मंडल की औसत गहराई लगभग ४००० मीटर पाई गई है ! (दे० पृ० ७७-७८ का मैटर)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'यह धरती माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ*'—इन भावभरे शब्दों में, आज से हजारों बरस पहले ही, वैदिक युग के हमारे किसी पुरखे के मुख से इस हरी-भरी माता वसुन्धरा की आरती उतारी जा चुकी है ! उसे सिवाय 'मा' के दूसरे किस नाम से पुकारा जाय ? उसी की कोख से तो मूलतः हम सब उपजे ! उसी की गोद में तो वनस्पति और जीव-जन्तुओं की चहलपहल से भरी यह चेतन सृष्टि क्रमशः विकसित हुई ! इस जननी की महिमा का बखान हम किस प्रकार करें ? न केवल हमारा जीवन, बल्कि हमारी सारी सभ्यता और संस्कृति भी तो उसी की देन है । यदि उसका प्यारभरा हाथ हमारे माथे पर से हट जाय, तो न केवल हमारे ये खेत-खलिहान, उद्योग-धंदे, कल-कारखाने और ज्ञान-विज्ञान के चमत्कार ही काफूर हो जाएँगे, बल्कि हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा !

जीवन की दिव्य दीपशिखा

यह सही है कि विश्व-ब्रह्माण्ड के असीम विस्तार में पसरे हुए एक से एक तेजस्वी आकाशीय कौतुकों के आगे हमारी इस लीलाभूमि की विशेष पूछ नहीं हो सकती । उन सबके विराट् आकार, प्रचंड तेज और दीर्घ आयुष्य के सामने इस नन्हें-से ग्रह की बिसात ही क्या ? फिर भी अपनी एक विशेषता के नाते इस छोटे-से पिंड को वह महत्व प्राप्त

*'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'—(अथर्ववेद, पृथ्वी-सूक्त, १२) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, जो विश्व में बिरले ही लोकों को नसीब होगा। यह विशेषता है उसे उपलब्ध 'जीवन' या 'चेतन सृष्टि' का वरदान ! वैज्ञानिकों का कहना है कि यह दुर्लभ वर ब्रह्माण्ड के गिने-चुने पिंडों को ही प्राप्त है ! तो फिर, क्यों न हम अपना भाग्य सराहें, क्यों न अपने को धन्य मानें कि हम उस माता की संतान हैं, जोकि विश्व की जीवन-ज्योति की एक दिव्य दीपशिखा है--जोकि इस 'जड़' जगत् में 'चेतन' की जीती-जागती प्रतिमा है ! इस माता को हमारा शत-शत बार प्रणाम है ! हमारी यही कामना होनी चाहिए कि 'वसुधैव कुटुंबकम्' के आदर्श के अनुरूप इसकी समस्त संतानों की मूलभूत एकता के सत्य को साकार बनाते हुए, हम अपना 'पृथ्वी-पुत्र' नाम सार्थक करें ! यही इसकी श्रेष्ठतम पूजा है !

पृथ्वी के रूप, आकार, आधार आदि के बारे में प्राचीन मान्यताएँ

यह एक अजीब-सी बात है कि हजारों-लाखों वर्षों से इस धरती की गोद में बसने पर भी, उसके बारे में जो कुछ 'वैज्ञानिक' जानकारी आज हमें उपलब्ध है, वह पिछले कुछ सौ साल की ही कमाई है ! वरना कई हजार वर्ष तो हमने इस भ्रम में ही गुजार दिए कि पृथ्वी गोल नहीं, चपटी है ! उसकी कोई गति नहीं, वह अचला है ! वह स्वयं किसी के आसपास नहीं घूमती, बल्कि सूर्य एवं तारे आदि सब कोई उसे ही केन्द्र बनाकर आसमान में चक्कर काट रहे हैं ! इसी तरह से उसके रूप और आकार, स्थिति और आधार, आदि के बारे में भी शताब्दियों तक भाँति-भाँति की धारणाएँ लोगों के मन पर छायी रहीं। इसकी साक्षी पुराने जमाने में देश-देश में प्रचलित इस संबंधी मान्यताएँ हैं।

उदाहरण के लिए, स्वयं अपने ही देश की पौराणिक धारणाओं को लो ! उनके अनुसार पृथ्वी शेषनाग के हजार फनों पर स्थित मानी गई है। जब शेषनाग अपना मस्तक झकझोर देते हैं, तभी वह हिल उठती और हमें 'भूकंप' का अनुभव होता है ! उसे इस प्रकार डगमगाने से रोकने के लिए ही आठों दिशाओं में आठ हाथी खड़े हैं। ये 'दिग्गज' या 'दिग्पाल' कहलाते हैं। अन्य एक कथा के अनुसार भगवान् विष्णु ने, एक विशाल कछुए का रूप धरकर, पृथ्वी को अपनी पीठ पर उठाए रक्खा है। इस पुराणकल्पित वसुन्धरा के 'जंबू', 'प्लक्ष', 'शाल्मलि', 'कुश', 'क्रौंच', 'शाक' और 'पुष्कर' नामक सात 'द्वीप' (विशाल भूखंड) एवं उन्हें एक-दूसरे से अलग करनेवाले 'क्षार', 'लवण', 'क्षीर', 'दधि', 'रस' आदि सात 'समुद्र' प्राचीन भारतवासी माना करते थे। उनके मतानुसार जंबू द्वीप के बीचोबीच खड़े 'सुमेरु' नामक दिव्य पर्वत पर ही देवताओं का निवास है तथा 'अतल', 'वितल', 'सुतल', 'तलातल', 'महातल', 'रसातल' और 'पाताल' नामक सात अधोलोकों में दैत्य, दानव, असुर, नाग आदि के आवासस्थल हैं !

प्राचीन भारत की भाँति यूनान, मिस्र, सुमेर, बाबुल आदि के पुरातन लोगों की भी पृथ्वी के बारे में अपनी-अपनी विचित्र मान्यताएँ थीं। यूनानी लोग इस धरती को बारह खंभों पर टिकी हुई एक सपाट थाली जैसी मानते थे। इन खंभों को वे 'हरक्यूलीज के खंभे' कहकर पुकारते और यह विश्वास करते थे कि जब मनुष्य उचित धर्म-कर्म से विमुख होने लगते हैं, तो ये खंभे डगमगा जाते हैं एवं पृथ्वी हिल उठती है ! उनकी एक धारणा यह भी थी कि पृथ्वी को एटलस नामक एक दैत्य ने शापवश अपने कंधों पर उठाए रक्खा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है ! उधर मिस्र तथा बाबुल-सुमेर के प्राचीन निवासी पृथ्वी को एक विशाल कक्ष की फर्श मानते थे, जिसके ऊपर सितारों से खचित आसमान का गुंबद तना था ! मिस्रवालों के मतानुसार उक्त गुंबद चार खंभों पर तथा बाबुल-सुमेर के लोगों के विचार में वह समुद्र के जल में से ऊपर उठी हुई दीवारों पर टिका था।

परन्तु प्राचीन मान्यताओं में सबसे विनोदी धारणा तो तिब्बत के निवासियों की थी, जो पृथ्वी को विशाल मेंढकों की पीठ पर टिकी हुई मानते थे ! तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि धरती के रूप, आकार आदि के समाधान की खोज में लोगों ने कभी उसे चौकोर या तिकोनी माना, तो कभी छः पहलवाली, शंखाकार, ढोलक की शक्ल की, अंडाकार अथवा कमलपत्र-सी सपाट भी कल्पित किया ! यहाँ तक कि बहुतेरे यह कहते हुए भी नहीं चुके कि यदि उसके सीमान्त पर पहुँचकर उस ओर झाँका जाय, तो नरक, पाताल आदि अधोलोकों की स्पष्ट झलक पाई जा सकती है !

वैज्ञानिक समाधान के आदि प्रयास

इस बीच कुछ जिज्ञासु मस्तिष्क, इन बेसिरपैर की अटकलों से संतुष्ट न होकर, इस संबंध में विज्ञानसम्मत समाधान पाने के प्रयत्नों में भी लीन रहे। उन्होंने लोगों में प्रचलित ऊटपटाँग धारणाओं को चुनौती दी और आज से हजारों साल पहले ही पृथ्वी के रूप, आकार आदि के बारे में ऐसी प्रस्थापनाएँ प्रस्तुत कीं, जो कि आधुनिक मान्यताओं के बहुत निकटवर्ती थीं। विज्ञान के इन अग्रदूतों में भारत के आर्यभट (पाँचवीं शताब्दी ईस्वी) तथा यूनान के पायथोगोरस (सातवीं

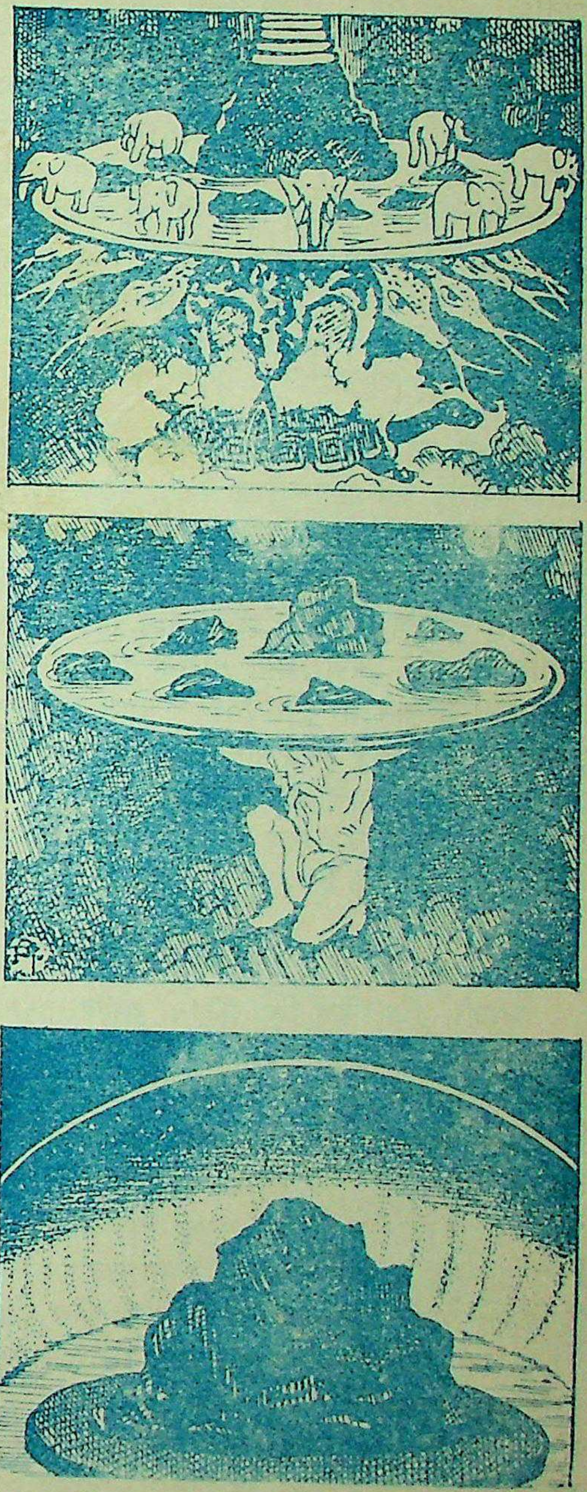

(ऊपर) प्राचीन भारतीय धारणानुसार पृथ्वी शेषनाग के फनों पर स्थापित है तथा आठ दिग्गज उसे डगमगाने से रोके हुए हैं। (बीच में तथा नीचे) यूनानी एवं मिस्री धारणाएँ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शताब्दी ईस्वी पूर्व), एरिस्टार्कस (चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व) एवं एराटोस्थीनीज (तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें आर्यभट ने पृथ्वी को एक गोला मानकर स्पष्ट शब्दों में यह उद्घोषित किया था कि वह आकाश में निरवलंब अर्थात् बिना किसी आधार के स्थित है। उसने पृथ्वी की धुरी का भी संकेत दिया था। पायथोगोरस भी पृथ्वी को एक गोला मानता था और एरिस्टार्कस ने तो यह घोषणा भी की थी कि यह गोला सूर्य की परिक्रमा करता है। तदनंतर एराटोस्थीनीज ने गणित द्वारा हिसाब लगाकर इस गोले की परिधि की नाप भी बता दी थी, जो आधुनिक वैज्ञानिक आँकड़ों से केवल साढ़े तीन सौ किलोमीटर ही कम थी! उधर यूनान के महान् तत्त्व-चिन्तक अरिस्टॉटल ने भी पृथ्वी की गोलाई सिद्ध करने के लिए भाँति-भाँति की युक्तियाँ प्रस्तुत की थीं।

परन्तु इन तेजस्वी विचारकों की बातों पर कान न देकर, सदियों तक लोग पुराने अंधविश्वासों की भूलभुलैया में ही भटकते रहे! यहाँ तक कि सिकन्दरिया का प्रकाण्ड ज्योतिषी टालमी भी (जिसका एक ग्रंथ लगभग डेढ़ हजार वर्षों तक पश्चिमी दुनिया का ज्योतिष का प्रमुख ग्रंथ बना रहा) यह कहते पाया गया कि पृथ्वी स्थिर है और उसी के आसपास सूर्य आदि सभी आकाशीय पिंड चक्कर लगा रहे हैं! इस भ्रम से आखिरकार कापर्निकस और गैलीलियो नामक दो क्रान्तिकारी ज्योतिषियों ने दुनिया को छुटकारा दिलाया। उन्होंने सौर परिवार के सदस्य के रूप में पृथ्वी की यथार्थ तस्वीर प्रस्तुत करके, अकाट्य रूप से यह सिद्ध कर दिया कि वह भी बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति आदि की भाँति एक ग्रह है, जो अपने अक्ष पर लट्टू की तरह घूमते हुए एक नियत कक्षा में अपने कुलपति सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। इस संबंध में विशेष विवरण तुम इस ग्रंथमाला के प्रथम खंड में पढ़ ही चुके हो।

आज के विज्ञान की निगाह में पृथ्वी

आओ, अब देखें कि पुरानी मान्यताओं से मुक्त होकर आज का विज्ञान पृथ्वी के विषय में क्या-क्या बातें हमें बताता है! सबसे पहले तो उसके आकार को ही लो! अब पृथ्वी की गोलाई के बारे में पुरानी टकसाली दलीलें पेश करने की तो आवश्यकता ही नहीं रह गई है। कारण, जेट-वायुयानों, रॉकेटों और अंतरिक्षभेदी भूउपग्रहों आदि में बैठकर मनुष्य अब तक पृथ्वी के गोले की न जाने कितनी परिक्रमाएँ लगा चुका है! साथ ही चाँद को भेजे गए रॉकेट-यानों द्वारा लाखों किलोमीटर की दूरी से पृथ्वी के ऐसे फोटोचित्र भी प्राप्त किए जा चुके हैं, जिनमें वह साफ-साफ एक गोले-सी देख पड़ती है! हाँ, यह बता देना जरूरी है कि गोलाकार कहलाने पर भी पृथ्वी ठीक गेंद जैसी गोल नहीं, वरन् नारंगी की तरह ध्रुवों पर कुछ-कुछ चपटी एवं भूमध्यरेखा पर तनिक अधिक फूली हुई-सी है। यही कारण है कि इसका व्यास ध्रुवों पर १२,६३९.३६ किलोमीटर तथा भूमध्यरेखा पर १२,७८२.५६ किलोमीटर पाया गया है। इसी तरह उसकी परिधि भी भूमध्यरेखा पर ३९,८४३.२ किलोमीटर तथा ध्रुवों पर ३९,७७६ किलोमीटर आँकी गई है। बहुत बारीक नाप लेने पर तो पृथ्वी की शक्ल ठीक नारंगी जैसी भी नहीं कही जा सकती। कारण, उसकी सतह पर की कोई भी अक्षांश रेखा एकदम सही वृत्त नहीं बनाती। यहाँ तक कि भूमध्यरेखा भी शुद्ध वृत्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं है। सच पूछिए तो पृथ्वी का अपना एक विशेष आकार ही है, जिसे हम चाहें तो 'पृथिव्याकार' संज्ञा प्रदान कर सकते हैं।

आओ, अब इस गोले की गतिविधि के बारे में भी कुछ आवश्यक बातें जान लें। जैसा कि इस ग्रंथमाला के पहले खंड में बताया जा चुका है, पृथ्वी की दो मुख्य गतियाँ हैं—एक तो अपने अक्ष पर लट्टू की तरह उसका वह दैनिक घुमाव, जिसे 'आवर्तन' कहते हैं; दूसरे, अपनी दीर्घवृत्ताकार कक्षा में सूर्य के आसपास का वार्षिक 'परिभ्रमण'। लगभग १,६०० किलोमीटर प्रति घंटे की गति से अपनी धुरी पर नाचते हुए, पृथ्वी का गोला 'आवर्तन' का एक चक्कर चौबीस घंटों में पूरा करता है। इसी तरह सूर्य से औसत चौदह करोड़ पच्चानवे लाख किलोमीटर की दूरी से ९३५,३६०,००० किलोमीटर लंबी अपनी दीर्घवृत्ताकार कक्षा के भ्रमण-पथ पर लगातार १०५,५६० किलोमीटर प्रति घंटा (अर्थात् २९ किलोमीटर प्रति सैकंड) की गति से दौड़ते हुए, उसे अपने कुलपति की एक परिक्रमा पूरी करने में लगभग ३६५। दिन लग जाते हैं। इन दो प्रमुख गतियों के अलावा, वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की और भी कई सूक्ष्म गतियों का पता लगाया है, जिनका उल्लेख हम प्रथम खंड में कर चुके हैं। वे साधारण जनों के लिए समझ में आनेवाली गतिविधियाँ नहीं हैं, न उनका हमारे लिए कोई व्यावहारिक महत्व ही है, अतः उनकी जानकारी यहाँ आवश्यक नहीं।

अंत में, इस विशाल गोले के बारे में नाप-तौल के कुछ और आँकड़े फिर से यहाँ दोहरा देना हम जरूरी समझते हैं, जोकि प्रथम खंड में पृथ्वी के विवरण के सिलसिले में दिये जा चुके हैं। तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि पृथ्वी की ऊपरी सतह का क्षेत्रफल है लगभग ५०४,३२०,००० वर्ग-किलोमीटर तथा उसका तौल ६,०६६,०००,०००,०००,०००,०००,००० मीट्रिक टन है! इसी तरह, उसका आयतन १,०६४,९६०,०००,००० घन-किलोमीटर तथा आसपास लिपटे हुए उसके अद्भुत वायुमंडल का वजन ११,७८५,६००,०००,०००,०००,००० मीट्रिक टन निर्धारित किया गया है! इन सब आँकड़ों से शायद तुम्हें कुछ अन्दाज हो सकेगा कि हमारी यह लीलाभूमि पृथ्वी दरअसल कितनी विशाल है!

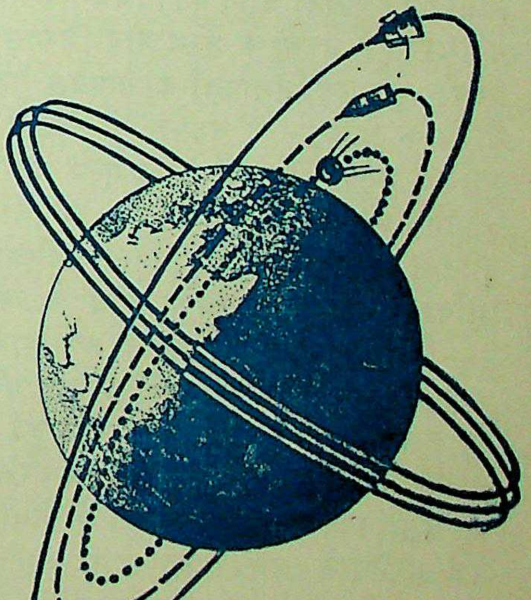

पृथ्वी के गोले के आसपास चक्कर काटते हुए 'कृत्रिम भूउपग्रह', जिनकी परिक्रमा के बाद उसकी गोलाई के प्रमाण देने की भला आवश्यकता ही क्या रह गई है!

हमारे प्रस्तुत अध्ययन का दायरा

पृथ्वी की कहानी में दरअसल भूमंडल के अंचल में फैले हुए सारे संसार की ही कहानी समाई हुई है। यह गाथा इतनी लंबी-चौड़ी और व्यापक है कि एक ही ग्रंथ की परिधि में उस पर समुचित प्रकाश कदापि नहीं डाला जा सकता। इसीलिए अलग-अलग पहलुओं से पृथक् विज्ञानों के अंतर्गत उसका अध्ययन किया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदाहरणार्थ, सौर परिवार के सदस्य के रूप में इसकी गतिविधियों का विवेचन 'ज्योतिष-विज्ञान (एस्ट्रानॉमी) के अंतर्गत होता है—जैसा कि इस ग्रंथमाला के प्रथम खंड में किया जा चुका है। तो उसके प्रांगण में विकसित वनस्पति, जीव-जन्तु एवं मनुष्य की रंग-बिरंगी चेतन सृष्टि का अध्ययन 'वनस्पतिशास्त्र' (बॉटनी), 'जंतुशास्त्र' (जूलॉजी), 'मानव-विज्ञान' (एन्थ्रापालॉजी) आदि-आदि विद्याओं के अधीन किया जाता है, जैसा कि आगे के खंडों में क्रमशः किया जायगा। इसी तरह पृथ्वी की स्थूल रचना (अर्थात् उसके ऊपरी चिप्पड़ एवं भीतरी अंतराल या 'भूगर्भ' की बनावट) तथा भूभौतिक हलचलों का अध्ययन 'भूविज्ञान' के अंतर्गत होता है। प्रस्तुत खंड में हमारा लक्ष्य इसी विज्ञान के दायरे तक सीमित है।

'भूविज्ञान' :: क्या और क्यों ?

अन्य कई विज्ञानों की तुलना में 'भूविज्ञान' अपेक्षाकृत एक नवीन विज्ञान है। कारण, उसका उद्भव और विकास पिछले कुछ सौ वर्षों की अवधि में ही हुआ है। वैसे 'भूगोल-शास्त्र' के रूप में पृथ्वी का अध्ययन सदियों से होता चला आ रहा है। परन्तु वह अध्ययन उसकी ऊपरी सतह के विविध भूखंडों, समुद्रों आदि की स्थिति एवं उनकी रूपरेखा आदि की छानबीन तक ही सीमित था। पृथ्वी की स्थूल बनावट, उसका निर्माण करने-वाले भूभौतिक तत्व, उसके चिप्पड़ के नीचे छिपे हुए अद्भुत शिलापर्त तथा रहस्यपूर्ण तप्त अंतराल आदि-आदि की वैज्ञानिक जानकारी पाने की दिशा में मनुष्य के कदम दर-असल पिछले कुछ दिनों से ही आगे बढ़ पाए हैं।

परन्तु 'भूविज्ञान' की सीमाएँ कम विस्तृत नहीं हैं। कारण, एक ओर जहाँ यह विज्ञान शिलापर्तों आदि का विवेचन करता है, वहाँ दूसरी ओर करोड़ों-अरबों वर्षों के अंचल में पसरी हुई धरती के जन्म और विकास की उस महत्वपूर्ण कहानी पर भी प्रकाश डालता है, जिसके पृष्ठ उन शिलापर्तों की क्रमबद्ध तहों में दबे पड़े हैं। इस रहस्यमय अतीत-कथा के उद्घाटन के अनुष्ठान से चट्टानों की तहों में प्राप्त होनेवाले बीते युगों के प्राणियों और पेड़-पौधों आदि के प्रस्तर-विकल्पों से बहुमूल्य सहायता मिली है। अतः उक्त प्रस्तरीभूत ठठरियों का अध्ययन भी इस विज्ञान का एक अनिवार्य अंग-सा बन गया है। इस प्रकार 'भूविज्ञान' एक दृष्टि से 'जंतुविज्ञान' एवं 'वनस्पति-विज्ञान' के साथ अन्योन्याश्रित भाव से जुड़ा हुआ है। 'भूविज्ञान' द्वारा ही 'विकासवाद' के आधुनिक सिद्धान्तों की पुष्टि हो पाई है।

उधर पृथ्वी के 'वायुमंडल' रूपी आवरण की हलचलों के अध्ययन से भी 'भूविज्ञान' अपने आपको दूर नहीं रख सकता। फलतः 'मौसम विद्या' या 'ऋतु-विज्ञान' जैसी महत्वपूर्ण विद्या भी उसके विस्तृत दायरे में सिमटी हुई है। इसी तरह धरातल की ऊपरी भूभौतिक रचनाओं एवं परिस्थितियों का विवेचन करनेवाले 'भूगोलशास्त्र', भाँति-भाँति के उपयोगी खनिजों की वैज्ञानिक जानकारी प्रस्तुत करनेवाले 'खनिजशास्त्र', सागर की गतिविधियों का खाका पेश करनेवाले 'समुद्रशास्त्र' आदि-आदि और भी कई विज्ञान उपांगों के रूप में इस बृहत् विज्ञान की परिधि में समाए हुए हैं। इन सबका समुचित समावेश और आवश्यकतानुसार सबका प्रासंगिक विवेचन किसी भी भूविज्ञान-पोथी के लिए एक आवश्यक कर्त्तव्य है। कहने की जरूरत नहीं कि आज के विज्ञान-युग के लिए 'भूविज्ञान' एक आधारभूत शास्त्र है, जिसके द्वारा प्रस्तुत की जानेवाली ज्ञान-सामग्री के बलबूते पर ही हमारी आधुनिक तकनीकी प्रगति के कई एक कदम आगे बढ़ पाए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम अपने आसपास परिवर्तन का एक अनवरत चक्र चलते हुए देखते हैं। पौधे बड़े होते हैं और विशाल वृक्षों का रूप ग्रहण कर लेते हैं। तब सड़-गलकर वे आखिर एक दिन उसी मिट्टी में मिल जाते हैं, जिससे कि वे उपजे थे! यही हाल प्राणियों का भी है। वे भी जनमते, विकास पाकर बड़े होते और अपनी आयु भुगतकर एक दिन मृत्यु की गोद में विलीन हो जाते हैं! न केवल वनस्पति और जीव-जन्तु जैसी 'चेतन' वस्तुओं ही में, बल्कि नदी और पहाड़, सागर और धरती तथा चाँद, सूरज और तारे जैसी 'जड़' कही जानेवाली वस्तुओं में भी फेरबदल का यही चक्र हमें निरंतर चलते दिखाई देता है। सभी का क्रमशः विकास और पतन होता है। सभी की अपनी-अपनी जीवन-गाथाएँ हैं। तो फिर हमारी यह लीलाभूमि पृथ्वी भी भला परिवर्तन के इस चक्कर से कैसे बची रह सकती है? निस्संदेह उसकी भी अपनी एक रामकहानी है। उस कहानी के सूत्र अरबों-खरबों वर्ष पीछे तक के रहस्यपूर्ण अतीत में छिपे हैं तथा उसका तारतम्य आज भी उसके न जाने किस भावी रूप का ताँता अनवरत बुनता चला जा रहा है! आइए, उस कहानी को समझने का प्रयत्न करें!

पृथ्वी कैसे जनमी और कब ?

यह बताना आसान काम नहीं कि यह धरती कब, कहाँ और किस तरह पैदा हुई! जो कुछ भी संकेत उसके विषय में आज खोजने पर हमें मिलते हैं, वे केवल उसके जन्म के बाद के विकास के युग की कहानी को जोड़ने में ही सहायक होते हैं। फिर भी वैज्ञानिकों ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रह-नक्षत्रों के ज्योतिषीय अध्ययन तथा पृथ्वी पर मिलनेवाले रेडियम, यूरेनियम जैसे पदार्थों की छानबीन के बल पर इस संबंध में कुछ अटकलें लगाई हैं। इस प्रकार पृथ्वी की जो वैज्ञानिक जन्मकुंडली उन्होंने तैयार की है, उसके अनुसार पृथ्वी का जन्म, संभवतः, पाँच खरब वर्ष पहले के किसी सुदूर अतीत में हुआ होगा! किसी का कहना है कि यह अन्य ग्रहों के साथ उस आरंभिक नीहारिका के छिटके हुए पदार्थ के सिमटने से बनी होगी, जिसके कि केन्द्र के घनीभूत होने से सूर्य का निर्माण हुआ होगा। दूसरे यह सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं कि पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों का जन्म एक विचित्र घटना के कारण स्वयं सूर्य से ही हुआ होगा! उनका कथन है कि एक समय था, जब कि अपने क्षेत्र में सूरज अकेला ही आसमान में तमतमाता था। उसका कोई ग्रह-परिवार नहीं था। तब एक दिन एकाएक सूरज से भी बड़ा एक तारा क्रमशः इसके इतने नजदीक आ धमका कि तहलका मच गया! एक अजीब खींचतान होने लगी! सूरज और उस अजनबी नक्षत्र दोनों की सतह पर भीषण ज्वार उमड़ पड़े! दोनों के सीने तन गए! इस कशमकश में हारकर आखिर सूरज की छाती मानो फट गई और उसके सीने में से तप्त पदार्थ का एक बहुत बड़ा हिस्सा लंबी गिल्ली की शक्ल में खिंचकर आसमान में दूर तक उमड़ आया! वह गिल्लीनुमा छिटका हुआ पदार्थ टूक-टूक हो सूरज के खिंचाव के बल से आसमान में अलग-अलग कक्षाओं में उसकी परिक्रमा करने लगा। इन्हीं टुकड़ों में से एक था हमारी पृथ्वी का आरंभिक गैसीय पिंड भी! दूसरे टुकड़े थे बृहस्पति, शनि, नेपच्यून, यूरेनस, मंगल, शुक्र, बुध आदि। निस्संदेह यह सब वैज्ञानिकों की निरी अटकलें हैं। परन्तु इन्हीं अटकलों द्वारा पृथ्वी की जीवन-कथा का पहला पन्ना उलटने में हम समर्थ हो पाते हैं।

आग का दहकता हुआ गोला—पृथ्वी के जन्मकाल का पहला प्रहर

हाँ, तो धरती की शुरुआत दरअसल एक दहकते हुए अग्निपिंड के रूप में होती है! परंतु 'अग्निपिंड' शब्द से यहाँ यह अर्थ लगाना सही नहीं होगा कि यह कोई बड़ा-सा ठोस अंगारा अथवा तोप के धधकते हुए गोले का-सा पाषाणपिंड रहा होगा! वास्तव में, पृथ्वी का यह नवजात रूप तप्त गैसों का एक उमड़ता-घुमड़ता बादल मात्र था। प्रचंड रूप से तप्त यह बादल, कुम्हार के चाक पर घूमनेवाले मिट्टी के पिंड की तरह अपनी धुरी पर कुंडलाकार नाचते हुए, भीषण वेग से आसमान में दौड़ा चला जा रहा था! उसकी सतह पर से सैकड़ों-हजारों किलोमीटर लंबी लपटें तथा जलती हुई गैसों की अग्निजिह्वाएँ लप-लपाती हुई उठती थीं, जो किसी नर्तकी के फहराते हुए दुपट्टे की तरह आसमान में लपक-कर उसी के आसपास पुनः लिपट-लिपट-सी जाती थीं! कालान्तर में, लट्टू की तरह नाचते हुए इस वायव्य पिंड की शक्ल नारंगी की-सी सुडौल होने लगी तथा उसकी आँच भी पहले से कम हो चली! उसका केन्द्र सिमटकर ठोस और भारी हो गया तथा सतह पर का उसका गैसीय चेहरा पिघले हुए सोने की-सी तेजोराशि से दीप्त हो उठा! इस प्रकार पृथ्वी के जन्मकाल का प्रथम प्रहर समाप्त हुआ!

तब ध्रुवों पर चपटे तथा विषवत् प्रदेश में अधिक उभरे हुए आग के इस दहकते गोले ने गैसीय स्थिति से क्रमशः तरल एवं तरलावस्था से एक ठोस पिंड में परिणत होने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की मंजिलें एक के बाद एक तय करना शुरू किया ! जहाँ कभी लपटों का ताण्डव-नृत्य होता था, वहाँ अब पिघली हुई धातु के महासागर की प्रलयंकर झाँकी निखर आई ! उधर इस गोले का केन्द्र, भीषण दबाव से सिकुड़कर, रक्ततप्त हो एक प्रचंड भट्टी में परिणत हो गया। इधर उसका ऊपरी आवरण एक लंबा-चौड़ा कड़ाहा-सा बन गया, जिसमें रबड़ी जैसी गाढ़ी पिघली हुई धातु भीषण रूप से उबल-उबलकर खदबदाती एवं ऊँचाई तक गरम-गरम छींटें उड़ाती तथा बृहदाकार बुंदबुदों की रचना करती हुई साक्षात् प्रलय का दृश्य प्रस्तुत करती थी ! समय बीतते इस गाढ़े द्रव्य पर एक पपड़ी-सी जमने लगी और उसकी पर्त जहाँ-जहाँ अधिक ठंढी और कड़ी हो चली थी, वहाँ चिटककर दरारें पड़ने लगीं। इन दरारों में से नीचे का उष्ण तरल रिस-रिसकर ऊपर आता, जो कभी-कभी ऐसे उमड़ पड़ता कि ऊँचाई तक फव्वारे छूटने लगते ! संभवतः, करोड़ों वर्षों तक पृथ्वी का यही हाल रहा ! तब शैशवकाल की परिधि लाँघकर हमारी इस लीलाभूमि ने किशोरावस्था के प्राङ्गण में पदार्पण किया। इस प्रकार उसकी जीवन-गाथा का द्वितीय अध्याय आरंभ हुआ।

धरती की कोख से चन्द्रमा का जन्म

पृथ्वी की किशोरावस्था के ये आरंभिक दिन भी बड़े भयावने थे। एक अजीब हंगामा-सा मचा था ! पिघली धातुओं के धधकते दलदलों, उनमें से खदबदाकर फूटते हुए ज्वालामुखी-रूपी बुदबुदों, भीषण विस्फोटों द्वारा जहरीली गैसों के बादलों की फुत्कार छोड़ते हुए बृहदाकार फफोलों और ऊँचाई तक ऊपर उठकर उल्कापात के रूप में पुनः बरस पड़नेवाले पिघले हुए द्रव्य की भयंकर फुहारों के प्रलयंकर दृश्य का एक अजीब दिल दहला देनेवाला नाटक हो रहा था ! इसी दशा में एक स्मरणीय घटना घटी ! कहते हैं, पृथ्वी के एक पुत्र पैदा हुआ ! यह पुत्र था चन्द्रमा ! गणित के सिद्धान्तानुसार वह पृथ्वी के पिघले हुए गोले के क्रमशः घूमते-घूमते नासपाती की शक्ल के हो जाने और इस प्रकार उत्पन्न असंतुलन के कारण उसके उभरे हुए भाग के एक अंश के सदा के लिए टूटकर अलग हो जाने के फलस्वरूप उसकी कोख से जनमा था ! इस घटना के समय हमारी लीलाभूमि के कलेवर में जो उथलपुथल मची होगी और

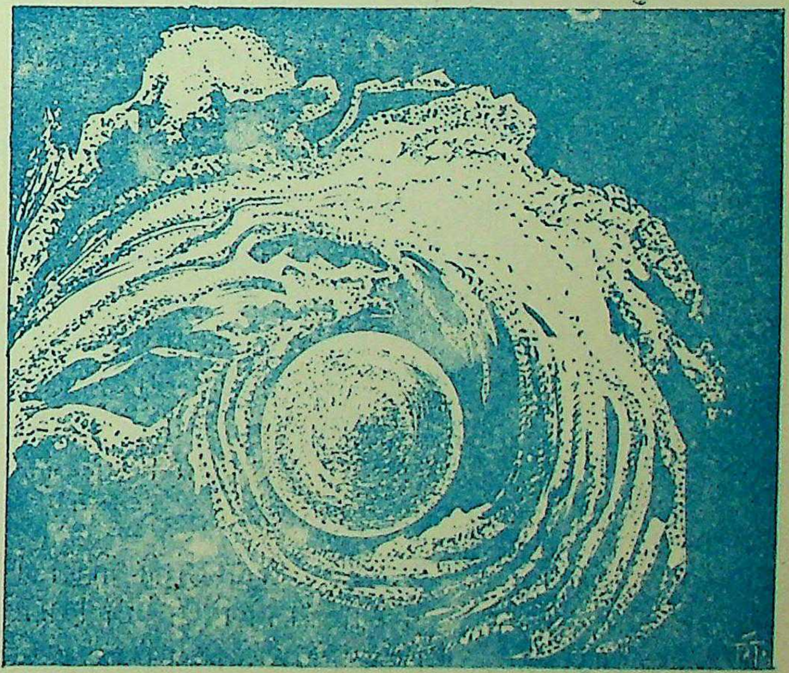

अपने जन्मकाल के प्रथम प्रहर में पृथ्वी आग के दहकते हुए वायव्य गोले जैसी थी। वह गैसों का कुंडलाकार परिधान पहने आकाश में भीषण वेग से नाच रही थी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके धरातल पर घाव पड़ जाने से जो प्रलयसूचक ज्वार-भाटे की लहरें उमड़ी होंगी, इसकी कल्पना की जा सकती है ! कहते हैं, इस प्रकार पृथ्वी के बदन पर जो जख्म बना, उसका स्मृतिचिन्ह आज भी उस गहरे गड्ढे के रूप में विद्यमान है, जिसमें प्रशान्त महासागर नामक हमारा सबसे बड़ा समुद्र भरा है !

अग्नि और वरुणदेव का संग्राम––हजारों बरस तक मूसलाधार वर्षा

इस आग्नेय युग की मंजिल पार करके जब पृथ्वी उष्णता और आँच के घटाव तथा नमी की निरंतर वृद्धि के वातावरण में प्रविष्ट हुई, तो उसके आँगन में अग्नि और वरुण (जलदेवता) के बीच सहस्रयुगव्यापी एक महासंग्राम छिड़ गया। धरती की ऊपरी सतह की आँच कम हो जाने के कारण जब उसके अंतराल में से जलवाष्प की घनघोर घटाएँ उठने लगीं, तो वे मूसलाधार बरसकर धरातल के गरम कड़ाहे को ठंढा करने में महत्व का योग देने लगीं। परन्तु अभी उस कड़ाहे को ठंढा कर देना कोई खिलवाड़ नहीं था ! क्योंकि ज्योंही बादलों का पानी बरसकर धरती की सतह के करीब पहुँचता, वह उक्त कड़ाहे की गरमी से भाप में बदलकर तुरंत ही पुन: आकाश में उड़ जाता !

परन्तु आखिर वह दिन भी आया, जबकि वरुणदेव ने अग्निदेवता को हरा दिया ! अब धरातल पर इतनी आँच नहीं रह गई थी कि पानी तत्क्षण भाप बनकर उड़ जाता ! तब तो पृथ्वी पर मानो जलप्रलय हो गया ! गड्ढे और निचले हिस्से पानी से भर गए ! यह जल कोई आज की तरह ठंढा जल नहीं था। वह भयानक रूप से खौल रहा था ! उसमें से भाप के बादल ऐसे उमड़ते थे जैसे गायसरों के उद्गार हों !

जल-स्थलखंडों का निर्माण

आँच के कम पड़ने तथा निरंतर जलवर्षा होते रहने के कारण, ठंढी पड़ती जा रही धरातल की पपड़ी पर अब ठोस पदार्थ की तह पर तह जमती चली जा रही थी। साथ ही निचले भागों और गड्ढों में काफी जलराशि भी एकत्रित होती चली जा रही थी ! इस प्रकार एक ओर चिप्पड़ की पपड़ी के निर्माण के रूप में हमारी इस लीलाभूमि के भावी स्थलभागों के पूर्वरूप की एक भौंडी-सी रूपरेखा पहलेपहल निखरने लगी ! दूसरी ओर, भावी जलभागों या सागरों के भी पूर्वरूप प्रकट होने लगे। कालान्तर में, वर्षा आदि के हंगामे के शमन के फलस्वरूप जब वातावरण में कुछ स्थिरता आई और जलस्थल तथा वायुमंडल की शक्तियों में एक प्रकार का संतुलन-सा स्थापित हुआ, तो पृथ्वी के उन आदि जल-थलभागों ने अधिक सुडौल तथा सुरम्य रूप ग्रहण करना शुरू किया। इस प्रकार महाद्वीपों और महासागरों की आरंभिक रूपरेखा का निर्माण हुआ।

तदनंतर छोटे-छोटे सागरों और द्वीप-समूहों की भी झाँकी दिखाई देने लगी ! पर्वत और पठार उठने लगे ! नई-नई नदियाँ जनमते दिखाई दीं ! झीलें भी पैदा हुईं ! घाटियाँ कुरेदी जाने लगीं। चट्टानों की पर्त पर पर्त जमती चली गई। कहीं धरती के गर्भ की आग एवं लावा-रूपी पिघले हुए द्रव्य को उगालने के लिए ज्वालामुखी-रूपी चिमनियाँ बन गईं ! कहीं चट्टानों के नीचे रुँधे हुए उष्ण जल और जलवाष्प के निकास के लिए गरम भाप के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फव्वारे (गायसर) फूट पड़े ! इसी बीच ऊपर आसमान के घटाच्छादित आवरण ने भी अपना घूँघट कुछ-कुछ खोला, जिसके फलस्वरूप शायद सहस्रों वर्षों के बाद धरती ने अपने कुलपति सूर्यदेव का दर्शन करने का सौभाग्य पाया !

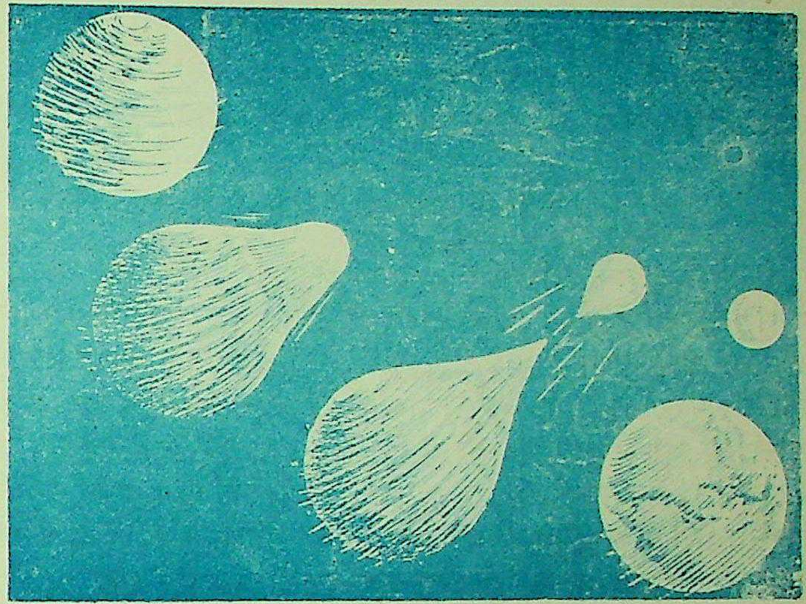

चन्द्रमा की उत्पत्ति तेजी से घूमती हुई पृथ्वी के पिघले हुए पिण्ड में से इसी क्रम से कुछ अंश छिटककर अलग होने के फलस्वरूप हुई है, ऐसा माना जाता है ।

पृथ्वी पर जीवन का प्रस्फुटन––धरती माता बनी

किन्तु जलस्थलमय धरातल के निर्माण के इस प्रभातकाल में अब भी शान्ति का युग स्थापित नहीं हो पाया था ! इधर भीषण ताप से उद्विग्न महासागरों की अथाह जलराशि उष्ण वाष्प की घटाओं के उद्गार पर उद्गार छोड़ती हुई भयंकर रूप से आन्दोलित-विलोड़ित हो रही थी ! उधर नवनिर्मित धरातल के लगातार काँपते रहने, ज्वालामुखी पर्वतों के एकाएक फट पड़ने, आसमान में आँधी-तूफान का दौर-सा बना रहने और वृष्टि का भी एक सिलसिला-सा बँधा रहने के कारण स्थलभाग भी चैन की दशा में नहीं था ! इस प्रकार प्रकृति की महाशक्तियों के साथ शताब्दियों तक निरंतर लथड़ने के बाद, आखिरकार धरती पर जीवन के प्रवेश के लिए अनुकूल परिस्थितियों की रंगभूमि तैयार हो पाई। धरती के माता बनने की उक्त शुभ घड़ी कब आई, साथ ही किस जगह तथा किस प्रकार उसके गर्भ में जीवन का पहला अंकुर जमा होगा, यह कहना कठिन है ! केवल अनुमान किया जाता है कि चिप्पड़ के ठंढा होकर जमने के शायद करोड़ों वर्ष बाद यह घटना घटी होगी ! उन दिनों जल-थलभागों के निर्माण-कार्य में लगी हुई दो महती क्रिया-प्रक्रियाएँ––एक ओर अग्निदेव की शक्ति से नूतन पर्वतमालाओं के जन्म की क्रिया और दूसरी ओर वरुणदेव की शक्ति से उन गिरिशृंखलाओं के गर्वोन्नत शिखरों के मदभंजन तथा कटाव-घिसाव की प्रक्रिया––जोरशोर से लाग-डाँट कर रही थीं। आदि युग के उस धुँधले कुहासे की ओट में किसी अनजान स्थल में, एक अनजान विधि द्वारा, धरती की गोद में जीवन का प्रथम बीज अंकुरित हुआ ! वह शायद घिसी हुई चट्टानों पर जमनेवाली एक प्रकार की हरी काई अथवा किसी झील की शान्त स्तब्ध सतह पर छा जानेवाले एक तरह के बैंजनी रंग के कीटाणुओं (बैक्टीरिया) का रूप लेकर पहलेपहल सामने आया होगा, ऐसी वैज्ञानिकों की अटकलें हैं। यह घटना संभवतः तीन खरब वर्ष पहले घटी होगी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके बाद तो प्रकृति के विकास-चक्र के चमत्कार से आगामी युगों में, एक से एक समुन्नत रूप तथा नई-नई आकृतियों एवं विशेषताओं से युक्त होकर, जीवन के वे आरंभिक बीजांकुर ऐसे पुष्पित-पल्लवित हुए कि माता वसुन्धरा की गोद चित्र-विचित्र वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं से भरपूर प्रकृति का एक अनूठा अजायबघर-सी बन गई !

चट्टानों की पर्तों पर अंकित पृथ्वी की अद्भुत आत्मकथा

अपनी आदिम पिघली दशा से छुटकारा पाकर, पृथ्वी का चिप्पड़ ज्यों-ज्यों ठंढा होता गया, त्यों-त्यों उसका पदार्थ तरल से ठोस बनकर चट्टानों की पर्तों के रूप में तह पर तह जमाता चला गया। इनमें भारी द्रव्य की पर्तें सबसे नीचे थीं और कूड़े-कर्कट या मैल की पपड़ी सबसे ऊपर ! यह तो थी उन दिनों की बात, जबकि पृथ्वी पर केवल अग्निदेवता का ही साम्राज्य था––वरुण (जलदेवता) और इन्द्र (वृष्टि के देवता) अभी सामने नहीं आए थे। पर अंत में वह समय भी आया, जब कि अग्नि के साथ-साथ जल की शक्तियों ने भी धरती के रूप-निर्माण के महायज्ञ में हाथ बँटाना शुरू किया। फलतः धरातल पर रची जा रही चट्टानों की पर्तों में एक नए ढंग के स्तर एक-दूसरे पर जमने शुरू हुए। ये स्तर क्रमशः वृष्टि तथा नदियों के जल द्वारा चिप्पड़ के निरन्तर कटाव के कारण उपजे थे। इस प्रकार आरंभ में अग्नि द्वारा निर्मित और उसके बाद जल की क्रियाओं द्वारा रची गई भाँति-भाँति की चट्टानों की पर्त पर पर्त युगों तक एक दूसरे पर जमती चली गईं। सबसे अनोखी बात तो यह थी कि किसी अजायबघर की अलमारियों की दराजों की तरह, चट्टानों की इन पर्तों में धरती के आरम्भिक जीवन की स्मृतियाँ सुरक्षित रूप से लगातार दर्ज होती रहीं ! चट्टानों की पर्तों से बनी यह पथरीली पोथी ही भूवैज्ञानिकों का वह महापुराण है, जिसके आधार पर उन्होंने धरती का सारा इतिहास गढ़ा है और उसके विकासक्रम की विभिन्न कड़ियाँ जोड़ी हैं। पृथ्वी की इस आत्मकथा ने जीवन के उद्भव और विकास के रहस्यमय परदों को उघाड़ने में सबसे बड़ी सहायता दी है। इसी के बूते पर युग-युगान्तरों के काल-विभाजन द्वारा पृथ्वी के भूभौतिक इतिहास का महान् तिथिपत्र रचा गय है। आइए, देखें कि उक्त तिथिपत्र क्या कहता है !

धरती के भूभौतिक इतिहास का तिथिपत्र

धरातल की चट्टानों के भेद के अनुसार भूवैज्ञानिकों ने धरती के भूतकालिक इतिहास को मोटे तौर पर बारह महायुगों में विभाजित कर दिया है। इन महायुगों के नाम क्रमशः ये हैं–क्वाटर्नेरी, टर्टिएरी, क्रिटेशश, जुरासिक, ट्रायेसिक, पर्मियन, कार्बोनिफैरस, डैवोनियन, सिलूरियन, आर्डोविशियन, कैम्ब्रियन और प्री-कैम्ब्रियन। क्वाटर्नेरी युग के दो उपविभाग हैं–होलोसीन और प्लीस्टोसीन। टर्टिएरी के चार उपविभाग हैं–प्लायोसीन, मायोसीन, ओलिगोसीन और इओसीन। प्री-कैम्ब्रियन के तीन उपविभाग हैं–प्रोटिरोजोइक, आर्कियोजोइक और इओजोइक। यह काल-विभाजन पृथ्वी के इतिहास के लगभग दो अरब वर्ष के पिछले दौर का सिंहावलोकन हमें करा देता है ! इसके पूर्व का कोई लेखा पृथ्वी की पाषाण-पुस्तक में नहीं मिलता, क्योंकि तब चट्टानों का नामोनिशान नहीं था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तर-विकल्प या पाषाणभूत ठठरियाँ

इन बारह महायुगों के दायरे में हमें धरती पर जीवन के उद्भव और विकास की बड़ी अद्भुत संकेतमाला-सी मिल जाती है। यह संकेतमाला भिन्न-भिन्न युगों की चट्टानों के बीच सुरक्षित पाई जानेवाली उन-उन युगों के जीवधारियों की प्रस्तरीभूत ठठरियों के रूप में उपलब्ध है। ये 'प्रस्तरीभूत ठठरियाँ' उन जीवधारियों के अवशेष हैं, जो चट्टानों के बीच दबकर लाखों-करोड़ों वर्षों की रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप एकदम पत्थर-से हो गए हैं ! ऐसे प्रस्तर-विकल्प न केवल जीवधारियों के बल्कि करोड़ों वर्ष पूर्व के वृक्षों के तनों, डालियों और फूल-पत्तों तक के उपलब्ध हैं। बड़े-बड़े संग्रहालयों में ये प्रायः देखे जा सकते हैं। मोटे तौर पर खास-खास जंतु-समूहों के अस्थि-विकल्प खास-खास स्तरों में एक खास गहराई पर मिलते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि तिथि की दृष्टि से चट्टानों की इन पर्तों का उनमें पाये जानेवाले जीव-जन्तुओं के कंकालों के साथ अन्योन्याश्रित संबंध है !

मार्के की बात तो यह है कि जिस प्रकार चट्टानों में हम सबसे नीचे प्राचीनतम आग्नेय चट्टानों को और तदुपरान्त बाद के स्तर रचे हुए पाते हैं, उसी प्रकार जीवधारियों के अवशेषों में भी सबसे नीचे आदिम एककोशीय जीवों के अविकसित रूपों से लेकर क्रमशः अधिकाधिक विकसित होते चले गए प्राणियों की ठठरियाँ एक निसेनी की तरह विकासक्रमानुसार सजी हुई मिलती हैं। इसी निसेनी के ऊपरी सिरे

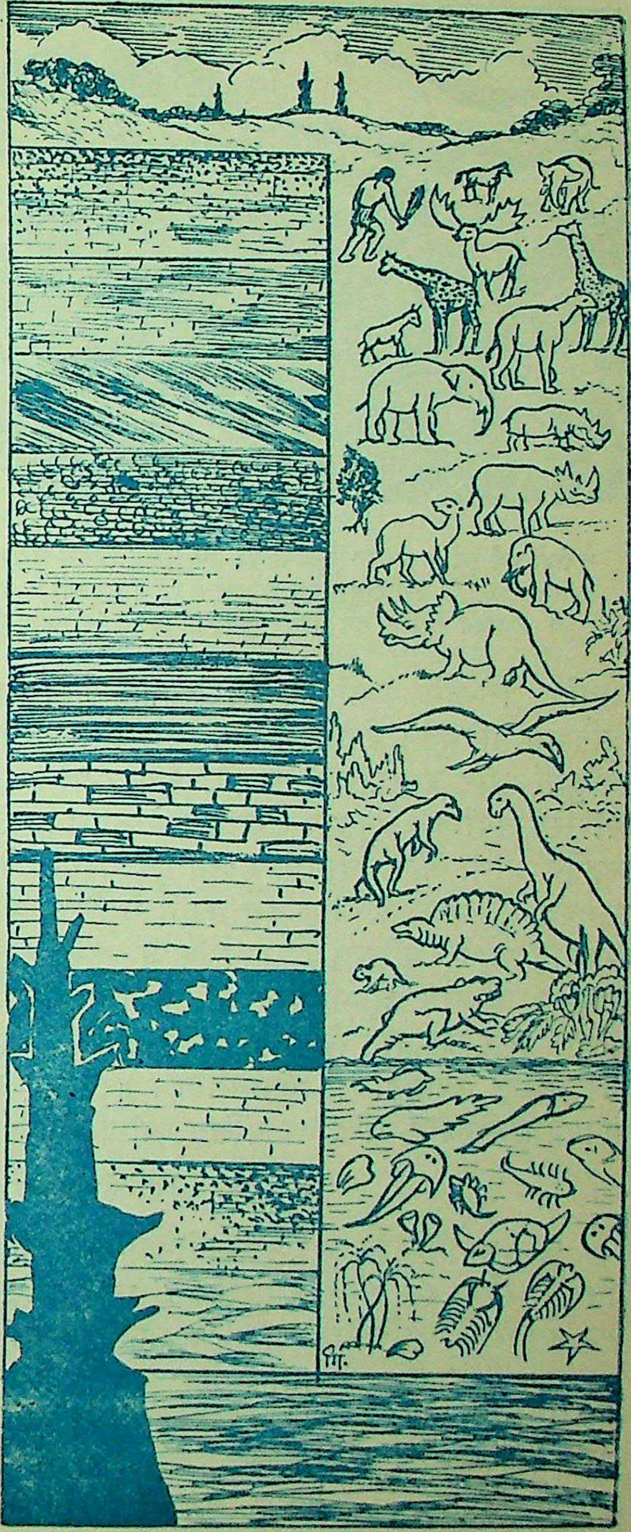

चट्टानों की पर्तों में अंकित पृथ्वी की आत्मकथा, जिसमें युग-युग के जीवधारियों का लेखा उनकी ठठरियों के रूप में सुरक्षित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

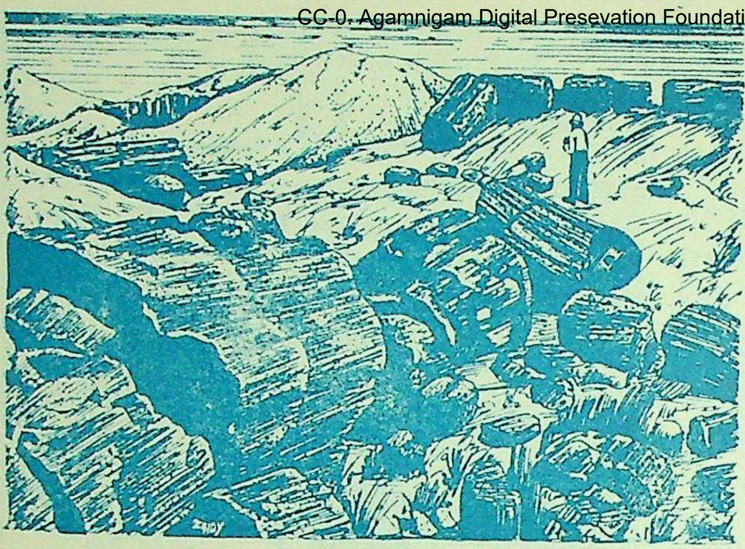

करोड़ों वर्ष पूर्व के प्रस्तर-विकल्पों का एक दृश्य, जिसमें भूतकाल के कतिपय वृक्षों के प्रस्तरीभूत तने दिखाई दे रहे हैं। पृथ्वी के इतिहास के अध्ययन के लिए इन प्रस्तर-विकल्पों का अत्यंत महत्व है।

पर सब प्राणियों के शिरोमणि मनुष्य को हम अवस्थित पाते हैं। यह बड़े महत्व की बात है! क्योंकि इसी की बुनियाद पर आधुनिक 'विकासवाद' की इमारत खड़ी की गई है और यह सिद्धान्त स्थापित किया गया है कि जीवों का विकास सरलतम रूपों से आरंभ होकर क्रमशः अधिकाधिक जटिल, सुडौल और बुद्धिमान् प्राणियों की ओर निश्चित क्रमानुसार हुआ है। इस विकासक्रम की श्रेणियों के निर्माण में सबसे बड़ा हाथ पृथ्वी की निरंतर बदलती हुई भौतिक परिस्थितियों का ही रहा है। अर्थात् जैसे-जैसे पृथ्वी की ऊपरी सतह की शक्ल-सूरत और आबोहवा आदि में अनुकूल-प्रतिकूल परिवर्तन होते चले गए, वैसे-वैसे उसकी गोद में उपजने और पनपनवाले जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों के रूप, आकार-प्रकार और स्वभाव आदि में भी बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार लगातार फेरबदल होते चले गए! इस परिवर्तन के क्रम में बहुतेरे प्राणी और वनस्पति बदली हुई स्थिति के अनुकूल अपने आपको न बना पाने के फलस्वरूप सदा के लिए इस धरती से मिट भी गए! दूसरे ऐसे बदल गए कि उन्हें पहचानना भी मुश्किल हो गया कि वे कभी क्या थे! इस प्रकार हम देखते हैं कि भू-विज्ञान के साथ जीव-विज्ञान का अन्योन्याश्रित संबंध है! अर्थात् एक के अध्ययन के लिए दूसरे का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। आओ, अब धरती के विकासक्रम के ऊपर उल्लिखित महायुगों का सिंहावलोकन करते हुए उनकी भूभौतिक विशेषताओं और उनमें पनपनेवाली जीव-सृष्टि का संक्षित व्योरा क्रमवार प्रस्तुत करें।

प्री-कैम्ब्रियन युग

इस महायुग का आरंभ कम-से-कम पौने दो अरब वर्ष पहले हुआ होगा और उसकी निचली सीमा आज से करीब पचास करोड़ वर्ष पूर्व के आसपास होगी, ऐसा भूवैज्ञानिकों का मत है। 'इओजोइक' (उषःकालीन), 'आर्कियोजोइक' (आदिमयुगीन) और 'प्रोटिरोजोइक' (प्रारंभिक) नामक तीन विभागों में विभक्त यह काल था धरती पर जीवन के प्रथम प्रस्फुटन का महान् युग, जिसका लेखा हमें इस युग की प्राचीनतम तलछटी चट्टानों द्वारा मिलता है। उनमें ग्रेफाइट और गेरू जैसे एक तरह के द्रव्य की विद्यमानता से यह अंदाज लगाया गया है कि ये कतिपय एककोशीय आरंभिक जीवों की रासायनिक उपज हैं। इन अति प्राचीन तलछटी चट्टानों के ऊपर के स्तरों में जीवन के स्पष्ट दर्शन हमें होते हैं। इसके पूर्व की चट्टानें एकदम जीवविकल्परहित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवन के प्रथम अवशेषों से युक्त द्वितीय श्रेणी की इन चट्टानों में—जोकि 'प्रोटिरोजोइक' (प्रारंभिक) नाम से अभिहित की गई हैं—एल्जी-वर्ग के काई जैसे कुछ अति सरल वनस्पति-रूपों, स्पंज की जाति के अति सूक्ष्म जीव-समुदायों, सागरतल के पंक में पनपनेवाले कतिपय आदिमयुगीन शैवालों और केंचुओं जैसे किन्हीं सूक्ष्म नलिकाकार जीवों के चिह्न मिले हैं। पुरातन आग्नेय चट्टानों के पृष्ठ पर जल की क्रिया-प्रक्रिया से उत्पन्न नवीन तलछटी चट्टानें इसी युग में पहलेपहल दिखाई देती हैं। कालमान के हिसाब से इस युग का विस्तार बाद में आनेवाले सभी युगों की कुल अवधि के बराबर है! इससे अंदाज लगाया जा सकता है कि जीवन के प्रादुर्भाव के अनुरूप पृष्ठभूमि तैयार करने और आरंभिक सरल रूपों से भावी प्राणियों के जटिल पूर्वरूपों का विकास करने में माता पृथ्वी को कितना लंबा समय लगा होगा! इस युग की अति प्राचीन तलछटी चट्टानों के जो नमूने कनाडा और ग्रीनलैंड में मिलते हैं, उन पर उस पुराकालीन सागर की लहरों के निशान तक मौजूद हैं, जोकि शायद एक अरब वर्ष पहले पृथ्वीतल पर लहरा रहा होगा! इस युग ने करोड़ों वर्षों के अंतर से धरती पर छा जानेवाले दो महान् हिमयुगों के दृश्य देखे, जिनकी शीत से ठिठुरकर भूपृष्ठ अनेक सहस्राब्दियों तक बर्फ की चादर ओढ़े सोया रहा। साथ ही उसने नवीन पर्वतों के उदय और विकास से संबंधित वे अनेक ज्वालामुखीय हड़कंप भी देखे, जिनके भीषण उलटफेर की साक्षी पृथ्वी की सतह पर की तत्कालीन गिरिशृंखलाओं-रूपी शिकनें और चुन्नटें हैं।

कैम्ब्रियन युग

प्री-कैम्ब्रियन युग के कुहासे में से निकलकर, जब हम कैम्ब्रियन काल की सीमा में प्रवेश करते हैं, तो पृथ्वी की गोद में नाना प्रकार के बिना रीढ़ के (अपृष्ठवंशी) लघु जीवों की एक बाढ़ से हमारा साक्षात्कार होता है! इस युग की चट्टानों की तहों में प्रचुर परिमाण में पाये जानेवाले इन अनोखे जीवों के प्रस्तर-विकल्प, तीन खंड या फाँकवाले होने के कारण, 'त्रिखंडी' (ट्रायलोबाइट्स) नाम से पुकारे जाते हैं। ये प्राणी झींगे, केकड़े, बिच्छू आदि के वर्ग के सगे-सम्बन्धी थे। उन्हीं के समकालीन अन्य एक वर्ग के क्षुद्र जीव 'ग्रेप्टोलाइट्स' (शृंगदंडी प्रवाल) थे, जो कि मूँगे वर्ग के प्राणियों के भाई-

३२ करोड़ वर्ष पूर्व के 'डेवोनियन युग' में सागरतल पर पनपनेवाली समुद्री शैवाल जैसी आदिकालीन वनस्पतियों की एक झाँकी! यह चित्र उन प्रस्तर-विकल्पों के आधार पर रचा गया है, जो कि चट्टानों की पर्तों में मिले हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh
बन्धु थे। इस काल की प्रतिनिधि चट्टान स्लेट की जाति की है, जो करोड़ों वर्ष पूर्व के सागर-तल में जमा एक प्रकार के पुराकालीन पंक या कीचड़ की अथाह राशि के ऊपर अन्य स्तरों के दबाव तथा ताप की क्रिया-प्रक्रिया के फलस्वरूप निर्मित हुई हैं।

आर्डोविशियन, सिलूरियन और डेवोनियन युग

कैम्ब्रियन युग के बाद आनेवाले आर्डोविशियन नामक युग में पूर्वयुग के त्रिखंडी आदि प्रारंभिक जीव-रूपों के साथ-साथ सीपी, घोंघे और मत्स्यवर्ग के प्राणियों के आरंभिक पूर्व-रूपों की भी झाँकी दिखाई देने लगती है। इसके शीघ्र ही बाद आनेवाले सिलूरियन युग में बिच्छू जैसा एक समुद्री जीव प्रकट होता है, जो रीढ़दार था। इन बिच्छू और केकड़े जैसे पुराकालीन जंतुओं में कई दो-ढाई मीटर तक लंबे होते थे। इस युग के क्षुद्र जीवों में प्रमुख सागरतल की चट्टानों पर अपनी घनी बस्तियाँ बसाए हुए क्रिनौइड जाति के भाँति-भाँति के पौधनुमा कंटकचर्मी जंतु और प्रवाल-वर्ग के प्राणियों के समूह थे। सिलूरियन काल की प्रतिनिधि चट्टान एक प्रकार की चूने की पर्त है, जिसे सागर में पनपनेवाले ऊपर उल्लिखित सीपी, घोंघे, मूँगे आदि की जाति के लघु प्राणियों ने अपने आसपास करोड़ों वर्ष तक लगातार चूने के पदार्थ की खोलों का अंबार-सा लगाकर रचा था।

डेवोनियन युग की जीव-सृष्टि का केन्द्र मछलीवर्ग का प्राणी है, जिसे भाँति-भाँति के उन्नतिशील रूपों और लंबे-चौड़े आकारों में विकसित होकर समस्त जीव-जगत् को आतंकित करते हम देखते हैं! यह याद रखने की बात है कि अब भी जीवन का क्षेत्र सागर ही है, स्थलभागों पर अभी जीव-सृष्टि के कोई उल्लेखनीय आसार नहीं प्रकट हो पाए हैं। इस युग की प्रतिनिधि चट्टान लाल बलुआ पत्थर की चट्टान है। इन चट्टानों में आदिम काईनुमा क्षुद्र पौधों से उसी वर्ग के बृहदाकार वृक्षों के विकास की भी झाँकी स्पष्टतः देखने को मिलती है। काई और फर्न जाति के इन विशाल पौधों ने मिलकर इस युग में जो वाटिकाएँ लगाईं, वे ही आगे चलकर कार्बोनिफैरस युग के विस्तृत दलदली जंगलों में परिणत हो गईं।

कार्बोनिफैरस और पर्मियन युग

एक ऐसे दृश्य की कल्पना कीजिए, जिसमें नीचे तो कीचड़ और पानी के विस्तृत दलदल फैले हों और उनके ऊपर छायी हुई हो भाँति-भाँति के कँटीले तनोंवाले खजूर, ताड़ और फर्न जैसे पुराकालीन वृक्षों की सघन झाड़ी! फिर इस भयावने अरण्य में एक ओर तो तरह-तरह के कीट-पतिंगों, शलभों, बिच्छुओं, कनखजूरों, मकड़ियों, गोजरों, झींगुरों, केकड़ों आदि के मेले लगे हों और दूसरी ओर बड़ी-बड़ी छिपकलियों, घड़ियालों या गोहों जैसे रेंगते हुए घिनौने प्राणियों के उभयचर पूर्वरूपों की झाँकी निखरी हो! यही है आज से करीब अट्ठाईस करोड़ वर्ष पूर्व के प्रसिद्ध कार्बोनिफैरस युग का वह चित्र, जिसे कि भू-वैज्ञानिकों ने इस युग की चट्टानी पर्तों के प्रस्तर-विकल्पों के आधार पर गढ़ा है! इस युग का प्रधान स्मारक उसकी प्रतिनिधि चट्टानों की पर्त में पाया जानेवाला प्रस्तरीभूत कोयले का वह संसारव्यापी भंडार है, जिसके कि नाम पर उसे 'कार्बोनिफैरस' या कोयला-उत्पादक युग का नाम मिला है। यह कोयले की अगाध राशि उन्हीं विशाल दलदली जंगलों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की देन है, जो कि इस जमाने के असाधारण उमसभरे नम वातावरण में पृथ्वीतल के अनेकों भागों में झाड़ियों की तरह छा गए थे । वृक्षों के ये घने समूह लाखों-करोड़ों वर्षों तक सूख-सूखकर या गिर-टूटकर नीचे के दलदलों में तह पर तह जमाते हुए दबते चले गए और धरती की भौगर्भिक क्रियाओं के फलस्वरूप उन पर अन्य चट्टानी स्तरों के अंबार लदते चले गए । अंत में भूभौतिक रासायनिक क्रिया-प्रक्रिया के प्रभाव से भीतर ही भीतर धधककर वे जलते अंगारों में परिणत हो गए ! ठंढे पड़ने पर जली हुई लकड़ी की ये पर्तें कोयला बन गईं और करोड़ों वर्षों के दबाव से अंत में उसने यह प्रस्तरीभूत रूप ग्रहण कर लिया । यही हमारा आज का 'पत्थर का कोयला' है ।

कार्बोनिफैरस युग के बाद के पर्मियन युग का एक उल्लेखनीय जंतु तीन मीटर लंबी डाइमेट्रोडन नामक अनोखी छिपकली है, जिसकी पीठ पर ताड़ के पंखे जैसी एक काँटेदार झालर होती थी । यह प्राणी स्थल पर विचरने लगा था और वह घोर मांसाहारी था । पुन: एक हिमयुग आया और उसकी बर्फीली शीत से कार्बोनिफैरस एवं पर्मियन युगों के घने दलदली जंगल तेजी से मिट चले । साथ ही उनमें पनपनेवाली जीव-सृष्टि को भी नवीन परिस्थितियों के अधीन अपने आपको बदलने को विवश हो जाना पड़ा । जो नहीं बदल पाए वे मिट गए ।

ट्रायेसिक, जुरासिक और क्रिटेशश युग

प्राचीन से मध्यकालीन कल्प के दायरे में प्रवेश करते ही हमें भू-पृष्ठ पर गत युगों की अपेक्षा कहीं अधिक स्थिरता और शान्ति दिखाई देती है । इस युग की चट्टानों में ज्वालामुखीय हलचलों और भूकंपीय उलटफेर के पहले जैसे दिल दहला देनेवाले चिह्न नहीं मिलते । ट्रायेसिक युग की प्रतिनिधि चट्टानें दो प्रकार की हैं । एक तो लाल बलुआ पत्थर तथा तरह-तरह की मिट्टियों के वे स्तर हैं, जो कि समुद्रतटीय दलदलों के खारे पानी के धीरे-धीरे सूखने से बने थे । इन शिला-स्तरों में धूप के कारण मिट्टी की चिटक के निशान,

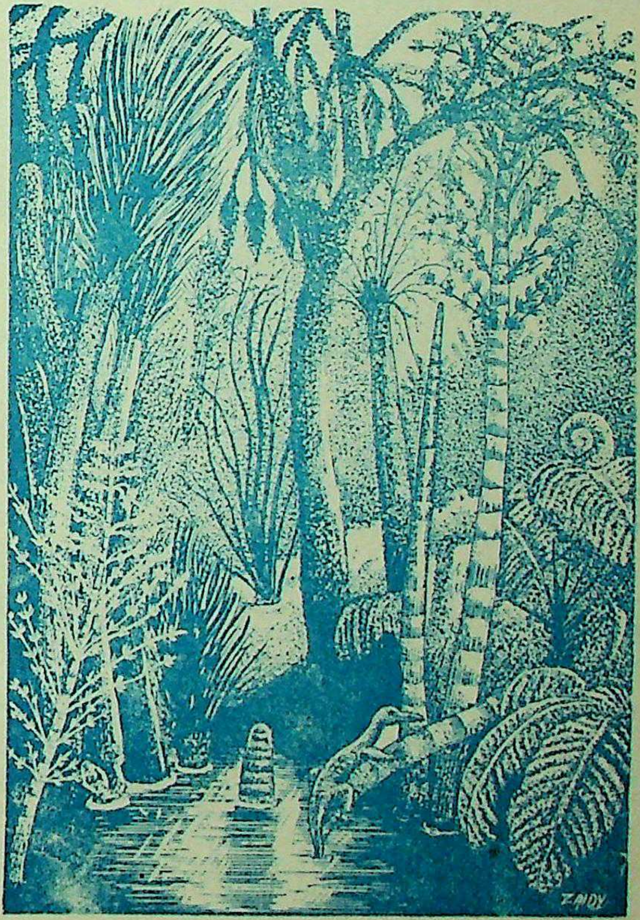

२८ करोड़ वर्ष पूर्व के 'कार्बोनिफैरस युग' के दलदलों में उगे हुए अनोखी शक्ल के वृक्षों के सघन जंगल, जिनके धरती में दब जाने के फलस्वरूप खनिज कोयले की पर्तें बनी ! यह चित्र भी प्रस्तर-विकल्पों के आधार पर रचा गया है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्षा की बूँदों के चिह्न और दलदलों में पनपनेवाले तत्कालीन जंतुओं के पैरों के निशान तक अंकित मिलते हैं। दूसरी चट्टानें वे हैं, जो गहरे पानी के नीचे बनी हुई प्रतीत होती हैं। इनमें चूने के पत्थर तथा हजारों मीटर मुटाई के डोलोमाइट नामक पाषाण का बाहुल्य है। जुरासिक काल की चट्टानें चूने के पत्थर, बलुआ पत्थर, मिट्टी, शेल आदि कई रूपों में मिलती हैं। इसके बाद के क्रिटेशश युग की चट्टानें खड़िया मिट्टी की वे तहें हैं, जो अनंत कोटि क्षुद्र समुद्री जीवों की चूने की खोल के निरंतर जमा होने से बनी हैं।

उरंगम-वर्ग के भीमकाय प्राणी

यह जमाना मुख्यत: उरंगम-वर्ग के प्राणियों का युग है। ये उरंगम भाँति-भाँति के और कई एक जाति के थे। उदाहरणार्थ, एक ओर थे लंबी गरदन, छोटे-से सिर, कँगारू जैसे बदन और गोह जैसी दुमवाले 'ब्रान्टोसॉरस' (लंबाई २० मीटर), 'एटलान्टोसॉरस' (लंबाई २६ मीटर) 'डिप्लोडोकस' (लंबाई २८ मीटर और ऊँचाई ११ मीटर) तथा 'जाइजेण्टोसॉरस' (लंबाई लगभग ३२ मीटर) जैसे देखने में अति भयंकर किन्तु स्वभाव से अति भीरु और मूर्ख वनस्पतिभोजी। ये प्राणी आकार और वजन की दृष्टि से शायद सबको मात कर सकते थे! दूसरी ओर थे उन्हीं के समसामयिक 'टाइरेनोसॉरस' (लंबाई १५ मीटर और ऊँचाई ६ मीटर) जैसे वे भयंकर जबड़ेवाले क्रूर मांसाहारी, जो कि इन शाकाहारी प्राणियों के दलदलों में फँस जानेवाले भारी-भरकम शरीरों को बात की बात में चीरफाड़-कर जीवन-निर्वाह किया करते थे! इनके अतिरिक्त जो अन्य जीव इस युग में धरती पर विचरते थे, उनमें सबसे उल्लेखनीय थे एक तो 'ब्रेकियोसॉरस' (ऊँचाई लगभग १० मीटर; लंबाई २० मीटर) और 'स्ट्रूथियोमिमस' (ऊँचाई १।। मीटर) जैसे अन्य डिनासारों के अंडों को चुराकर उनसे अपना निर्वाह करनेवाले उरंगम, जो तेजी से दौड़ भी लेते थे। दूसरे थे 'ट्रिसेराटाप्स' (लंबाई ८ मीटर; ऊँचाई ३ मीटर) जैसे गैंडेनुमा त्रिशृंगधारी, 'स्टैगोसॉरस' (लंबाई ८ मीटर; ऊँचाई ३ मीटर) जैसे अद्भुत कवचधारी और 'इगुआनोडान' (लंबाई १० मीटर) एवं ट्रेकाडॉन जैसे गोहों से मिलते-जुलते वे जीव, जिनकी विचित्र वेशभूषा और भौंडी रचना को देखकर हैरानी होती है!

उधर जल में इस युग में साँप की-सी लंबी गरदन और सूँस या कछुए जैसे चपटे बदनवाले 'प्लिसियोसॉरस' (लंबाई १३ मीटर), मगर के-से मुँह और बड़ी मछली के-से बदनवाले 'इक्थियोसॉरस' (लंबाई १३ मीटर) और ह्वेल, मगर तथा सर्प सभी की कुछ न कुछ बात लिए हुए 'मोसासॉरस' (लंबाई २५ मीटर) नामक भयावने शिकारी जानवरों का आतंक छाया हुआ था! यही नहीं, अब जीवन का चक्र आकाश की ओर भी गतिशील होने लगा था, जिसके साक्षी थे चमगादड़ों की-सी झिल्लीदार बाजुओं और शिकारी डिनासारों जैसे मुँहवाले 'टेरानोडॉन' (लंबाई ८ मीटर) और 'टीरेडेक्टाइल' जैसे वे आदिम उरंगम पक्षी, जिनके कि काफी प्रस्तर-विकल्प इस युग में मिले हैं।

न केवल जंतुओं की दुनिया में, बल्कि वनस्पति-जगत् में भी इस मध्यकालीन कल्प ने एक बिल्कुल नई निराली झाँकी दरसाई! अब कार्बोनिफैरस काल के वृक्षों के स्थान में बहुतायत से चीड़, देवदार या सनोवर से नाता रखनेवाले पेड़-पौधे पनपने लगे थे। खड़ियाकाल का अंत पहुँचते-पहुँचते तो धरती पर बलूत, चीड़, सनोवर, अंजीर, खजूर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और ताड़ जैसे आधुनिक वृक्षों के घने जंगल उठ खड़े हुए थे ! उधर सागर के भीतर इन दिनों मूँगे, सीपी, घोंघे, आदि जीवों को आश्रय देते हुए भाँति-भाँति के समुद्री शैवालों की झाड़ियाँ उगी थीं । आबोहवा की दृष्टि से यह युग उष्णता के साथ-साथ काफी नमी लिए हुए था । शायद इसीलिए इस जमाने में पेड़-पौधे खूब पनपे ।

टर्टिएरी और क्वाटर्नेरी युग

अब हम जीव-सृष्टि के विकासक्रम के उस अंतिम महाकल्प में आ पहुँचते हैं, जिसे 'केनौजोइक' या 'अभिनव जीव-सृष्टि के कल्प' की संज्ञा प्रदान की गई है । इस युग के 'टर्टिएरी' और 'क्वाटर्नेरी' नामक दो महाविभाग हैं, जिनके पुनः इओसीन, ओलिगोसीन, मायोसीन और प्लायोसीन तथा प्लिस्टोसीन और होलीसीन ये छः उपविभाग किए गए हैं । पृथ्वी के इतिहास के इस अर्वाचीन सर्ग का विस्तार आज से सात करोड़ वर्ष पीछे तक फैला हुआ है । इस सर्ग को इतिहासकारों ने प्रायः 'स्तनपोषी जीवों के विकास के युग' के नाम से पुकारा है । इसमें संदेह नहीं कि इसकी प्रतिनिधि सृष्टि स्तनपोषियों की ही है, जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित है । परन्तु यह बात भी नहीं है कि स्तनपोषियों के अलावा अन्य वर्ग के जीवों का विकास इस युग में आकर एकदम ठप्प हो गया हो । वस्तुतः हजारों तरह के पक्षियों, उरंगमों, कीट-पतिंगों, जलजीवों, और भाँति-भाँति के पेड़-पौधों को भी इस युग में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको मोड़ते हुए विकासक्रम की मंजिलें पार करते हम पाते हैं ।

इस युग में आकर जीव-सृष्टि का क्रम स्तनपोषियों और घने रोएँदार जानवरों तथा भाँति-भाँति के पखेरुओं के विकास की ओर जो झुक गया था, उसका मुख्य कारण था पृथ्वी की जलवायु और धरातलीय रूपरेखा में पर्याप्त रद्दोबदल । खड़ियाकालीन युग की समाप्ति के बाद धरती पर सरदी की मात्रा क्रमशः बढ़ती चली गई । फलतः आगे जिस महाकल्प का उद्‌घाटन हुआ, उसके आरंभ और मध्यकाल में पर्वतमालाओं के उद्‌भव से संबंधित भारी उथलपुथल मचानेवाले धरातलीय हलचलों के दौर पृथ्वी पर आए । इसी बीच दो हिमयुगों का भी आविर्भाव

बारह से उन्नीस करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वीतल पर छा जानेवाले भाँति-भाँति के भीमकाय प्राणियों के कुछ नमूने—इनकी आकृतियाँ चट्टानों से प्राप्त उनके प्रस्तर-विकल्पों के आधार पर रची गई हैं ! ये प्राणी अब नहीं मिलते !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ, जिनमें से अंतिम हिमयुग लगभग दस लाख वर्ष तक धरती को ठिठुराये रहा! ऐसी बदली हुई परिस्थिति में उमस की हवा में पनपनेवाले भारी-भरकम नंग-धड़ंग उरंगमों की कैसे बन सकती थी! अतः प्रकृति के कानून के अधीन वे बेचारे सदा के लिए दुनिया से चलते बने! उनके वे दलदली निवासस्थल गायब हो गए और बदले में धरती पर एक नई निराली छटा छा गई, जिसकी कठोर पृष्ठभूमि में समसामयिक विषमताओं का मुकाबला करते हुए प्रकृति ने प्राणियों के नए-नए साँचे ढालना शुरू किया। उदाहरणार्थ, शीत की कटुता से बचने के लिए उसने बदन पर घने रोएँ और बाल उगाना शुरू किया। दौड़ लगाने के लिए मजबूत टाँगों और हलके बदन का विकास करना आरंभ किया। गगनचुंबी वृक्षों की चोटियों पर बसेरा लेने और वायु में विचरण करने के हेतु पंख उगाना तथा हलके-फुलके बदन विकसित करना भी प्रारंभ किया। साथ ही अंडे चुरानेवाले पेटू जंतुओं की नीच हरकतों से बाज आकर गर्भाशयों के भीतर ही बच्चों का विकास करना एवं जन्म के बाद स्तनों से दूध पिलाकर उनका पोषण करना शुरू किया!

अभिनव कल्प के प्रभातकाल में पृथ्वी की झाँकी

अभिनव कल्प के प्रभातकाल या 'इओसीन काल' में धरातल की फर्श कहीं-कहीं पाँच-छः हजार मीटर तक ऊँची उठ आई थी। फलतः स्थलभाग का क्षेत्रफल अब पहले से कहीं अधिक बढ़ गया था। अब मौसम भी सुहावना रहने लगा था। बनों में बलूत, अखरोट, चीड़, देवदार, सनोवर, ताड़ आदि सदापत्री वृक्षों की हरियाली छायी हुई थी। झीलों और पोखरों में कमल और कुमुदिनी की जाति के पौधों की शोभा निखरी थी। सभी छोटे-बड़े वृक्ष मानो नववसंत के आगमन की सूचना लेकर पुष्पों के भार से लदे-लदे दिखाई पड़ रहे थे! यह था पृथ्वी पर पहलेपहल पुष्पित पौधों के उद्भव और विकास का अभूतपूर्व युग! यह तो हुई वनस्पति-जगत् की बात! उधर जानवरों की दुनिया में भी स्तनपोषी जीवों और पक्षियों के अनूठे पूर्वरूप सामने आने लगे थे। इनमें सबसे उल्लेखनीय थे 'पेलिओथीरिअम' और 'टाइनोसीरास' नामक दो जीव! 'पेलिओथीरिअम' घोड़े, गैंडे और तापीर का एक मिश्रित पूर्वरूप था! उधर 'टाइनोसीरास' डीलडौल में हाथी जैसा एवं शक्ल-सूरत में गैंडे जैसा एक श्रृंगधारी था। उसके छः सींग थे—चार थूथन पर और दो कानों के ऊपर! इनके अलावा तीन-तीन चार-चार खुरोंवाले उन स्तनपोषियों के भी कई एक नमूने इस काल में सामने आने लगे थे, जिनसे कि आगे चलकर घोड़े का विकास हुआ बताया जाता है। यही नहीं, लीमूर-वर्ग के वानरों के भाई-बन्धुओं के भी कतिपय नमूने इस जमाने में प्रकट होने लगे थे, जिनमें एकाध प्राणी तो असली बनमानुसों या वानरसम जीवों का पूर्वरूप-सा प्रतीत होता था!

इसके बाद के ओलिगोसीन, मायोसीन एवं प्लायोसीन काल में पृथ्वी के विभिन्न भूभागों में विस्तृत चरागाहों-रूपी घास के लंबे-चौड़े मैदान उठ खड़े हुए! अतः स्तनपोषी जीवों के विकासक्रम ने अब नई-नई दिशाएँ पकड़ीं! जब मैदानों में विकसित होनेवाले प्राणी घास पर निर्वाह करनेवाले, लंबी दौड़ लगानेवाले तथा कद में ऊँचे थे। वे यहाँ-वहाँ छुटपुट पाये जानेवाले वृक्षों की ऊँची डालियों की पत्तियों को धरती पर खड़े-खड़े ही चर सकते थे! इन घासपातभोजी स्तनपोषियों ने ही जिराफ, ऊँट, हाथी, गैंडे, बारहसिंघे, घोड़े और हिरन आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

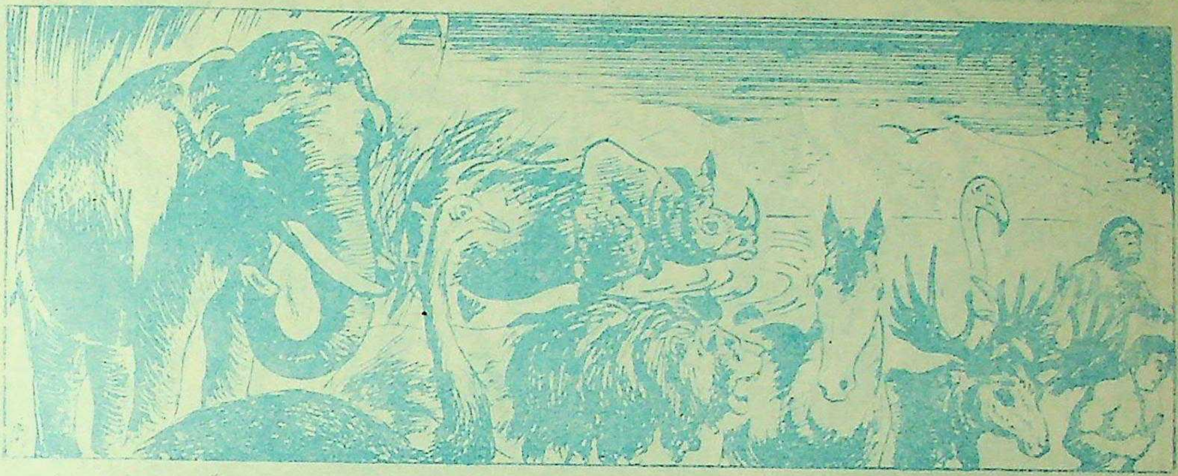

पृथ्वी की आत्मकथा के अब तक रचे गए अध्यायों में, अंतिम सर्ग में प्रकट होनेवाले प्राणियों में से कुछ सुविकसित रूप-आकारों की एक झाँकी ! ये प्राणी इस धरातल पर आज भी हमें दिखाई देते हैं। इस जुलूस में सबसे आगे मनुष्य है, जोकि अपने आविर्भाव की अल्पावधि ही में पृथ्वी का मालिक बन बैठा है !

हमारे आज के प्रधान निरामिषभोजी स्तनपायी पशुओं का बीजारोपण किया। इस युग के जीवों में 'मेस्टोडान', 'डिनोथैरियम' और 'मैमथ' नामक हाथी के पूर्वजों, 'इओहिप्पस', 'हाइरेकोथेरियम' और 'हिपेरियन' नामक घोड़े के पूर्वगामी रूपों, तथा 'यूइंटेथे-रियम' और 'आर्सिनोइथेरियम' जैसे गैंडे के पुरखों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। किन्तु एक ओर जहाँ ये घासपातभोजी स्तनपोषी सामने आए, वहाँ दूसरी ओर उन्हीं के बीच सिंह, बाघ, तेंदुए, भालू, शृगाल, आदि घोर मांसजीवी शिकारी प्राणियों के तरह-तरह के पूर्ववर्ती साँचे भी विकसित होते दिखाई दिए, जो कि इन शाकाहारियों को चीर-फाड़-कर अपना निर्वाह करने पर तुले बैठे थे।

इस प्रकार कुछ ही करोड़ वर्षों में, जीव-सृष्टि की झाँकी एकदम बदल गई। अब एक ओर ह्वेल, डाल्फीन, सील और वालरस जैसे जल में रहनेवाले और दूसरी ओर हाथी, गैंडा, जिराफ, ऊँट, घोड़ा, सुअर, तापीर, जेबरा, बारहसिंघा, हिरन, गाय, सिंह, बाघ, चीता, लोमड़ी, लकड़बग्घा, भालू, भेड़िया, खरगोश, बकरी, भेड़ और चूहा जैसे प्रधान स्थलवासी स्तनपोषियों के पूर्वरूप प्रचुरता से धरती पर छा गए ! उन्हीं से विकसित होकर अंत में आज के-से उनके असली रूप भी पृथ्वी की गोद में विचरते दिखाई देने लगे। उधर हजारों प्रकार के पखेरुओं, अनेक प्रकार की मछलियों, नए-नए ढंग के उरंगमों और कीट-पतिंगों की भी अनगिनत जातियाँ पृथ्वी के अजायबघर में भर गई।

मनुष्य का प्रादुर्भाव

अंत में जीवधारियों के इस रंग-बिरंगे जुलूस में आ शरीक हुए 'प्राइमेटस्' या प्रधान-भागीय वर्ग के महत्वपूर्ण प्राणी। इस वर्ग का एक जीव अपने वानर और वनमानुषीय बन्धुओं को पीछे ठेलकर धीरे-धीरे इस प्रकार आगे बढ़ता चला गया कि कालान्तर में वह बन गया इस पृथ्वी का सम्राट् ! इस अनोखे जीवधारी का नाम था मनुष्य ! उसे प्रकृति से एक अद्वितीय असाधारण उपहार——सब प्राणियों से अधिक बुद्धि—का वरदान मिला था। इसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

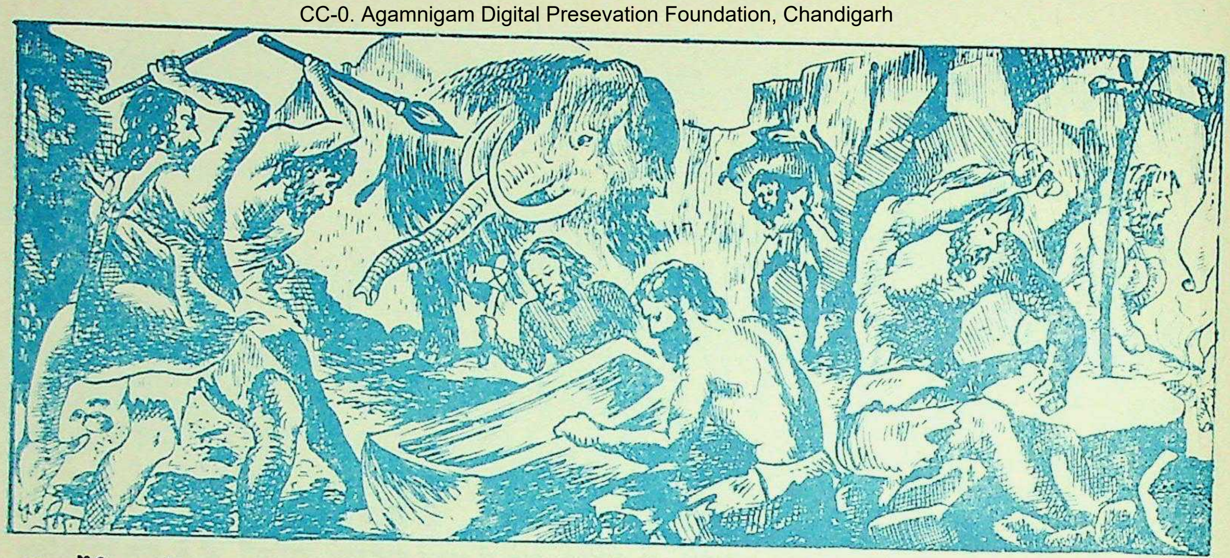

क्वाटर्नेरी युग के मध्याह्नकाल में मानव-जीवन की झाँकी ऐसी ही कुछ थी ! आज से लगभग एक लाख वर्ष पूर्व के इस 'पाषाणयुग' में, पत्थर के अपने औजार-हथियारों से मैमथ जैसे समसामयिक भीमकाय जीवों का मुकाबला करता हुआ, आदि मानव आग से परिचित हो चुका था और नौका-निर्माण जैसे चमत्कारों की भी झलक वह दिखाने लगा था।

नियामत की बदौलत पिछले कुछ लाख वर्षों की कालावधि में उसने धरती पर अपना बोल-बाला स्थापित कर लिया और स्वतः भी एक ऐसी नवीन सृष्टि का विस्तार कर डाला कि पृथ्वी की कहानी का अधिकांश अब उसी की रामकहानी बन गया है !

इस प्रकार पूर्ववर्ती 'दानव-युग' का अंत होकर 'मानव-युग' का आविर्भाव हुआ। इस युग का दायरा आज से लगभग दस लाख वर्ष पीछे तक फैला हुआ है, जब कि वास्तविक पाषाणकालीन मानव का प्रादुर्भाव हुआ था। यह थी प्लिस्टोसीन युग के आरंभ और सवा करोड़ वर्ष पूर्व तक पसरे हुए प्लायोसीन युग के संधिकाल की बात। इस समय तक धरती पर महाद्वीप-महासागरों की आज की-सी बहुत-कुछ झाँकी निखर चुकी थी और पृथ्वी की धरातलीय स्थिति में बहुत-कुछ संतुलन स्थापित हो चुका था ! तदुपरान्त अपनी उस आदिम वनमानुषीय स्थिति से ऊपर उठकर, जीव-सृष्टि का शिरोमणि मानव किस प्रकार वृक्षवासी से गुफावासी बना—किस प्रकार गुफाओं और कंदराओं से बाहर निकलकर, बस्तियों और गाँवों के झोपड़ों एवं मकानों में उसने रहना शुरू किया; किस तरह वह शिकारी से पशुपालक और चरवाहा बना एवं अंत में खानाबदोशी की जिन्दगी से ऊपर उठकर कृषक, कलाकार, यंत्रकार, औद्योगिक व्यवसायी एवं सभ्य सुसंस्कृत सामाजिक प्राणी का पद उसने ग्रहण किया——ये सब तो मानवीय इतिहास के उस वृहत् कथानक की बातें हैं, जिसका कि दायरा इस पुस्तक की परिधि से बाहर है।

धरती का रूप निरन्तर बदलता रहा है

याद रखना चाहिए कि भिन्न-भिन्न युगों में पृथ्वी के धरातल के भिन्न-भिन्न मानचित्र प्रस्तुत होते रहे हैं ! जहाँ कभी सागर लहराता था, वहीं बाद में हरे-भरे मैदान लहलहाते नजर आए ! जहाँ कभी नदियाँ बहीं, वहीं बाद में रेगिस्तान दिखाई देने लगे ! जहाँ कभी उन्नत चट्टानें मस्तक ऊँचा किये खड़ी थीं, वहीं सागर की उत्तुंग लहरें उछलते-कूदते दिखाई दीं !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहाँ कभी हिमानियों की बर्फ की चादर बिछी रही, वहीं चहलपहल से भरे नगरों और सुहावने वन-उपवनों की झाँकी फैली ! इसी बीच पृथ्वीतल पर बार-बार हिमयुगों की जो पुनरावृत्तियाँ हुई, उनसे भी विभिन्न भूभागों को समय-समय पर अपना चेहरा बदलने के साथ-साथ जलवायु-संबंधी भारी उथलपुथल का अनुभव करना पड़ा ।

यही है पृथ्वी की रामकहानी ! पर यह न समझो कि उसका अभी अंत हो गया है। अभी तो उसमें न जाने कितने ही अध्याय जुड़ने शेष हैं, जिनका कि तारतम्य भविष्य के गर्भ में छिपा हुआ है ! कौन जानता है, हमारी इस लीलाभूमि का अंत कैसा होगा !

क्या कभी भूपृष्ठ के सभी स्थलभाग एक थे ?

जैसा कि नीचे प्रदर्शित काल्पनिक मानचित्र से प्रकट है, यदि हम पृथ्वी के वर्तमान प्रधान भूखंडों को इस प्रकार से सटाकर एक-दूसरे से जोड़ें कि नई और पुरानी दुनियाँ को विभाजित करनेवाला अटलांटिक महासागर रूपी महान् खंदक मिट जाय, तो यह देखकर अचंभा होता है कि दोनों अमेरिका और अफ्रीका तथा योरप महाद्वीपों के आमने-सामने के स्कंध एवं खाँचे एक-दूसरे में लगभग ठीक-ठीक से बैठ जाते हैं ! इसी अद्‌भुत कल्पना से उत्साहित होकर अनेक भूवैज्ञानिकों ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि पृथ्वी के वर्तमान विशाल भूखंड कभी एक थे और कालान्तर में भूपृष्ठ की क्रिया-प्रक्रियाओं के अधीन एक-दूसरे से जुदा होकर वे दूर हट गए ! इस सिद्धान्त के पक्ष में इन विद्वानों ने जो-जो दलीलें दी हैं, उनमें से एक यह भी है कि पृथ्वी के भूपृष्ठ के इन पृथक् हो जानेवाले भूभागों की आमने-सामने की तटवर्ती चट्टानों की रचना, उनमें पाये जानेवाले जीवों के प्रस्तर-विकल्प एवं वर्तमान युग में उनकी गोद में पनपनेवाले पेड़-पौधों तथा जानवरों के रूपों में आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है । अनुमान यह किया जाता है कि आज से पाँच-सात करोड़ वर्ष पूर्व, संभवतः टर्टिएरी और क्वाटर्नेरी युग के बीच की कालावधि में तत्कालीन भूपृष्ठ का स्थलभाग क्रमशः दो विशाल खंडों में बँट गया था । ये खंड खिसकते-खिसकते एक-दूसरे से इतने दूर हट गए कि उनके बीच कई हजार कि० मी० चौड़ा एक खंदक बन

यदि उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका को इस प्रकार सटाकर योरप और अफ्रीका से मिला दिया जाय कि बीच का महासागर मिट जाय तो उनके कंधे आमने-सामने के खाँचों में फिट बैठ जाते हैं ! इसी आधार पर भूपृष्ठों के उपर्युक्त भागों के कभी एक होने तथा बाद में जुदा हो जाने की अटकल लगाई गई है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया। उसी में महासागर का जल भर गया ! यहीं दो भूखंड इन दिनों एक ओर हमारी आज की नई दुनिया (अर्थात् उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका) तथा दूसरी ओर पुरानी दुनिया (अर्थात् यूरेशिया और अफ्रीका महाद्वीप) के रूप में पहचाने जाते हैं ! उनके बीच के खंदक की जलराशि ही हमारा आज का अटलांटिक महासागर है ! इस मत के प्रतिपादकों में प्रमुख वेगेनर नामक जर्मन भूवैज्ञानिक था । परन्तु इस सिद्धान्त को कई लोग नहीं मानते !

'अटलांटिस' नामक लुप्त महाद्वीप की समस्या

भूपृष्ठ के स्थलभागों की मूलभूत एकता के इस विवाद के साथ ही प्राचीन यूनानियों द्वारा प्रसारित इस दंतकथा के भी सूत्र उलझे हैं कि जहाँ हमारा आज का अटलांटिक महासागर लहरा रहा है, वहीं नौ-दस हजार वर्ष पूर्व एक सुसमृद्ध विशाल महाद्वीप बसा था ! यह महाद्वीप बाद में भूकंप या ऐसी ही अन्य किसी प्रलयंकर भूभौतिक दुर्घटना के फलस्वरूप सागर की गोद में विलीन हो गया। इस भूभाग को यूनानी लोग 'अटलांटिस' या 'अटलांटिका' के नाम से पुकारा करते थे । महान् दार्शनिक प्लेटो (अफलातून) ने तो इस लुप्त भूभाग के निवासियों की आदर्श राज्य-व्यवस्था का भी जिक्र किया है और उसकी बहुत अधिक प्रशंसा कर डाली है ! यद्यपि इस बात के कोई भूवैज्ञानिक या ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नही हैं (और अधिकतर पौराणिक गाथाओं की भाँति इसे भी एक निरी मनगढ़न्त कपोल-कल्पना ही समझना चाहिए), फिर भी भूतत्त्ववेत्ता इस बात से सहमत हैं कि एक समय था जबकि दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका के भूभाग एक ही विस्तृत भूखंड के रूप में जुड़े हुए थे । इसी प्रकार से किसी समय भारतवर्ष से ठेठ आस्ट्रेलिया तक एक जुड़ी हुई भूशृंखला के होने की बात को भी विज्ञान द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है । कहते यह हैं कि आज से तीस-बत्तीस करोड़ वर्ष पूर्व के डेवोनियन और कार्बोनिफैरस युगों में पृथ्वी का सारा स्थलभाग दो महान् खंडों में नियोजित था । एक तो था वह उत्तरी स्थल-समूह, जिसे 'लॉरेशिया' का नाम दिया गया है । उसमें योरप, उत्तरी अमेरिका, ग्रीनलैंड तथा एशिया के ऊपरी एवं मध्यवर्ती समस्त भूभाग सम्मिलित थे । दूसरा था दक्षिणी स्थल-समूह, जिसमें विंध्य-मेखला से नीचे का भारतवर्ष का सारा भाग, अरब का पठार, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका का बहुत-सा हिस्सा एवं आस्ट्रेलिया का समूचा भूभाग समाया हुआ था । इसे भूतत्त्ववेत्ताओं ने 'गोंडवानालैंड' के नाम से अभिहित किया है ! इन दोनों स्थल-समूहों को विभाजित करता हुआ एक विशाल सागर—'टेथी महासागर'—उन दिनों लहराता था, जिसने इटली से भारतवर्ष के गंगा-जमुना और सिंधु के मैदान तथा राजस्थान तक के भूभागों को पूरी तरह डुबो रक्खा था !

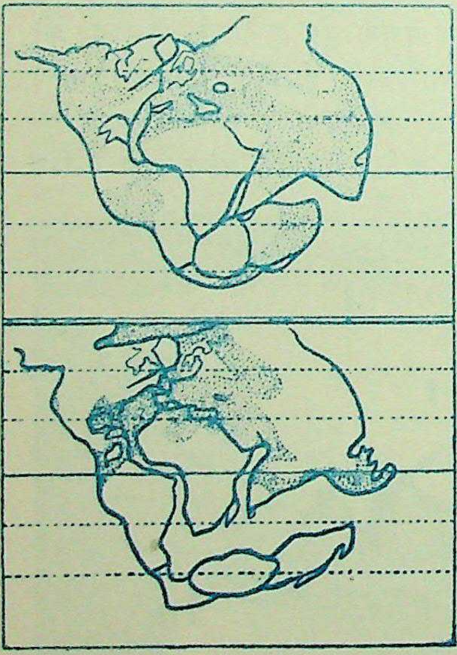

(ऊपर) कार्बोनिफैरस युग के अंत और (नीचे) टर्टिएरी युग के आरंभ में धरातल की रूपरेखा । भूवैज्ञानिकों का कथन है कि समस्त भूखंड इन दिनों एक-दूसरे से सटे हुए थे । बीच-बीच में उनमें छिछले सागर थे, जो प्रस्तुत मानचित्रों में छाया द्वारा सूचित हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी का चिप्पड़ विशाल भूखंडों और जलाशयों को मिलाकर बना है। ये खंड 'महाद्वीप' और 'महासागर' के नाम से पुकारे जाते हैं। 'महाद्वीप' पाँच हैं––'यूरेशिया' (अर्थात् एशिया और योरप का सम्मिलित भूखंड), 'अफ्रीका', 'उत्तरी अमेरिका', 'दक्षिणी अमेरिका' और 'ऑस्ट्रेलिया'। कहने को विशाल 'यूरेशिया' भूखंड के अभिन्न अंग होने पर भी व्यवहार में 'एशिया' और 'योरप' दो अलग-अलग स्वतंत्र महाद्वीप ही माने जाते हैं। इसी तरह अखंड हिमराशि से ढका दक्षिणी ध्रुववर्ती 'एंटार्कटिका' नामक भूखंड भी प्रायः महाद्वीप कहकर पुकारा जाता है, यद्यपि इस भूभाग की ठीक-ठीक रूपरेखा अभी स्पष्ट नहीं हो पाई है।

महाद्वीपों की तरह 'महासागर' भी पाँच हैं–– 'प्रशान्त' (या पैसिफिक), 'अटलांटिक', 'हिन्द', 'उत्तरी' (या आर्कटिक) और 'दक्षिण' (या एंटार्कटिक)। यह ध्यान देने की बात है कि पृथ्वी का स्थलभाग उसकी कुल सतह का केवल २९.२१ प्रतिशत अंश है, जबकि उसके जलभाग का क्षेत्रफल लगभग ७०.७९ प्रतिशत है। इस दृष्टि से हमारी इस लीला-भूमि को वस्तुतः एक 'जलीय ग्रह' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है।

भूपृष्ठ का मानचित्र कैसे उतारा जाय––भाँति-भाँति के प्रक्षेप

किसी भी क्षेत्र का समुचित अध्ययन करने के लिए उसका मानचित्र या नकशा उतारना आवश्यक होता है। परन्तु चूँकि पृथ्वी एक गोला है, अतः कागज की सपाट सतह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उसका सही मानचित्र बनाना आसान काम नहीं है। इस समस्या का समाधान भू-वैज्ञानिकों ने भाँति-भाँति के 'प्रक्षेपों' (या प्रोजेक्शन) की सहायता लेकर किया है। शायद तुम्हें यह बात मालूम होगी कि यदि ढोल की आकृति की किसी वस्तु की शक्ल को हम समतल या सपाट सतह में बदलना चाहें, तो उसका सरल उपाय यही है कि उक्त ढोल की दीवार को कहीं चीरकर सपाट फैला दें। इस प्रकार एक आयताकार समकोण सपाट आकृति प्राप्त हो जायगी। इसी तरह से शंकु या कुप्पी की शक्ल की वस्तु की दीवार को भी चीरकर फैलाया जा सकता है, जिससे लगभग अर्द्धवृत्त जैसी समतल आकृति प्राप्त होगी। पृथ्वी की ऊपरी सतह के मानचित्र उतारने की क्रिया में भी इसी तरह के उपायों से काम लिया गया है। चूँकि उसकी शक्ल ढोल या शंकु के बजाय गोले जैसी है, अतः उक्त गोले की सतह को मानो किसी ढोल अथवा शंकु की भीतरी दीवार-पृष्ठ पर फैली हुई कल्पित की जाती है। ऐसा करने पर, सम्भवतः धरती के विविध जल-स्थलखंडों की वास्तविक आकृतियाँ काफी विकृत हो जाया करती हैं। परन्तु सिवा इसके अन्य चारा नहीं है।

इस प्रकार की खींचतान द्वारा, ज्यामिति के नियमों के अधीन, जिन विधियों से अलग-अलग पैमाने पर पृथ्वी के मानचित्र तैयार किए जाते हैं, उन्हें भूवैज्ञानिक शब्दावली में 'प्रक्षेप' (या प्रोजेक्शन) कहा जाता है। ये प्रक्षेप कुल तीस प्रकार के हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण नाम ये हैं— 'मर्केटर' (ढोलाकार), 'कोनिकल' (शंकु के आकार का), 'ग्लोब्यूलर' (वर्तुल), 'ऑर्थोग्राफिक' (लंबरेखी), 'स्टीरिओग्राफिक' (खमध्यसमरूपी), 'एजिम्युथल' (दिगंशीय) और 'होमोलोग्राफिक' या 'मोलविड' (समक्षेत्रीय)। इन सबकी अपनी-अपनी खूबियाँ हैं, जिनके अनुसार उनका प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ, किसी प्रक्षेप के द्वारा विविध भूक्षेत्रों की आकृतियाँ हूबहू सही चित्रांकित हो जाती हैं, यद्यपि उनके क्षेत्रफल की नाप में फर्क आ जाता है; तो दूसरे कुछ प्रक्षेपों में क्षेत्रफल को सही उतारने का लक्ष्य सामने रखा जाता है, चाहे इस कोशिश में आकृतियों की यथार्थता में अंतर क्यों न आ जाए।

वस्तुतः पृथ्वी का शत-प्रतिशत सही मानचित्र केवल एक ही उपाय द्वारा उपलब्ध हो सकता है और वह उपाय है कागज की सपाट सतह के बजाय एक गोले या 'ग्लोब' पर उसका नकशा उतारना। ऐसे 'ग्लोब' प्रायः तुमने स्कूलों की भूगोल-कक्षाओं में देखे होंगे। ये एक सुनिश्चित कोण बनाते हुए अपने अक्ष पर झुके हुए रहते हैं और उक्त कीली पर लट्टू की तरह घुमाए भी जा सकते हैं, जिससे छोटे पैमाने पर पृथ्वी के गोले की छवि हूबहू हमारे मन में पैठ जाती है।

अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ

पृथ्वी के मानचित्रों में जहाँ जल-स्थलभागों की रूपरेखा विविध ब्योरे सहित प्रत्यांकित रहती है, वहाँ साथ ही साथ कुछ आड़ी-खड़ी समानान्तर-सी रेखाओं का एक जाल भी बिछा हुआ देखने को मिला करता है। इन रेखाओं के नाम और प्रयोजन से सम्भवतः तुम अपरिचित नहीं होगे। कारण, भूगोल की सभी पोथियों में उनका विवरण दिया हुआ रहता है। फिर भी यहाँ उनके बारे में कुछ बातें बता देना हम आवश्यक समझते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
इनमें से जो रेखाएँ आड़ी होती हैं, वे इस प्रकार एक दूसरे से ठीक समान्तर अंकित होती हैं, जैसे पृथ्वी के गोले के आसपास पहनाए हुए छोटे-बड़े आकार के विविध वृत्त हों ! इन्हें 'अक्षांश रेखा' (लैटीट्यूड) के नाम से पुकारा जाता है। दूसरी जो खड़ी रेखाएँ उत्तरी ध्रुवबिन्दु से निकलकर, पृथ्वी के गोले को नारंगी की फाँकों जैसे अर्द्धवृत्तों में काटती हुई, दक्षिणी ध्रुवबिन्दु पर पुनः जा मिलती हैं, 'देशान्तर रेखाएँ' (लांजीट्यूड) कहलाती हैं। ये दूसरी प्रकार की रेखाएँ स्वयं समान्तर तो नहीं होतीं, परन्तु वे लंबाई में एक दूसरे के बराबर होती हैं। इसी तरह उनके द्वारा काटी गई फाँकें भी नाप में समान होती हैं। गिनती में अक्षांश रेखाओं की संख्या १८० और देशान्तर की ३६० होती है।

शून्य अक्षांश या भूमध्यरेखा तथा शून्य देशान्तर

तुम्हें मालूम ही है कि पृथ्वी की कल्पित धुरी के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव रूपी दो छोर माने गए हैं। इस कल्पित अक्ष पर लट्टू की तरह नाचनेवाले पृथ्वी के विशाल गोले के मध्यवर्ती कटि-प्रदेश के ठीक बीचोबीच एक वृत्ताकार रेखा निर्धारित की गई है, जो कि इस गोले को उत्तरी और दक्षिणी नामक दो गोलार्द्धों में बराबर-बराबर विभाजित करती है। इस महत्वपूर्ण कल्पित रेखा को 'भूमध्यरेखा' अथवा 'विषुवत् रेखा' (इक्वेटर) कहकर पुकारा जाता है। इसी रेखा को 'शून्य अक्षांश' (०°) मानकर उसके ऊपर और नीचे अर्थात् उत्तर-दक्षिण में बराबर-बराबर अंतर से क्रमशः नब्बे-नब्बे अक्षांश रेखाओं का प्रत्यांकन पृथ्वी के गोले के मानचित्र में किया जाता है। यह ध्यान देने की बात है कि अक्षांश रेखाएँ पृथ्वी के गोले के आसपास जो वृत्त बनाती हैं, वे ज्यों-ज्यों भूमध्यरेखा से उत्तर या दक्षिण में दूर हटते चले गए हैं, त्यों-त्यों परिधि में निरंतर छोटे होते चले गए हैं, यहाँ तक कि ९०° उत्तर या दक्षिण अक्षांश (जोकि ध्रुवों के सूचक हैं) वस्तुतः रेखाएँ न रहकर विन्दु मात्र हैं ! शायद तुमने भूगोल की पुस्तकों में 'कर्क' और 'मकर' रेखाओं का भी नाम पढ़ा होगा। ये क्रमशः २३॥° उत्तर एवं २३॥° दक्षिण अक्षांश रेखाएँ हैं, जिनका पृथ्वी के ऋतु-चक्र के फेरबदल से महत्वपूर्ण नाता है। इस संबंध में विशेष जानकारी तुम्हें आगे चलकर मिलेगी।

जिस प्रकार भूमध्यरेखा को 'शून्य अक्षांश' (०°) माना गया है, इसी प्रकार से लंदन की ग्रिनिच-वेधशाला पर से गुजरनेवाली देशान्तर रेखा को 'शून्य देशान्तर' की संज्ञा प्रदान की गई है। इसी के पूर्व और पश्चिम में क्रमशः १८०–१८० देशान्तर रेखाएँ फैली हुई हैं। ये सब अक्षांश रेखाओं को काटती हैं तथा भूमध्यरेखा के साथ ठीक ९०° का कोण बनाती हैं। सूक्ष्म नाप-जोख के लिए प्रति दो अक्षांश अथवा देशान्तर रेखाओं के बीच के फासले को साठ समान भागों में बाँट दिया गया है, जिन्हें 'मिनट' या 'पल' कहा जाता है। इसी तरह प्रत्येक मिनट के फासले को भी पुनः साठ भागों में विभक्त कर दिया गया है, जिनमें से प्रत्येक को 'सैकंड' या 'विपल' कहते हैं। अक्षांश एवं देशान्तर रेखाओं द्वारा पृथ्वी के क्षेत्रफल के इस विभाजन द्वारा धरातल के नक्शे में किसी भी स्थल की ठीक-ठीक स्थिति सूचित की जा सकती है, यही इस योजना की उपयोगिता है। किसी अक्षांश या देशान्तर पर क्रमवार सैकड़ों-हजारों स्थल स्थित हों, परन्तु किसी भी हालत में ऐसे दो स्थान एक साथ नहीं मिल सकते, जिनकी कि अक्षांश और देशान्तर दोनों समान होंगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

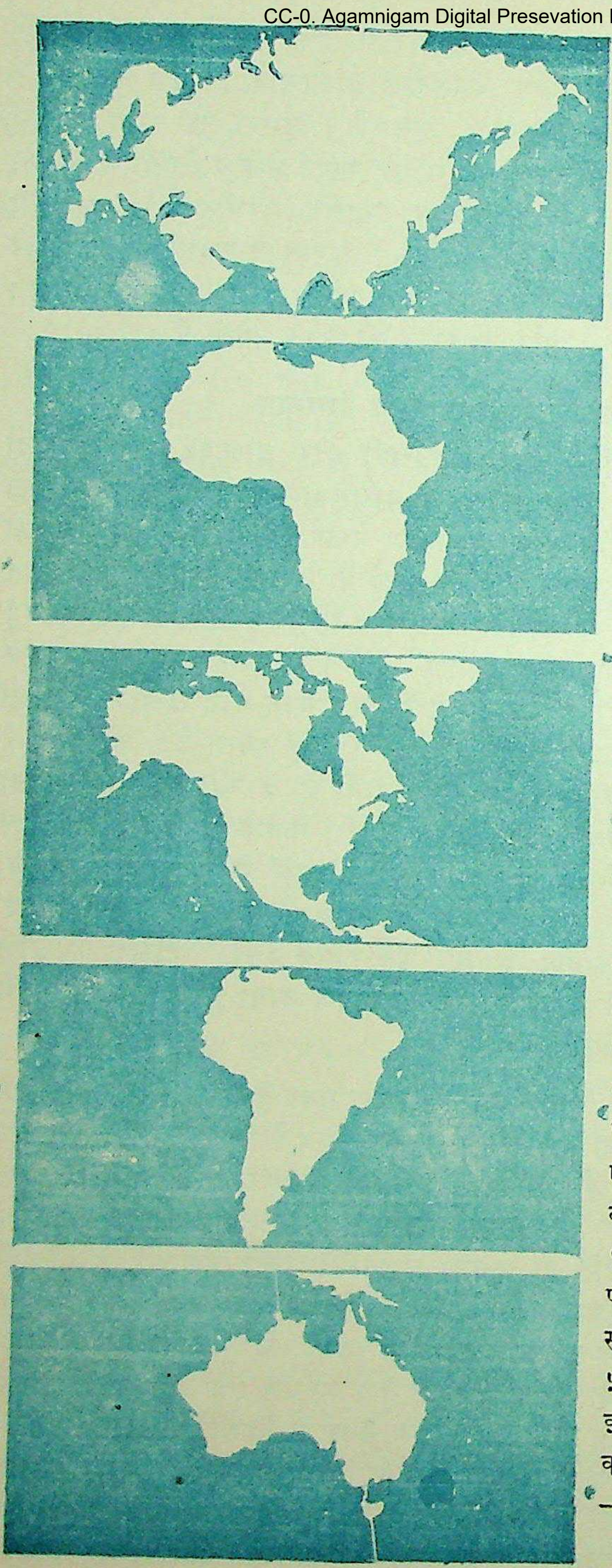

आओ, अब इन रेखाओं की मदद से पृथ्वी के धरातल के पूर्वोक्त विशाल भूखंडों और महोदधियों की स्थिति जानने का प्रयत्न करें।

'यूरेशिया' अर्थात् एशिया और योरप

पृथ्वी के स्थलभाग का सबसे बड़ा भूभाग 'यूरेशिया' है, जो कि एशिया और योरप नामक दो महाद्वीपों को मिलाकर बना है। यह विशाल भूखंड उत्तर में ८०° अक्षांश से आरंभ होकर दक्षिण में ठेठ भूमध्यरेखा के नीचे १०° अक्षांश तक फैलता चला गया है। इसका दक्षिणतम सिरा सुमात्रा, जावा, बाली, आदि द्वीपों की द्वीप-शृंखला है। पूर्व में इसकी सीमा लगभग १८०° पूर्वीय देशान्तर और पश्चिम में लगभग १०° पश्चिमी देशान्तर तक व्याप्त है। यह भूखंड लगभग सभी बातों में पृथ्वी के भूभागों का सिरमौर है। क्या क्षेत्रफल और क्या जनसंख्या––क्या उसकी गोद में पनपनेवाली सभ्यताओं की प्राचीनता और क्या संस्कृति, धर्म, ज्ञान, विज्ञान आदि के क्षेत्रों की उसकी कमाई––सभी की दृष्टि से यह भूभाग इतिहास में सर्वोपरि आसन पर प्रतिष्ठित रहा है। क्षेत्रफल में तो अकेला उसका ज्येष्ठ अंश एशिया ही अन्य सभी भूभागों को मात करने के लिए काफी है! वह पूरे २४,१८७,४०० वर्ग-किलोमीटर के दायरे में फैला हुआ है, जब कि इसके कनिष्ठ सहोदर योरप का अपना क्षेत्रफल केवल ५,८७२,१६० वर्ग-किलोमीटर ही है। इन दोनों महाद्वीपों की गोद में कुल मिलाकर लगभग सवा दो अरब मनुष्य बसते

पंच महाद्वीप—(ऊपर से नीचे) यूरेशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं, जो कि सारी दुनिया की शेष जनसंख्या से अधिक है। इनमें पौने दो अरब से भी अधिक नर-नारियों को अकेला एशिया ही अपनी गोद में बसाये हुए है! प्राकृतिक विशेषताओं की दृष्टि से इस विशाल क्षेत्र में हिमालय, आल्प्स, हिंदूकुश जैसी महान् पर्वतश्रेणियाँ हैं! गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, याङ्गशी, ह्वाङ्गहो, आमूर, येनिसी, ओबी, वोल्गा, दजला, फरात, नीपर, डैन्यूब और राइन जैसी प्रसिद्ध नदियाँ हैं! तिब्बत, पामीर, ईरान और दक्खिन भारत के पठारों जैसी उच्च भूमियाँ हैं तथा गोबी और अरब के रेगिस्तानों जैसी विशाल मरुभूमियाँ भी हैं! यहीं भारत, चीन, ईरान, इराक, यूनान, इटली, जर्मनी, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, रूस, जापान, प्रभृति देशों का चित्रपट छाया हुआ है। इस महाभूभाग का विस्तार उत्तर से दक्षिण में ८,८०० किलोमीटर और पूर्व से पश्चिम में लगभग उन्नीस हजार किलोमीटर है!

अफ्रीका

यूरेशिया के बाद क्षेत्रफल की दृष्टि से दूसरा स्थान अफ्रीका का है। यह ३७·२१ अक्षांश (उत्तर) से ३४.५१ अक्षांश (दक्षिण) तक तथा १७.३३ देशान्तर (पश्चिम) से ५१·२१ देशान्तर (पूर्व) के बीच लगभग १६,३४८,४०० वर्ग-किलोमीटर के क्षेत्र में पसरा हुआ है। इसकी लंबाई लगभग आठ हजार किलोमीटर और चौड़ाई सात हजार कि० मी० है। इसके लगभग बीचोबीच से भूमध्यरेखा निकली है, जिसके कारण यह प्रदेश एक उच्च ताप का प्रदेश बन

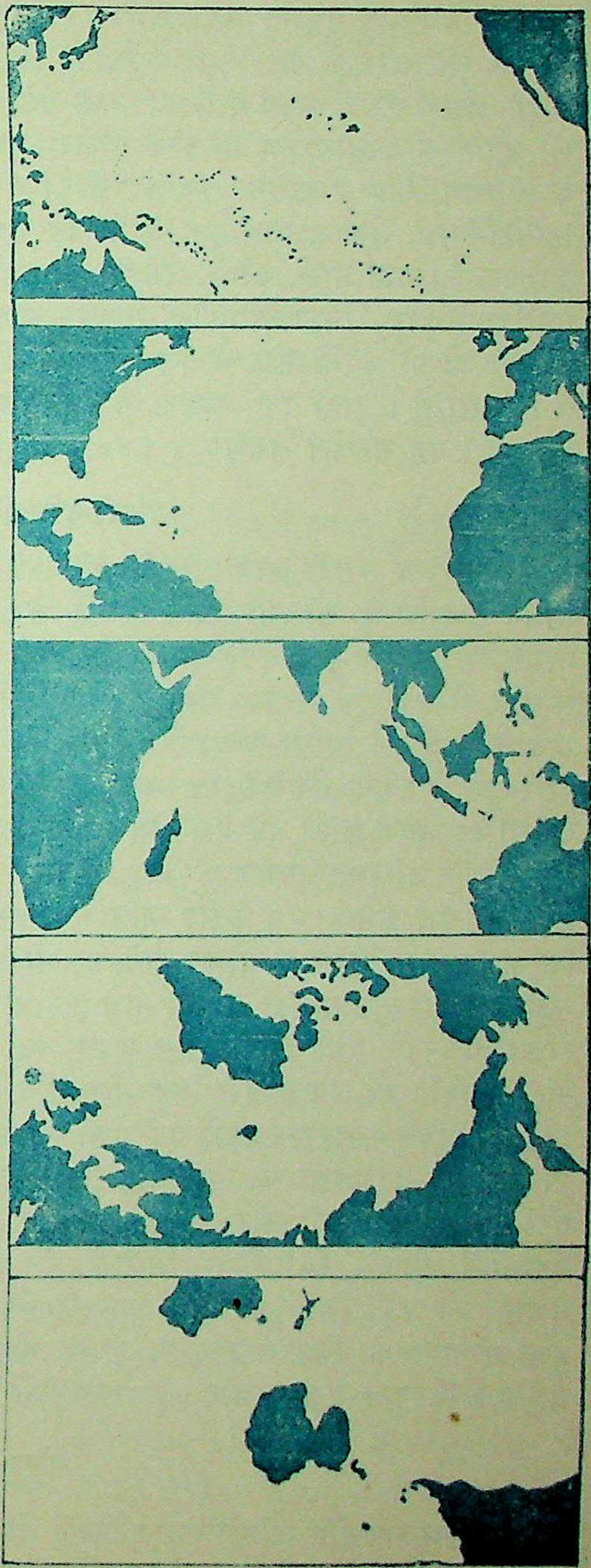

पंच महासागर—(ऊपर से नीचे) पैसिफिक या प्रशांत, अटलांटिक, हिंद, उत्तरी और दक्षिणी महासागर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है। यह है मुख्यतः कृष्णकाय वर्ण की मनुष्य-जातियों का प्रदेश। सभ्यता के विकास की दौड़ में यह अन्य महाद्वीपों से अभी काफी पिछड़ा हुआ माना जाता है, यद्यपि इसके उत्तरी भाग में स्थित मिस्र जैसे देशों में हजारों वर्ष पूर्व मानवीय सभ्यता की प्रगति की असाधारण झाँकियाँ निखर चुकी हैं। इस क्षेत्र की आबादी साढ़े बाईस करोड़ के लगभग है। प्राकृतिक सुषमा की दृष्टि से यह प्रदेश सिंह, हाथी, गैंडा, जिराफ, हिप्पोपोटेमस, जेबरा, बनमानुस, आदि बड़े-बड़े डीलडौल के प्राणियों से भरपूर घने जंगलों का क्षेत्र है। यहाँ नील, काँगो, जंबेसी, नाइजर जैसी महान् नदियाँ हैं। विक्टोरिया, सुपीरियर और टाँगानाइका जैसी विशाल झीलें हैं। सघन वनप्रान्तों के साथ बीहड़ मरुभूमियों को भी अपनी गोद में पनपाए रहने के नाते यह भूखंड संसार के सभी भूभागों से निराला है। यहीं पर सहारा का वह विशाल रेगिस्तान है, जो कि दुनिया में सबसे बड़ा है। यह मरुक्षेत्र लगभग ५,६००,००० वर्ग-किलोमीटर भूमि में फैला हुआ है।

उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका

तदुपरान्त उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका नामक उन दो महाद्वीपों की रूपरेखा हमारे सामने उभरती है, जो सम्मिलित रूप से 'नई दुनिया' के नाम से पुकारे जाते हैं। यह नामकरण इसलिए हुआ है कि इन दो महाद्वीपों का पता कोलंबस आदि अन्वेषकों के प्रयत्न से कुछ ही सदी पूर्व लगाया गया है। ये दोनों भूखंड एक ही सिलसिले में ठेठ उत्तरी ध्रुव के समीप के अस्सी-पच्चासी अक्षांश से लेकर दक्षिण में पचास-साठ अक्षांश तक पसरे हुए हैं। एक सँकरे-से डमरूमध्य द्वारा जहाँ ये परस्पर जुड़े हुए हैं, वहीं पर पनामा की प्रसिद्ध नहर काटी गई है। क्षेत्रफल में उत्तरी अमेरिका १२,१६६,८८० वर्ग-किलोमीटर और दक्षिणी अमेरिका १०,६७८,२४० वर्ग-किलोमीटर के लगभग है। इन दोनों की जनसंख्या क्रमशः २६ करोड़ और १४ करोड़ आँकी जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्षेत्रफल में योरप से चौगुने होने पर भी इन भूभागों की जनसंख्या उससे पौनी भी नहीं है! परन्तु आबादी में कम होने पर भी आर्थिक सुसमृद्धि की दृष्टि से उत्तरी अमेरिका संसार के सभी देशों से इस समय बढ़ा-चढ़ा है। इसका कारण एक तो वहाँ के नए भूभागों की अगाध प्राकृतिक सम्पति है। दूसरे, अद्‌भुत वैज्ञानिक प्रगति के कारण वहाँ के विविध कल-कारखानों एवं खेती का असाधारण विकास है, जिससे कि दुनिया के बाजारों पर यहाँवालों का आधिपत्य स्थापित हो गया है। इन महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर क्रमशः रॉकी और एंडीज नामक दो महान् गिरिश्रेणियाँ फैली हुई हैं। यहाँ के मैदानों में अमेजन, मिसिसिपी, मिसौरी, सेंट लारेंस जैसी कई महान् नदियों द्वारा सिंचित भूभागों की वनराजि निखरी है। इन महाद्वीपों के ठेठ उत्तर में ध्रुव-प्रदेश के साथ मिला हुआ ग्रीनलैंड का विशाल टापू है, जो कि संसार का सबसे बड़ा द्वीप माना जाता है। यह एक बिल्कुल उजाड़ और हिमाच्छादित प्रदेश है।

ऑस्ट्रेलिया

अंतिम महाद्वीप ऑस्ट्रेलिया दक्षिणी गोलार्द्ध में भूमध्यरेखा से नीचे १० और ४० अक्षांश तथा ११० एवं १५५ देशान्तरों के बीच ४,८२२,४८० वर्ग-किलोमीटर के क्षेत्र में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फैला हुआ है। इसकी आबादी तो एक करोड़ से भी कम है, परन्तु इस बात के लिए इसका काफी महत्व है कि सोना, चाँदी, आदि अनेक मूल्यवान् धातुओं तथा ऊन, चमड़ा, गेहूँ, आदि की उपज का यह एक महान् क्षेत्र है। इसी के पड़ोस में न्यूजीलैंड द्वीप-समूह है, जिससे परे फिर ध्रुव दक्खिन में 'एण्टार्कटिका' का हिममंडित वीरान प्रदेश है। एण्टार्कटिका के ध्रुवप्रदेश की अभी पूर्ण रूप से नकशे पर रूपरेखा तक नहीं उतर पाई है, क्योंकि वह सदा बर्फ ही से ढका रहता है! परन्तु यह धारणा की जाती है कि वह लगभग दो हजार मीटर की ऊँचाई का एक विस्तृत पठार होगा, जिस पर कि लगभग एक हजार मीटर मोटी बर्फ की तह जमी होगी। यह अज्ञात प्रदेश पृथ्वी का एक रहस्यलोक है, जिसके कि गर्भ में हमारी भावी समृद्धि के न जाने क्या-क्या बीज छिपे हैं! संसार के कई राष्ट्र आजकल इस पर अपने-अपने उपनिवेश स्थापित करने को लथड़ रहे हैं।

पंच महासागर

यह तो हुई महाद्वीपों की बात! अब महासागरों को लो। जिस प्रकार महान् स्थल-भागों के मुखिया की पदवी यूरेशिया या एशिया-योरप महाद्वीप को प्राप्त है, उसी प्रकार महोदधियों का राजा प्रशान्त या पैसिफिक महासागर है। इसके एक ओर तो एशिया और ऑस्ट्रेलिया हैं; दूसरी ओर उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका। वह नई-पुरानी दुनिया को एक-दूसरे से अलग किए हुए है! इस महान् उदधि का क्षेत्रफल १,०२३,७७६,००० वर्ग-किलोमीटर है, अर्थात् पृथ्वी के समस्त स्थलभाग से लगभग सवा गुना! और उसकी अधिकतम गहराई है लगभग बारह हजार मीटर, अर्थात् धरातल के सर्वोच्च शिखर गौरीशंकर (एवरेस्ट) की ऊँचाई के नाप से भी सौ मीटर अधिक! कहा जाता है कि पृथ्वी के वक्षःस्थल का यह महागर्त्त पुराकाल में उसके गर्भ से चद्रमा के जन्म के समय पड़ जानेवाले महान् गड्ढे का स्मृतिचिन्ह है।

विस्तार और गहराई दोनों की दृष्टि से प्रशान्त के बाद दूसरा स्थान अटलांटिक महासागर का है। यह एक ओर तो योरप और अफ्रीका तथा दूसरी ओर दोनों अमेरिका के तटों से टकराता हुआ उत्तर-दक्षिण फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल ५०,४४८,००० वर्ग-किलोमीटर और अधिकतम गहराई दस हजार मीटर है। तदुपरान्त भारत के दक्षिण में लहरानेवाले 'हिन्द महासागर' (विस्तार ४५,३६०,००० वर्ग-किलोमीटर; अधिकतम गहराई लगभग सात हजार मीटर), उत्तरी ध्रुव-प्रदेश को घेरे हुए 'उत्तरी महासागर' (विस्तार ८,८६६,५६० वर्ग-किलोमीटर; अधिकतम गहराई लगभग चार हजार मीटर) तथा दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश में व्याप्त 'दक्षिणी महासागर' (विस्तार ३,२००,००० वर्ग-किलोमीटर; औसतन गहराई डेढ़ हजार मीटर) के नाम क्रमशः सामने आते हैं! इन सबको मिलाकर पृथ्वी की सतह के कुल जलभाग को भूविज्ञान की शब्दावली में 'जल-मंडल' के नाम से अभिहित किया जाता है। करोड़ों वर्ग-किलोमीटर के विस्तार में फैले हुए तथा लगभग आठ-नौ किलोमीटर की गहराई तक विस्तृत वरुणदेव का यह रहस्यमय साम्राज्य जल के भीतर ही भीतर फैली हुई अगम्य अदृष्ट गिरिश्रृंखलाओं, ठंढे ज्वाला-मुखियों, ऊबड़-खाबड़ शिलापर्तों और भयावह खंदकों से भरा पड़ा है। इस अद्भुत दुनिया के बारे में आगे विशेष हाल तुम जान सकोगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

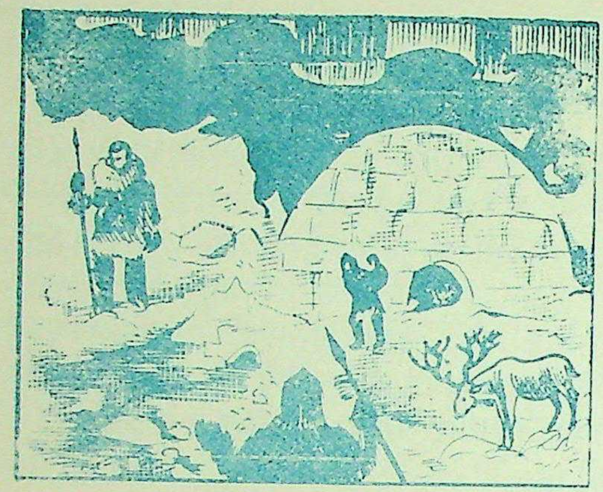

(ऊपर) टंड्रा-प्रदेश के निवासी एस्किमों लोगों की बस्ती; (बीच में) साइबेरिया के शीतप्रधान वनप्रदेश की झाँकी; (नीचे) प्रेरी क्षेत्र के घास के मैदानों का इलाका।

धरातल का प्राकृतिक विभाजन

धरातल के विविध क्षेत्रों को भूवैज्ञानिकों ने एक और प्रकार से भी बाँटा है। इस वर्गीकरण का आधार उन क्षेत्रों की अपनी-अपनी प्राकृतिक स्थिति––अर्थात् जलवायु, ताप, वर्षा, उपज, वनस्पति, जीव-जन्तु तथा मानव-जीवन की परिस्थिति आदि––पर स्थापित है। इस प्रकार के वर्गीकरण के अनुसार समूचे धरातल को 'शीत कटिबन्ध' (अर्थात् सबसे अधिक ठंढे), 'उष्ण कटिबन्ध' (अर्थात् सबसे अधिक तापवाले) और 'समशीतोष्ण कटिबन्ध' (अर्थात् इन दोनों के बीच की अवस्था के) इन तीन वृहत् वर्गों में श्रेणीबद्ध कर दिया गया है। इन खंडों के पुन: कई उपविभाग भी किए गए हैं।

शीत कटिबन्ध

'शीत कटिबन्ध' (जैसा कि इसके नाम ही से प्रकट है) धरती का सबसे ठंढा इलाका है। इसका विस्तार दोनों ध्रुवों के आसपास के हिमक्षेत्रों से लेकर एशिया, योरप और अमेरिका के घोर शीतवाले उत्तरी इलाकों तक फैला है। इस कटिबन्ध के तीन विभागों में से प्रथम वह ध्रुवप्रदेशीय निर्जन हिमक्षेत्र है, जहाँ बारहों महीने बर्फ का ही साम्राज्य छाया रहता है। यह एक वीरान प्रदेश है। इसका अधिकांश अभी अज्ञात-सा है। दूसरा है 'टंड्रा' के नाम से विख्यात बर्फीले मैदानों का वह इलाका, जो साइबेरिया, उत्तरी रूस, ग्रीनलैंड एवं उत्तरी अमेरिका के एस्किमों, लाप, समूदी आदि ध्रुवप्रदेशवासियों की लीलाभूमि है। यहाँ साल में आठ महीने बर्फ की तह बिछी रहती है। वनस्पति के नाम पर काई की जाति के कुछ पौधे ही यहाँ मिलते हैं। यहाँ के निवासी रेंडियर नामक बारहसिंघों एवं ध्रुवप्रदेशीय कुत्तों के झुंड पालकर सील जैसे समुद्री प्राणियों का शिकार करके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवन-निर्वाह करते हैं। तीसरा खंड साइबेरिया, कनाडा, फिनलैंड, अलास्का, स्वीडन और उत्तरी रूस के उन शीतप्रधान वन्य क्षेत्रों का है, जिनमें चीड़ की जाति के इमारती लकड़ी के ऊँचे वृक्षों के जंगल भरे पड़े हैं। इन प्रदेशों में भी जाड़े में बर्फ की तह जम जाती हैं। यहाँ का मुख्य व्यवसाय लकड़ी काटना है।

समशीतोष्ण कटिबन्ध

यहाँ सर्दी-गर्मी दोनों का ही बोलबाला पाया जाता है। इस कटिबंध के दो मोटे विभाग किए जा सकते हैं। कुछ तो वे प्रदेश हैं, जो अपेक्षाकृत अधिक ठंढे हैं। ऐसे प्रदेशों में एक ओर तो उत्तरी जापान, पूर्वी कनाडा, मंचूरिया, आदि का क्षेत्र हैं, जो 'पूर्वीय तट के शीतप्रदेश' के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ का जाड़ा कड़ा और सूखा तथा वर्षा कम एवं गरमी में ही होती है। दूसरी ओर हैं ब्रिटिश कोलंबिया, उत्तरी-पश्चिमी योरप, टस्मानिया, न्यूजीलैंड और दक्षिणी चिली जैसे प्रदेश, जो 'पश्चिमी तट के शीतप्रदेश' के नाम से पहचाने जाते हैं। इस खंड की जलवायु बड़ी स्फूर्त्तिदायक और स्वास्थ्यप्रद है। गरमी में कम गरमी और जाड़ों में सुखद सर्दी इस क्षेत्र की विशेषता है। इसी से इस भूभाग में उन्नति का स्तर सबसे बढ़ा-चढ़ा है। परन्तु 'समशीतोष्ण' नाम को यथार्थतः सार्थक करनेवाला क्षेत्र तो वह इलाका है, जो 'भूमध्यसागर की जलवायुवाले प्रदेश' के नाम से विख्यात है। समान गर्मी-सर्दी एवं सुहावने मौसम के इस क्षेत्र में इटली, दक्षिणी फ्रांस, स्पेन, मध्य कैलिफोर्निया, मध्य चिली, जैसे प्रदेश सम्मलित हैं। यहाँ अंगूर, नारंगी, शहतूत जैसे फलों की उत्तम उपज होती है। तदुपरान्त आता है संयुक्त राज्य के दक्षिणी भाग, आर्जेन्टाइना और मध्य एशियाई मैदानों का वह भीतरी निचला

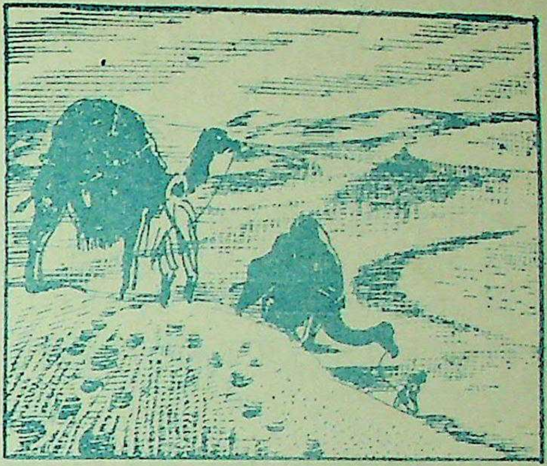

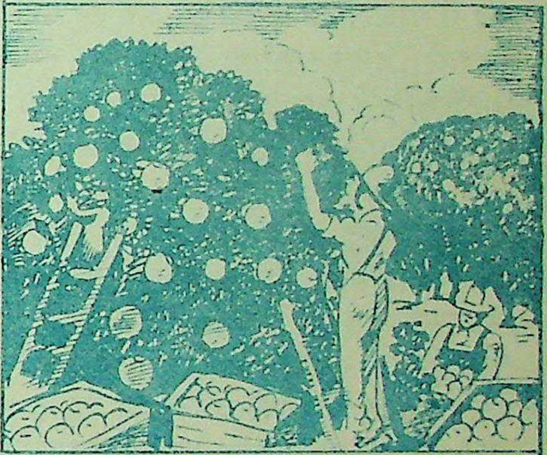

(ऊपर) रेगिस्तानी इलाकों का दृश्य; (बीच में) भूमध्य-सागरीय जलवायु के फल उपजानेवाले प्रदेशों की झाँकी; (नीचे) विषुवत् मानसूनी वन्य प्रदेश की झलक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इलाका, जिसे 'तूरानी क्षेत्र' कहते हैं। यहाँ कड़ी गरमी-सरदी पड़ा करती है और वर्षा कम होती है। इसी से यहाँ वृक्ष कम होते हैं। हाँ, घास यहाँ काफी होती है और गेहूँ आदि अनाज पैदा होते हैं। यह क्षेत्र मुख्यत: पशुपालन और कृषि का इलाका है। इसी से सम्बद्ध वह पठारी क्षेत्र है, जिसे 'ईरान के पठार के ढंग का उच्च प्रदेश' कहते हैं। इसकी विशेषता सरदी की कठोरता एवं गरमी की कमी है। यहाँ का मुख्य कार्य पशुपालन है! उष्णता-प्रधान इन घास के इलाकों से मिलते-जुलते 'प्रेरी और स्टेपीज' के वे मैदान हैं, जो जौ, रुई आदि की उपज के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं। इन मैदानी इलाकों के अलावा तिब्बत के पठार जैसे अनेक पहाड़ी क्षेत्र भी इस कटिबंध में हैं, जो घोर शीत से निपीड़ित रहते हैं। यहाँ का मुख्य व्यवसाय याक जैसे पशुओं का पालन है।

उष्ण कटिबन्ध

'उष्ण कटिबंध' एक बहुत बड़ा इलाका है। इस खंड के विषुवत् प्रदेशीय मानसूनी खंड में दक्षिणी अमेरिका की अमेजन नदी के प्रदेश, अफ्रीका के कांगो-प्रदेश के उमसभरे घने दलदली जंगल, मलाया और जावा-सुमात्रा आदि पूर्वीय द्वीपों के वनखंड तथा दक्षिणी अमेरिका एवं अफ्रीका के पूर्वीय तटवर्त्ती प्रदेश सम्मिलित हैं। यहाँ बारहों महीने कड़ी धूप और निरंतर होती रहनेवाली वर्षा का दौरदौरा बँधा रहता है। यह इलाका लकड़ी, गन्ना, केला, रबड़, मसाले आदि की उपज का मूल्यवान् क्षेत्र है। तदुपरांत 'सवाना खंड' के नाम से प्रख्यात क्षेत्र आता है, जिसमें दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया के घास के मैदान शरीक हैं। यहाँ ग्रीष्मकालीन वर्षा होती है। इस कटिबंध का सबसे महत्वपूर्ण खंड है 'मानसूनी क्षेत्र' के नाम से मशहूर वह बृहत् इलाका, जिसकी प्रधान विशेषता गरमी के साथ-साथ नियत समय पर पश्चिमी एवं पूर्वी समुद्री हवाओं द्वारा घनघोर वर्षा का होना है। इसके दायरे में हमारे अपने देश भारत के अलावा दक्षिणी चीन, इंडो-चायना, लंका, बर्मा और उत्तरी आस्ट्रेलिया के प्रदेश सम्मिलित हैं। यहाँ का प्रधान व्यवसाय कृषि है।

इन तीन सुसमृद्ध खंडों के बाद उष्ण कटिबन्ध के शेष जो दो और खंड बचे रहते हैं, उनमें से एक तो दक्षिणी अमेरिका के इक्वेडार जैसे ऊँचे पठारों का वह क्षेत्र है, जो विषुवत् रेखा पर होने पर भी ऊँचाई के कारण समान ताप का इलाका बना हुआ है। दूसरे हैं सहारा, अरब, आदि के वे 'रेतीले रेगिस्तानी इलाके,' जहाँ न तो पानी बरसता है, न खजूर के सिवाय कोई पेड़-पौधे ही उगते हैं। ये हैं संसार के सबसे अधिक वीरान क्षेत्र, जहाँ दिन में कड़ी धूप के साथ भयंकर आँधियाँ और बवंडर चला करते हैं। यहाँ का मुख्य पशु ऊँट है, जिस पर सवारी करके बद्दू जैसे कुछ खानबदोश सदैव यहाँ से वहाँ घूमते फिरते हैं।

तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि पृथ्वी के कई भूभागों की अभी भी हमें पूरी तरह जानकारी नहीं है। उदाहरणार्थ, हिमालय-पर्वतमाला का बहुतेरा अंश, अमेजन नदी के सघन वनों और दलदलों का काफी इलाका, सहारा और गोबी के बीहड़ रेगिस्तानों का अधिकांश प्रदेश एवं उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवक्षेत्रों का बहुत-कुछ भूभाग अभी भी दुर्गम बना हुआ है––वहाँ तक मनुष्य की पहुँच नहीं हो पाई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह धरती अभी भी हमारी खोज की प्रवृत्ति एवं साहस को चुनौती दे रही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी के विशाल गोले के भीतर किस तरह की दुनिया छिपी है ? यह गोला भीतर से ठोस है या पोला ? उसका केन्द्रीय महापिण्ड द्रवीभूत है या पाषाणवत् ? उसका ताप कितना होगा ? कितना दबाव वहाँ पड़ता होगा ? किस प्रकार की हलचलें वहाँ हो रही होंगी ? किन-किन पदार्थों से वह बना होगा ? ये जटिल प्रश्न वैज्ञानिकों के मन में रह-रहकर उठते रहे हैं और सदैव ही उठते रहेंगे ! धरती का यह हृदयप्रदेश हमारे लिए नितान्त अगम्य और अदृष्ट है। उस तक पहुँच पाने के कोई साधन हमारे पास नहीं ! इसलिए जो कुछ हाल उसके बारे में हम बता सकते हैं, वह है अनुमान पर आधारित–प्रत्यक्ष अनुभव या निदर्शन द्वारा प्राप्त सीधी जानकारी नहीं !

धरती का अन्तराल––'सेंट्रोस्फीयर' नामक केन्द्रीय पिण्ड

पृथ्वी का अंतराल सूर्य की सतह पर के ताप (अर्थात् लगभग छः-सात हजार शतांश तक) की भीषण गरमी में तपती हुई आग की एक प्रचंड भट्टी जैसा है, जिसके चारों ओर कवच के रूप में ऊपरी चिप्पड़ की कुछ कि० मी० मोटी यह दीवार मढ़ी हुई है। निश्चय ही ऐसे उच्च ताप का पदार्थ हमारी अपनी जानकारी के साधारण द्रव्यों जैसा कोई ठोस, तरल या गैसीय पदार्थ नहीं हो सकता। इस उच्च ताप पर उक्त गहराई में दबाव भी कोई साधारणतया बढ़ा-चढ़ा नहीं हो सकता। साथ ही दबाव के अनुरूप घनत्व और तौल भी असाधारण ही होगा ! यह तो तुम जान ही चुके हो कि वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के गोले का वजन भी निकाल लिया है––तराजू में तौलकर नहीं, प्रत्युत अपने गणित के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्धान्तों द्वारा ! इसी आधार पर उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि पृथ्वी की रचना ठेठ केन्द्र तक उन चट्टानी पदार्थों द्वारा नहीं हो सकती, जो कि उसके ऊपरी चिप्पड़ में देखने को मिलते हैं। कारण, यदि वह संपूर्णतया ऐसी चट्टानों द्वारा ही बनी होती, तो उसके वजन का आँक निर्धारित वजन से आधे से भी कम होना चाहिए था ! परन्तु चूँकि गणितसिद्ध तौल कम नहीं है, अतः निश्चय ही पृथ्वी का केन्द्र असाधारण घनत्व के पदार्थ और वजन का महापिंड होगा ! विज्ञान के इन बाजीगरों की धारणा है कि यह पदार्थ मुख्यतः लोहा और निकल नामक धातुओं का कोई यौगिक होगा। यह धातुपिण्ड 'तरल' दशा में होगा, ठोस नहीं ! परंतु जहाँ का दबाव प्रति वर्ग-सेंटीमीटर क्षेत्र में लाखों किलोग्राम के लगभग कूता जाता है, वहाँ के घनीभूत तप्त पदार्थ की तरलावस्था किस प्रकार की होगी ! ऐसा तरल द्रव्य न तो हमने कभी देखा, न उसकी कल्पना ही हम कर पाते हैं ! प्रचण्ड दबाव में तो वस्तुतः किसी भी द्रव्य के अणु कुचलकर और पिसकर चूर-चूर हो सकते हैं ! अतः कहने को चाहे वैज्ञानिक भाषा में हम उसे 'तरल' कहें, परन्तु वहाँ का पदार्थ दरअसल हमारे ठोस से ठोस इस्पात से भी अधिक ठोस और वजनी एक अकल्पित द्रव्य होगा ! जो कुछ भी हो, अब तक की मान्यता यही है कि पृथ्वी का केन्द्र 'तरल' है, ठोस नहीं ! यह केन्द्रीय पिंड आकार में ६८०० किलोमीटर व्यास का एक विशाल गोला है——लगभग मंगल ग्रह जितना या हमारे चन्द्रमा से दुगुना बड़ा। भूविज्ञान की भाषा में इसे 'सेंट्रोस्फीयर' के नाम से पुकारा जाता है। यह है मानो पृथ्वी के अंतराल में स्थापित एक छोटा-सा सूर्य !

'बैरीस्फीयर' और 'लीथोस्फीयर' नामक ऊपरी पर्तें

इसके चारों ओर पुनः लगभग ३००० कि० मी० चौड़े अति तप्त पदार्थ के एक आवरण की पर्त चढ़ी हुई है, जिसका ताप केन्द्रीय पिंड के ताप से तो कम है, फिर भी वह भीतर की ओर तीन-चार हजार शतांश से कम न होगा ! इस पर्त को भूवैज्ञानिक 'बैरीस्फीयर' के नाम से अभिहित करते हैं। इसका रक्ततप्त पदार्थ 'ओलीवाइन' नामक लौह-मैग्नेशियम धातुओं के यौगिक से मिलता-जुलता कोई भारी द्रव्य होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। भूगर्भ के इस धधकते हुए आवरण की ऊपरी कोर पर चालीस-पचास किलोमीटर मोटी भूपृष्ठ की एक पतली पर्त छिलके की तरह पृथ्वी के गोले के आसपास चारों ओर चढ़ी हुई है। इसी में अरबों-करोड़ों वर्षों की कालावधि में रचे गए भाँति-भाँति के चट्टानी स्तरों, उनके ऊपर स्थापित महाद्वीपों और महासागरों-रूपी जल-स्थलखंडों एवं वनस्पति, जीव-जन्तु तथा मनुष्य की सृष्टि की सारी गाथा समाई हुई है ! इस पतली पर्त को 'लीथोस्फीयर' का नाम दिया गया है। सबसे ऊपर लगभग पाँच सौ किलोमीटर तक 'एट्मोस्फीयर' नामक पृथ्वी की अंतिम तह है, जिसको हम 'वायुमंडल' के नाम से पुकारते हैं।

भूगर्भ के बारे में प्राप्त अब तक की जानकारी

कहते हैं, अधिक से अधिक गहराई तक मनुष्य अब तक भूगर्भ की ओर अपना जो हाथ पसार सका है, वह छः-सात किलोमीटर की गहराई तक खोदे गए कतिपय तैल-कूपों तक सीमित है ! उधर पृथ्वी का मध्यकेन्द्र है ऊपरी धरातल से लगभग साढ़े-छः हजार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किलोमीटर की गहराई पर स्थापित ! अतः स्पष्ट है कि हमारे लिए यह असंभव है कि हम भूगर्भ के इस अगम्य क्षेत्र की प्रत्यक्ष झाँकी पा सकें। उसके बारे में जानकारी पाने का एकमात्र साधन यही हो सकता है कि उसकी गतिविधि की धरातलीय प्रतिक्रियाओं के सूक्ष्म निदर्शन द्वारा परोक्ष रीति से उसके वास्तविक स्वरूप के बारे में अंदाज लगाने की कोशिश हम करें। दरअसल यही रास्ता भूवैज्ञानिकों ने इस पहेली को बुझाने के हेतु अपनाया है।

इस सिलसिले में ग्रेनाइट-बेसाल्ट चट्टानों के नीचे स्थित मूल चट्टानी द्रव पदार्थ का अंदाज ज्वालामुखीरूपी प्राकृतिक चिमनियों के रास्ते निकलनेवाले उगाल के अध्ययन द्वारा लगाने का प्रयास किया गया है। उधर भूचालों की कंपन-लहरों के अध्ययन द्वारा केन्द्रीय धातुपिण्ड और उसके आसपास लिपटे हुए हजारों किलोमीटर मोटे अग्नि-कवच के बारे में अटकलें लगाने की कुछ कोशिशें की गई हैं। देखा यह गया है कि भूकंपीय तरंगें एक व्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ती हुई चारों ओर फैलती हैं। वे लगभग २,८८० किलोमीटर की गहराई तक तो वेगपूर्वक एकदम सीधी बढ़ती चली जाती हैं। परन्तु इसके आगे उनका वेग एकाएक कम होने लगता है और शीघ्र ही वे एक ऐसी मंजिल पर जा पहुँचती हैं, जहाँ पृथ्वी के अंतराल को भेदना उनके बूते से बाहर हो जाता है! फलतः वे इस प्रकार से मुड़ जाती हैं, जैसे किसी दुर्भेद्य पिंड से उनका एकाएक सामना पड़ गया हो ! केवल कुछ अति शक्तिशाली तरंगें ही उक्त मध्यपिंड में से होकर कभी-कभी आरपार निकलने पाती हैं। इन कंपन-लहरों का वेग लगभग साढ़े ग्यारह सौ किलोमीटर की गहराई तक जैसा तीव्र रहता है, वैसा उसके बाद में २,८८० किलोमीटर तक नहीं रह पाता और उसके आगे तो वह एकदम थम-सा जाता है। इन तथ्यों के आधार पर भूवैज्ञानिकों ने पृथ्वी के अन्तराल के विषय में कई नतीजे निकाले हैं। उनकी धारणा है कि पृथ्वी का चिप्पड़ या ऊपरी भूपृष्ठ अधिक से अधिक चालीस-पचास कि०मी० गहरा है और इसके नीचे लगभग साढ़े ग्यारह सौ कि० मी० गहरी तप्त एवं घने पिघले पदार्थ की एक तह है। तदुपरान्त २,८८० कि० मी० की गहराई तक उससे भी अधिक तप्त और घनीभूत द्रव पदार्थ का एक क्षेत्र फैला हुआ है। अंत में पृथ्वी के केन्द्र

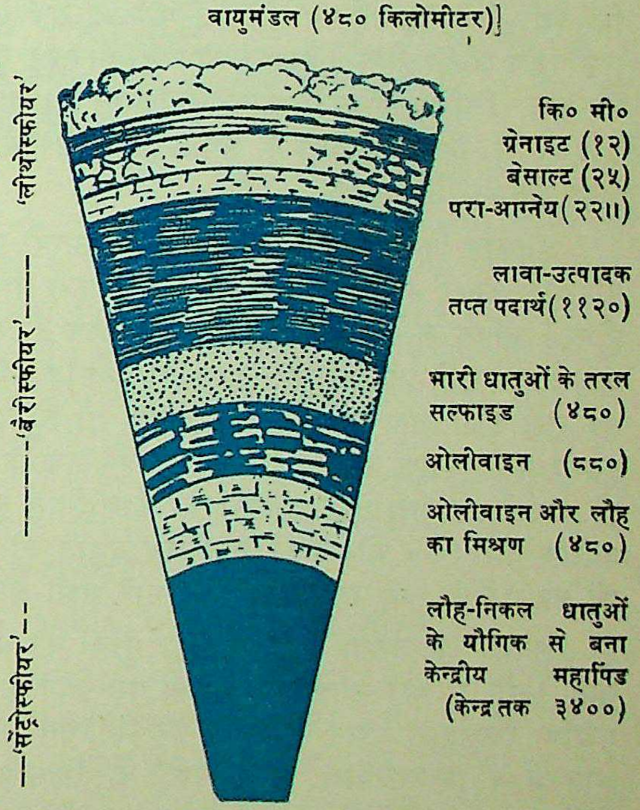

पृथ्वी को यदि केन्द्र तक काटकर हम उसकी फांक निकालें, तो इस प्रकार विविध पर्तें मिलेंगी। दाहिनी ओर, उक्त स्तरों की गहराई सूचित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में कोई साढ़े छः हजार कि० मी० व्यास का लौह-निकल धातुओं के मिश्रण जैसे किसी बहुत भारी पिघले हुए पदार्थ का एक अति उष्ण गोला स्थापित है ! उस केन्द्रीय क्षेत्र में प्रति वर्ग-सेंटीमीटर ५६,००० मीट्रिक टन के भीषण दबाव की स्थिति बनी हुई है ! यही है आधुनिक विज्ञान की निगाह में पृथ्वी के अंतराल का चित्र, जो कि संभव है कि आगे चलकर और भी सुस्पष्ट हो सकेगा !

भूगर्भ कितना उष्ण है ?

निश्चय ही पृथ्वी का गर्भमंदिर बड़ा ही रहस्यपूर्ण लोक है । अभी उसके बारे में बहुत कम बातें हमें मालूम हो पाई हैं ! उदाहरणार्थ, उसके ताप का ही प्रश्न लो ! यह पाया गया है कि ज्यों-ज्यों हम ऊपरी चिप्पड़ को भेदकर नीचे की ओर उतरते हैं, त्यों-त्यों ताप में निरंतर वृद्धि होती चली जाती है । इसका मान यों है कि प्रति २० मीटर के बाद लगभग आधा अंश (सेंटीग्रेड) ताप बढ़ता चला जाता है ! कहते हैं, लगभग ३ कि० मी० गहरे उतरने पर ताप करीब १००° सें० अर्थात् पानी के उबलने की स्थिति तक और लगभग पचास कि० मी० की गहराई पर संभवतः १,२०० सें०, अर्थात् चट्टानों के पिघल जाने की स्थिति तक पहुँच जाता होगा ! परन्तु ताप की निरंतर वृद्धि का यह क्रम अधिक गहराई पर जाने पर कुछ शिथिल-सा पड़ जाता है । फलतः पृथ्वी के मध्यकेन्द्र का अधिकतम ताप केवल ५,५०० सें० ही कूता गया है, जबकि उपर्युक्त पैमाने से तो उसे कई लाख डिग्री तक बढ़ा-चढ़ा होना चाहिए था !

अनुमान किया गया है कि धरती की ऊपरी उष्ण पर्तों में संचित गरमी की शक्ति का परिमाण हमारे कोयले के सारे भंडार की कुल तापशक्ति से कोई तीन करोड़ गुना अधिक होगा ! शक्ति के इस अगाध स्रोत से लुभाकर ही स्टीम-टरबाइन इंजिन के आविष्कर्त्ता सर चार्ल्स पार्सन्स ने यह अनोखा सुझाव दिया था कि यदि भूपृष्ठ केवल २० कि० मी० की गहराई तक एक कुआँ खोदकर छेद डाला जाय, तो कोयला, तैल और रेडियम आदि धातुओं का इतना भंडार मिल जायगा कि करोड़ों वर्ष तक के लिए हमारी शक्ति-संबंधी समस्याएँ हल हो जाएँगी । परन्तु ऐसी योजना का कार्यान्वित होना अभी शेखचिल्ली के सपने-जैसा है, क्योंकि बीस कि० मी० गहरे तक हाथ बढ़ाने की बात तो दूर रही, केवल दस कि० मी० की गहराई ही तक पहुँचते-पहुँचते हमारे सभी औजार-हथियार पिघल जाएँगे !

सवाल यह उठता है कि आखिर पृथ्वी की यह भूगर्भीय भट्टी कब तक ऐसी ही उष्ण बनी रहेगी ? क्या उसके कभी ठंढी पड़ जाने का भी अँदेशा है ? इस प्रश्न का जवाब यद्यपि फिलहाल समय के पैमाने पर निश्चित आँकड़ों द्वारा देना संभव नहीं है, फिर भी आकाश में विचरनेवाले अन्य पिण्डों के विकास-क्रम को देखते हुए यह कल्पना करना निरी मूर्खता होगी कि हमारी यह लीलाभूमि ज्यों-की-त्यों ही बनी रहेगी । हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि अपने जीवन के प्रारंभिक दिनों में पृथ्वी का यह गोला अपनी ऊपरी सतह पर भी भीषण रूप से तप्त था । तब धीरे-धीरे वह ठंढा पड़ता चला गया, यहाँ तक कि आज उसकी वह भीषण उष्णता भीतरी केन्द्रीय भाग में ही संचित रह गई है । निश्चय ही यह केन्द्रीय भाग भी धीरे-धीरे ठंढा पड़कर किसी दिन वैसा ही रूप धारण कर सकता है, जैसा कि चंद्रमा का केन्द्र है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम बता चुके हैं कि पृथ्वी के गोले के ऊपरी चिप्पड़ या 'भूपृष्ठ' का निर्माण एक-दूसरे पर रची गई शिला-पर्तों द्वारा हुआ है। ये पर्तें जिन पदार्थों द्वारा निर्मित हैं, वे भूविज्ञान की भाषा में 'खनिज' कहलाते हैं। वैसे तो साधारण बोली में हम 'शिला' या 'चट्टान' शब्द से केवल कठोर पाषाण का ही अर्थ लगाते हैं। परन्तु भूवैज्ञानिकों की शब्दावली में खनिजों द्वारा रचित भूपृष्ठ की सभी तहें चट्टानों की परिभाषा के अंतर्गत आ जाती हैं, चाहे वे मिट्टी, रेत या बालू ही की तहें क्यों न हों। इन चट्टानों को, उनकी उत्पत्ति के भेद के अनुसार, तीन महाविभागों में बाँट दिया गया है। आओ, अब देखें कि चट्टानों के ये भेद क्या हैं और उनकी अपनी-अपनी क्या विशेषताएँ हैं!

तीन प्रकार की चट्टानें– आग्नेय, जलज और रूपान्तरित

यदि हम किसी खदान में उतरते समय चट्टानों की कटी हुई पर्तों को गौर से देखें, तो हमें ज्ञात होगा कि जहाँ ये पर्तें एक विशेष व्यवस्थानुसार तह पर तह जमी हुई हैं, वहाँ उनकी आकृति और रासायनिक रचना में परस्पर भेद भी है। यह भेद और भी स्पष्ट हो जाता है, जब कि हम बहुत गहराई पर पहुँचते हैं। वहाँ तले की वे कड़ी रवादार चट्टानें क्रमश: सामने आने लगती हैं, जो अधिक पुरानी हैं। इस विभेद की झाँकी हमें धरातल की खुली चट्टानों में भी देखने को मिल सकती है। उदाहरणार्थ, चूने के पत्थर, स्लेट, बलुआ पत्थर या खड़िया मिट्टी की खुली चट्टानें 'ग्रेनाइट' जैसे रवादार पत्थरों से एकदम भिन्न वर्ग की जान पड़ती हैं। इसी तरह ज्वालामुखियों के आसपास जमा लावा एवं 'बेसाल्ट' जैसी चट्टानों की रचना समुद्रतट की परतीली बलुआ चट्टानों से भिन्न कोटि की हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्ही भेदों के आधार पर सभी चट्टानों को आम तौर पर तीन वर्गों या श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है। इनमें प्रथम श्रेणी की चट्टानें वे हैं, जिनकी कि उत्पत्ति अग्नि तत्त्व की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुई है। इन्हें 'आग्नेय' (इग्निअस) चट्टानों का नाम दिया गया है। इनका प्रमुख लक्षण यह है कि ये रवादार हैं, अर्थात् इनकी रचना स्फटिक (क्वार्ट्ज), फेल्स्पार, अबरक या हार्नब्लैंड जैसे रवादार पदार्थों से हुई है। दूसरी श्रेणी की चट्टानें वे हैं, जो जलतत्त्व की क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा रची गई हैं। ये 'जलज' चट्टानें कहलाती हैं। चूँकि इनकी उपज धरातल के विखण्डन एवं क्षय के फलस्वरूप पुराकालीन समुद्रों के तल में जमा होनेवाली बालुकाराशि और जलधाराओं द्वारा बहाकर लायी गई रेत, कंकड़-पत्थर आदि की तलछट की जमावट से हुई है, अतः इन्हें 'तलछटी' (सैडिमेंटरी) चट्टानें भी कहते हैं। खड़िया मिट्टी (चॉक) अथवा चूने के पत्थर (लाइमस्टोन) जैसी वे जीवनिर्मित चट्टानें भी इसी वर्ग के अंतर्गत सम्मिलित हैं, जिनकी सृष्टि पुराकालीन समुद्रों के सीपी, घोंघे आदि वर्गों के असंख्य क्षुद्र प्राणियों द्वारा अपनी ठठरियों का अंबार लगाने एवं सहस्रों वर्षों तक उन पर जल की रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुई है। जलज चट्टानों की मुख्य विशेषता यह है कि वे प्रायः एक पर एक रची हुई पर्तों या तहों के रूप में मिलती हैं। इसीलिए कभी-कभी वे 'परतीली चट्टानों' के नाम से भी पुकारी जाती हैं। तीसरे प्रकार की चट्टानें वे हैं, जो मूलतः तो जलज या आग्नेय में से किसी एक वर्ग की ही रह चुकी हैं, परन्तु प्राकृतिक शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उच्च ताप या दबाव के कारण कालान्तर में ऐसी बदल चुकी हैं कि अब उनके पूर्वरूप के लक्षण गायब हो चुके हैं। ऐसी चट्टानें 'रूपान्तरित' (मेटामॉर्फिक) चट्टानें कहलाती हैं। इनके उदाहरणों के रूप में स्लेट और संगमर्मर के नाम हम प्रस्तुत कर सकते हैं, जोकि भीषण ताप एवं दबाव द्वारा निर्मित एक ओर सागरतल की पुराकालीन पंकराशि एवं दूसरी ओर चूने के पत्थर के रूपान्तरित रूप मात्र हैं। आओ, अब इस महाविभाजन की तीनों श्रेणियों की चट्टानों को अलग-अलग लेकर उनके संबंध में विशेष विवरण तुम्हें बताएँ।

आग्नेय चट्टानें--ग्रेनाइट, बेसाल्ट और हाइपैबिसल वर्ग की शिलाएँ

आग्नेय चट्टानों में सबसे पुरानी पृथ्वी के इतिहास के उस आदिम युग में जनमी हुई मानी जाती हैं, जब कि उसके चिप्पड़ के कड़ाहे का पिघला हुआ द्रव्य क्रमशः ठंढा होकर पपड़ियों के रूप में जमने लगा था। पिघली हुई धातुओं की जमावट के फलस्वरूप बने अरबों वर्षों पूर्व के ये शिलास्तर धरातल के नीचे बहुत गहराई पर हैं और उन पर बाद में निर्मित जलज चट्टानों के स्तर लदे हुए हैं। फलतः इन 'आदि' चट्टानों की झलक पाना असंभव-सा है! परन्तु सौभाग्य से पृथ्वी के सुदीर्घ इतिहास में समय-समय पर होनेवाले उलटफेरों और हड़कंपीय हलचलों के फलस्वरूप चिप्पड़ के स्तरों में काफी उलटपलट भी होती रही है। इसका नतीजा यह हुआ है कि कहीं-कही एकदम तले की चट्टानें ऊपरी सतह पर उभड़ आई हैं और ऊपर के स्तर काफी नीचे दब गए हैं। इससे आदिकाल में रचित ग्रेनाइट और बेसाल्ट जैसी कतिपय प्रमुख आग्नेय चट्टानों का प्रत्यक्ष दर्शन करने का सुयोग कहीं-कहीं हमें मिल जाता है। इसके अलावा ज्वालामुखी पर्वतों के उगाल के फलस्वरूप उमड़नेवाले पिघले द्रव्य के जमने से निर्मित ऊबड़खाबड़ चट्टानों में भी आग्नेय शिलाओं का नमूना देखने का मौका मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन अग्निनिर्मित चट्टानों के विविध रूपों का अध्ययन करके, भूतत्ववेत्ताओं ने उन्हें उनकी उत्पत्ति और रचना-संबंधी विशेषताओं के अनुसार 'प्लूटोनिक' (रसातलीय), 'वॉल्केनिक' (ज्वालामुखीय) और 'हाइपैबिसल' (मध्यवर्ती गहराई के) नामक तीन उपवर्गों में विभाजित कर दिया है। 'प्लूटोनिक' शब्द यूनानी देवता प्लूटो के नाम पर गढ़ा गया है, जो रसातल का देवता है। इस वर्ग की प्रतिनिधि चट्टान 'ग्रेनाइट' है, जोकि फेल्स्पार और अबरक के साथ स्फटिक (क्वार्ट्ज) के रवों के संयोजन से बनी है। इन चट्टानों के बड़े-बड़े रवे इस बात के प्रमाण हैं कि उनकी रचना पृथ्वी के गर्भालय में बहुत अधिक गहराई पर भीषण दबाव की अवस्था में हुई है और उनका पदार्थ बहुत धीरे-धीरे ठंढा होकर जम पाया है।

'वॉल्केनिक' नामक दूसरी श्रेणी की आग्नेय चट्टानों का प्रमुख उदाहरण 'बेसाल्ट' है। इसकी सुंदरतम झाँकी आयलैंड के सुप्रसिद्ध 'जाएण्ट्स काज्वे' (दैत्यरचित बाँध) के स्तंभवर्ती शिलाखण्डों में देखने को मिलती है। इस श्रेणी की चट्टानों का रवा छोटे दाने का होता है। अन्य खनिजों के रवों के साथ-साथ उसमें एक प्रकार के काँच के मणिभ भी मिले रहते हैं। 'वॉल्केनिक' शब्द ग्रीक अग्नि-देवता वल्कन का सूचक है, जो इस दृष्टि से सार्थक है कि इस प्रकार रची गई चट्टानें ज्वालामुखी पर्वतों (वॉल्केनो) के उद्गारों की जमावट से बनी चट्टानों से बहुत-कुछ मिलती हैं। इन चट्टानों के रवे इस बात के प्रमाण हैं कि उनका पदार्थ ज्वालामुखीय लावा की तरह बहकर शीघ्रता से ठंढा हुआ है।

आयलैंड के सुप्रसिद्ध 'जाएण्ट्स काज्वे' (दैत्यरचित बांध) के ये शिलाखंड आग्नेय चट्टानों के 'वॉल्केनिक' उपवर्ग का एक सुंदर उदाहरण हैं। इस प्रकार की शिलाएँ 'बेसाल्ट' के नाम से पुकारी जाती हैं। इन स्तंभवर्ती आग्नेय शिलाखंडों की पहलवाली रचना की निकट की झाँकी अगले पृष्ठ के चित्र में देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

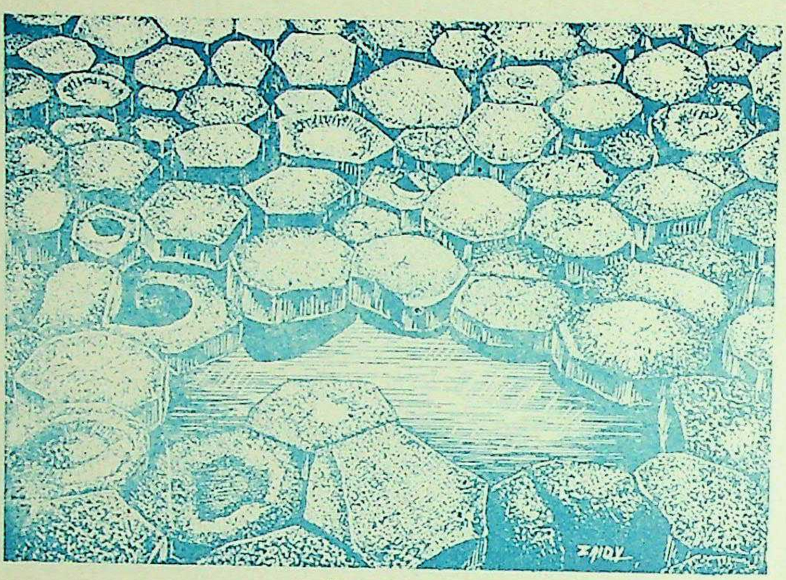

फर्श के पत्थरों की तरह जुड़े हुए इन पांच-छः पहलवाले बेसाल्ट वर्ग के स्तंभवत् शिलाखंडों की रचना पुराकालीन लावा-प्रवाह से हुई बतायी जाती है।

आग्नेय चट्टानों के मध्यवर्ती वर्ग में न्यूनाधिक क्रम से ठंढी होनेवाली और छोटे-बड़े रवों से युक्त वे शिलाएँ हैं, जो विभिन्न स्तरों के बीच की दरारों, नलिकाओं एवं खाली जगहों में पिघले हुए द्रव्य के रिसकर जमा हो जाने से बनी हैं। शिलाओं के इस वर्ग को 'हाइपैबिसल' (अर्थात् मध्यवर्ती गहराई की) श्रेणी का नाम दिया गया है। ऐसी शिलाओं का निर्माण और प्रसार भूपृष्ठ के भीतर ही भीतर होने के कारण भूविज्ञान की भाषा में वे 'अंतर्गामी' शिलाएँ भी कहलाती हैं, जब कि ज्वालामुखियों के लावारूपी उद्गारों द्वारा भूपृष्ठ से बाहर निर्मित होनेवाली शिलाओं को 'बहिर्गामी' चट्टानों की संज्ञा प्रदान की गई है। अंतर्गामी शिलाओं के प्रमुख नमूने अन्य चट्टानी पर्तों के बीच की किसी लंबी-चौड़ी दरार में पिघले हुए द्रव्यों के जमने से बनी 'शिलाभित्ति' (डाइक), 'अधोशिला' (बैथोलिथ), 'शिलाछत्रक' (लैकोलिथ) और 'शिलापट' (सिल) आदि विविध शिलारूपों में देखने को मिलते हैं। ये शिलास्रोत स्थलभंजन की क्रियाओं के फलस्वरूप कहीं-कहीं खुलकर नग्न भी हो गए हैं।

जलज या तलछटी परतीली चट्टानें

चट्टानों के द्वितीय वर्ग में—जो भूविज्ञान की शब्दावली में 'जलज', 'तलछटी' या 'परतीली' चट्टानों के नाम से पुकारा जाता है—हमारे काम में आनेवाले अनेक प्रकार के पत्थरों का समावेश है। मिर्ज़ापुर का प्रसिद्ध लाल बलुआ पत्थर इसी श्रेणी का पाषाण है। इस पत्थर का व्यवहार सम्राट् अशोक के स्मारक-स्तंभों, गुप्तकालीन मूर्तियों और आगरा, दिल्ली, फतहपुर सीकरी आदि की मुगलकालीन भव्य इमारतों से लेकर नई दिल्ली, कलकत्ता, बंबई आदि नगरों की राजकीय इमारतों तक प्रचुरता के साथ हमारे यहाँ हुआ है। इस विशुद्ध जलज पाषाण की रचना बालू के महीन कणों की एकसाँ जमावट द्वारा हुई है। सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखने पर इसके अवयवों (बालुकणों) की असली झाँकी देखने को मिलती है। इन चट्टानों के गोलमटोल-से स्फटिक (क्वार्ट्‌ज) के सूक्ष्म कणों के बीच-बीच में कुछ फेल्स्पार की धुँधली किरचें और अबरक के छुटपुट चमकीले रवे भी मिश्रित रहते हैं। ये बलुआ चट्टानें ग्रेनाइट जैसी आदिम पुरातन चट्टानों की तोड़फोड़ से प्राप्त द्रव्यों से ही निर्मित हुई हैं! उनके अपने कोई स्वतंत्र अवयव नहीं हैं। इन चट्टानों के बालुकण आपस में एक संयोजक द्रव्य द्वारा जुड़े हुए हैं। यह संयोजक पदार्थ 'कैल्साइट' कहलाता है। लाल बलुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्थर में पाए जानेवाले इस प्रकार के संयोजक द्रव्य को 'हीमटाइट' और भूरे बलुआ पत्थर को जोड़नेवाले पदार्थ को 'लिमोनाइट' के नाम से पुकारा जाता है। कई एक बलुआ चट्टानें एकदम सफेद रंग की भी मिलती हैं। ये बेहद कड़ी होती हैं। इनका संयोजक द्रव्य स्फटिक होता है।

बलुआ चट्टानों का रचना-क्रम—'कांग्लोमिरेट', 'मडस्टोन', 'शेल' आदि

बलुआ चट्टानों की पर्तों की बड़ी ही सुन्दर झाँकी हमें कई एक स्थानों में समुद्रतट के कगारों की दीवारों में देखने को मिलती है। खदानों में भी उनकी पर्तें तह पर तह जमी हुई देखी जा सकती हैं। ये स्तर भिन्न-भिन्न मुटाई, भिन्न-भिन्न रंग और छोटे-बड़े रवों के भेद के अनुसार अलग-अलग जाति के होते हैं। उनमें पाये जानेवाले लुप्त जीव-जन्तुओं के प्रस्तर-विकल्प एवं अन्य प्रमाण इस बात की सूचना देते हैं कि उनकी रचना लाखों-करोड़ों वर्षों की अवधि में धरातल के विखंडन से संचित पदार्थ पर समुद्री जल की क्रिया-प्रतिक्रियाओं द्वारा हुई है। समुद्रों के किनारे पर की चट्टानों को जल की सतह से ठेठ तले तक ध्यानपूर्वक देखने पर पहले तो पानी की सतह के करीब कगारों के तले पर या तटवर्त्ती बालू की कोर पर, लहरों द्वारा फेंके गए बड़े-बड़े पत्थरों के ढोकों एवं छोटी-बड़ी कंकड़ियों का एक ढेर-सा लगा मिलेगा। तदुपरान्त मिलेंगे बालू के निचले स्तर। उनसे परे अधिक गहराई पर समुद्री पंक या कीचड़ की वे तले पर की तहें मिलेंगी, जिनमें स्फटिक, फेल्स्पार, अबरक आदि के अति सूक्ष्म जर्रों के साथ-साथ भाँति-भाँति की मिट्टियों के महीन कणों का मिश्रण दिखाई देगा। बहुत-कुछ इसी प्रकार का रचना-क्रम परतीली चट्टानों के स्तरों में भी देखने को मिलता है। अंतर यही है कि समय के प्रभाव से कंकड़-पत्थर, रेत-बालू और मिट्टियों के ये आदिम स्तर प्रस्तरीभूत होकर कठोर पाषाणों में परिवर्तित हो गए हैं।

ऐसे पत्थरों में वे जिनकी कि रचना गोल-मटोल कंकड़ियों के संयोजन अथवा जमावट से हुई है, भूविज्ञान की शब्दावली में, 'कांग्लोमिरेट' कहे जाते हैं। दूसरे, जिनकी कंकड़ियाँ अथवा पाषाण-अंश नुकीले, टेढ़े-मेढ़े या कोणवाले पाये जाते हैं, 'ब्रेस्सिया' के नाम से पुकारे जाते हैं। इनके अलावा जो स्तर पिसी हुई मिट्टी के-से महीन रजकणों की जमावट के मिलते हैं, उन्हें 'क्ले', 'मडस्टोन', 'शेल' आदि नामों से अभिहित किया जाता है। 'मडस्टोन' एक ठोस जमावट का पत्थर है, जिसकी कोई अलग-अलग पर्तें नहीं निकाली जा सकतीं। 'शेल' में यह विशेषता है कि अबरक या स्लेट की तख्तियों की तरह उसकी बहुत पतली-पतली पर्तें या पट्टियाँ जुदा की जा सकती हैं।

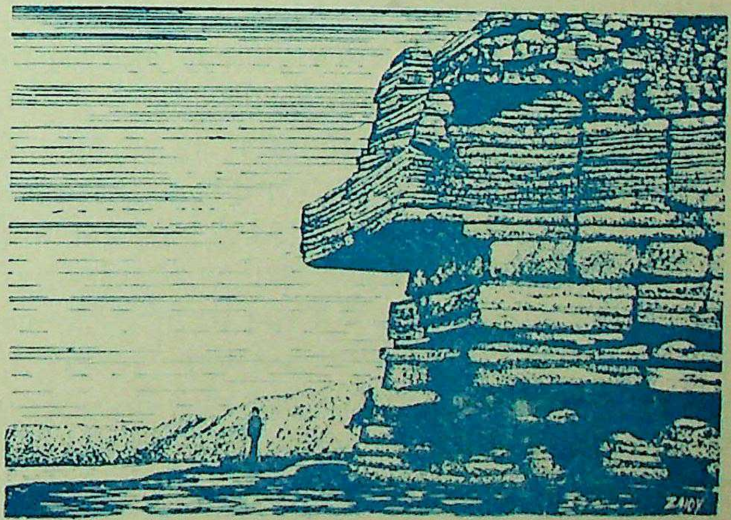

जजज या तलछटी परतीली चट्टानों के स्तरों की एक झाँकी :: समुद्रतटवर्त्ती कगार की रचना करनेवाली तह पर तह लदी हुई इन बलुआ चट्टानों की सृष्टि धरातल के विखंडन से प्राप्त रजकणों की जमावट के फलस्वरूप कभी पानी के भीतर हुई होगी। इनकी स्तर-रचना पर ध्यान दीजिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

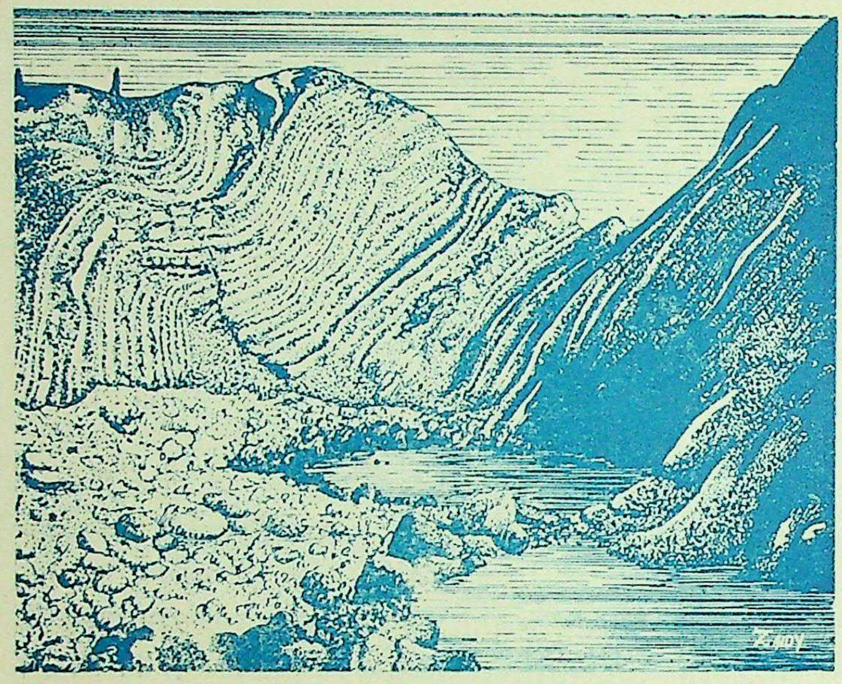

प्रायः हमें शिला-पर्तों की तहें कहीं पर कूबड़ निकाले, तो कहीं धनुष या मेहराब के रूप में अद्भुत ढंग से मुड़ी हुई देखने को मिला करती हैं। चट्टानों का यह आकुंचन धरातलीय उथलपुथल के क्रम में होनेवाले शिलास्तरों के उलटफेर के समय के जबर्दस्त दबाव अथवा इन पर्तों पर बाद में लद जानेवाले अन्य स्तरों के बोझ से उत्पन्न असंतुलन आदि के कारण उपजा माना जाता है।

इस प्रकार के पर्त-निर्माण को 'लैमिनेशन' कहा जाता है। ऐसी रचनाएँ तब हुआ करती हैं, जबकि मिट्टी की कोई तह विशेष दबाव में अधिक ताप पर जमकर क्रमशः प्रस्तरीभूत हुई हो।

'लाइमस्टोन', 'खड़िया' आदि के स्तर

उपर्युक्त बलुआ एवं मिट्टी की तहों के उपरान्त जलज श्रेणी की चट्टानों में दूसरा महत्व का वर्ग चूने के पत्थर (लाइमस्टोन) के नाम से प्रसिद्ध भिन्न-भिन्न कोटि के उन पाषाणों का है, जिनमें से कई का इंगलैंड आदि देशों में सार्वजनिक इमारत बनाने में बहुतायत से प्रयोग किया गया है। लंदन का सुप्रसिद्ध सेंट पॉल्स गिरजाघर, बकिंघम-महल एवं ह्वाइट हॉल के सरकारी भवन सभी इस वर्ग के 'पोर्टलैंड स्टोन' नामक पाषाण से बने हैं। ये शिला-पर्तें अन्य तलछटी जमावटों की तरह पुरातन आग्नेय चट्टानों के भंजित पदार्थों से रचित नहीं हैं, प्रत्युत वे एक प्रकार की जीवनिर्मित रचनाएँ हैं। ये करोड़ों वर्ष पूर्व सागर के भीतर मूँगे, सीपी, शंख, घोंघे आदि के वर्ग के क्षुद्र पुराकालीन जलजीवों द्वारा अपने आवरणों में संचित चूने के-से पदार्थ का अंबार लगाकर तह पर तह रची गई हैं! इन्हें बनानेवाले क्षुद्र प्राणी जल में से कैल्शियम कार्बोनेट नामक तत्व को खींचकर सीपी या शंख जैसा एक आवरण अपने आसपास रक्षार्थ रच लेते थे। काल के प्रवाह में वे स्वयं तो मिटते रहे, परन्तु उनकी इन ठठरियों का ढेर सागरतल पर निरंतर जमा होता चला गया। इन ठठरियों की राशि को जल की क्रिया-शक्तियों ने रासायनिक द्रव्यों के संयोग से क्रमशः पाषाण बना दिया। धरती की सतह के उलट-फेर या नवनिर्माण के क्रम में सागरतल से ऊपर उठकर यही तहें 'लाइमस्टोन', 'खड़िया मिट्टी' (चॉक) आदि की पर्तों के रूप में भूपृष्ठ का एक महत्वपूर्ण अवयव बन गईं! आज भी मूँगे की चट्टानों के रूप में इस प्रकार के क्षुद्र समुद्री जीवों द्वारा शिला-निर्माण का कार्य जारी है!

यदि हम 'लाइमस्टोन' जैसे इन जीवनिर्मित पत्थरों के किसी सूक्ष्म अंश को आतशी शीशे या सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखें, तो उसमें हमें स्पष्टतः उन आदिम जीवों की भाँति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाँति की ठठरियाँ देखने को मिलेंगी । 'पोर्टलैंड स्टोन' में ये ठठरियाँ कीड़ों के अंडों की शक्ल की पाई जाती हैं । इसीलिए इस वर्ग के पाषाण को 'ऊलाइट' (अंडाकृति) पत्थरों के नाम से भी पुकारा जाता है । दूसरे प्रकार का चूने का एक पत्थर, जिसमें कैल्शियम और मैग्नेशियम धातुओं के कार्बोनेटों का योग पाया जाता है, 'डोलोमाइट' है । चिकनी सफेद खड़िया मिट्टी (अथवा चॉक) भी इसी प्रकार के जीवनिर्मित चूने के पत्थर का एक रूप है । उसका आसानी से चूर्ण बनाया जा सकता है । खड़िया पत्थर की चट्टानें इंगलैंड और फ्रान्स के आमने-सामने के समुद्रतटों पर ऊँचे कगारों के रूप में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं ।

रूपान्तरित चट्टानें—स्लेट, संगमर्मर आदि

चट्टानों के तीसरे वर्ग के अंतर्गत भाँति-भाँति की रचनाएँ सम्मिलित हैं, जो मूलतः तो ग्रेनाइट अथवा बेसाल्ट जैसी आग्नेय वर्ग की अथवा लाइमस्टोन जैसी जलज वर्ग की रहीं, परन्तु धरती की शक्तियों ने कालान्तर में जिन्हें ऐसी नई शक्ल-सूरत दे दी कि वे उपर्युक्त दोनों वर्गों से पृथक् जान पड़ने लगीं । इस प्रकार की चट्टानों के सुपरिचित रूप संगमर्मर जैसे भाँति-भाँति के कीमती और खूबसूरत इमारती पत्थरों और स्लेट जैसी पर्तदार रचनाओं में मिलते हैं। संगमर्मर एक प्रकार के लाइमस्टोन या चूने के पत्थर का ही परिवर्तित रूप है । इसी तरह स्लेट की तख्ती करोड़ों वर्ष पूर्व के सागरतल की पंकराशि की यादगार है ! धरातल के नीचे दबे रहने की अवस्था में, पृथ्वी की भौतिक शक्तियों की गरमी और दबाव संबंधी प्रतिक्रियाओं ने इन रचनाओं की भीतरी रासायनिक व्यवस्था को एकदम उलट-पलट डाला है । इस उलटफेर में लाइमस्टोन जैसे चूने के पत्थरों के केल्शियम कार्बोनेट के जर्रे और सीपी आदि की ठठरियाँ, अंतर्गामी आग्नेय शिला-स्रोतों की उष्णता के प्रभाव से, धीरे-धीरे कैल्साइट नामक पदार्थ के समान आकार के रवों में बदल गए हैं ! इस प्रकार उन ठठरियों-रूपी जीव-प्रस्तर-विकल्पों का उसमें से नामोनिशान मिटाकर प्रकृति ने एक शुद्ध श्वेत रवादार पाषाण प्रस्तुत कर दिया है, जिसे हम 'संगमर्मर' के नाम से पहचानते हैं । विशुद्ध आग्नेय शक्तियों द्वारा किए गए चट्टानों के इस प्रकार के रूपान्तरीकरण को 'अग्निजनित रूपान्तरीकरण' (अथवा थर्मल मेटामार्फिज्म) के नाम से पुकारा जाता है ।

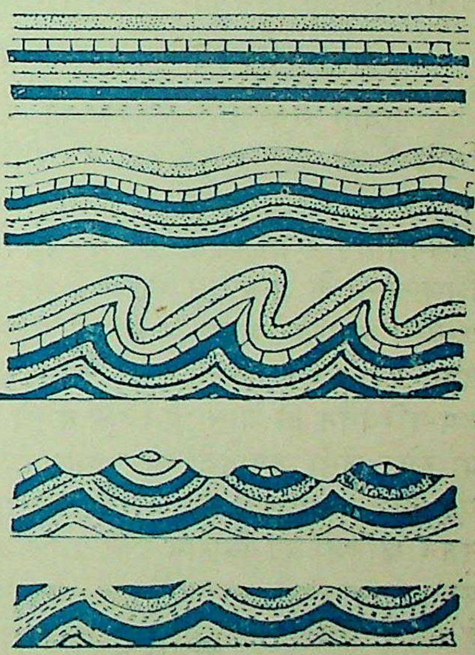

चट्टानों के पर्त-भंग के क्रम में उत्पन्न विषमता की विविध मंजिलें—(सब से ऊपर) जलज या आग्नेय पर्तों के एक पर एक रचे हुए सामान्य स्तर; (द्वितीय और तृतीय पंक्ति) दबाव की प्रक्रियाओं के फलस्वरूप आकुंचित होकर लहरदार बन जानेवाले स्तर, जिनमें उन्नत कूबड़ें एवं धनुषाकार मेहराबें बन गई हैं; (निचले दो चित्र) कालान्तर में स्थल-भंजन और तोड़मरोड़ की शक्तियों ने उन मेहराबों या कूबड़नुमा कंधों के शीर्षभागों को ध्वस्त कर दिया है और बीच के गर्त्तों में नूतन स्तरों का पदार्थ भर जाने से ऊपरी सतह पुनः समान बन गई है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उधर स्लेट की रचना की कहानी यह है। सामान्य अवस्था में मिट्टी की कोई भी तह जल की क्रिया-प्रतिक्रिया से जमकर 'क्ले', 'मडस्टोन' या 'शेल' जसी चट्टानों का रूप ग्रहण कर लेती है। ऐसी चट्टानें असाधारण दबाव की स्थिति में पड़कर एक बिल्कुल ही नया रूप धारण कर लेती हैं। 'स्लेट' की पर्तों की सृष्टि इसी तरह हुई है। यों तो पर्त-रचना का उदाहरण 'शेल' नामक जलज चट्टानों में भी देखने को मिलता है, परन्तु स्लेट की पर्त-रचना और शेल के पर्त-निर्माण में बहुत बड़ा अंतर है। शेल की पर्तें 'लैमिनेशन' द्वारा (अर्थात् आधारतल के समानान्तर एक पर एक रची गई तहों के रूप में) बनी हैं, जब कि स्लेट की पर्तें आधारतल से एक उन्नत कोण बनाते हुए खड़ी स्थिति में रची गई हैं, जैसे कि किसी जिल्ददार पुस्तक के खड़े पन्ने रहा करते हैं! इन पर्तों का निर्माण अगल-बगल के भीषण दबाव के फलस्वरूप ही हुआ है। इस दबाव के कारण मूल खनिज पदार्थ का चेहरा समूल बदल गया है और उस पर एक नई छाप लग गई है। उसके इस नूतन संस्कार में दबाव की शक्तियों के साथ-साथ उष्णताजनित रासायनिक प्रतिक्रियाओं का भी किसी अंश तक हाथ रहा है। इस प्रकार के रूपान्तरीकरण को 'गतिशक्तिजनित रूपान्तरीकरण' (अथवा डायनेमिक मेटामार्फिज्म) कहते हैं।

रूपान्तरीकरण की अन्य विधियाँ--अबरक, हार्नब्लैण्ड आदि की रचना

चट्टानों के रूपान्तरीकरण की उपर्युक्त दो प्रणालियों के अतिरिक्त और भी कई विधियों का उल्लेख भूविज्ञान की पोथियों में मिलता है, यथा 'संसर्गजनित रूपान्तरीकरण' (कान्टेक्ट मेटामार्फिज्म), 'क्षेत्रीय रूपान्तरीकरण' (रीजनल मेटामार्फिज्म) आदि। 'संसर्गजनित रूपान्तरीकरण' में अंतर्गामी आग्नेय शिलास्रोतों के संसर्ग में आकर उन शिलास्रोतों के आसपास की अन्य चट्टानें किसी एक फैलाव तक रूपान्तरित हो जाती हैं। 'क्षेत्रीय रूपान्तरीकरण' में नूतन पर्वतों के जन्म जैसी हलचलों के फलस्वरूप भौगर्भिक ताप, दबाव एवं उलटफेर की शक्तियों के प्रभाव से किसी एक पूरे क्षेत्र की चट्टानों का रूप-परिवर्तन हो जाता है। ऐसे समूचे क्षेत्रव्यापी रूपान्तरीकरण के क्रम में कभी-कभी शेल या स्लेट जैसी जमावटों की रचना उष्ण शिला-स्रोतों की प्रचंड गरमी के प्रभाव से फिर से एक बार नूतन रवों या मणिभों का उत्पादन करते हुए बदल जाती हैं। तब अबरक जैसे नूतन खनिजों का विकास होते पाया जाता है। इन नवीन खनिजों की पर्तदार एवं लंबाकार रचनाओं के कारण इनकी व्यवस्था एक खास तरह की सुडौल और पर्तीली हो जाती है। इसे 'फोलिएशन' या 'पर्त-व्यवस्था' कहते हैं। यह पर्त-व्यवस्था समूची चट्टान में जब ऐसा रूप लिए रहती है कि उसके किसी भी अंश को चपटे वर्कों या पत्रकों में विभाजित किया जा सकता है, तो भूविज्ञान की भाषा में वह 'शिश्ट' कहलाती है। इस प्रकार की रूपान्तरित परतीली रचनाओं में सबसे मशहूर अबरक और हार्नब्लैंड नामक खनिजों की शिश्टें हैं। ये दोनों बड़े उपयोगी खनिज हैं।

दूसरी एक और प्रकार की रूपान्तरित शिला-रचना भूवैज्ञानिकों की बोली में 'नीस' कहलाती है। यह भी पर्तदार होती है, परन्तु वह शिश्ट से इस बात में भिन्न होती है कि उसका पर्तीकरण खुला या अनावृत्त और बीच-बीच में से भंग हुआ-सा मिलता है। साथ ही इसके स्तर फेल्सपार नामक खनिज की बहुलता के कारण ग्रेनाइट से मिलते-जुलते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और अधिक रवादार होते हैं। कई जगह शिस्टों के बीच-बीच में पिघले हुए ग्रेनाइट की आग्नेय जिह्वाएँ अंतर्गामी नसों या स्रोतों के रूप में प्रविष्ट दिखाई देती हैं। ऐसी मिश्रित रूपान्तरित रचनाएँ 'मिग्मैटाइट' कहलाती हैं।

शिला-रसायन अर्थात् चट्टानों की रचना करनेवाले रासायनिक और खनिज तत्व

भूपृष्ठ का निर्माण करनेवाली भाँति-भाँति की चट्टानों, रेत-बालू और कंकड़-पत्थरों की पर्तों एवं मिट्टी की तहों आदि के कुल मिलाकर कोई साढ़े आठ सौ अलग-अलग नाम भूविज्ञान में हैं, जोकि अनेक वर्गों एवं विभागों में वर्गीकृत हैं। सैकड़ों प्रकार की ये चट्टानें जिन रासायनिक तत्त्वों से बनी हैं, वे प्रतिशत क्रमश: इस परिमाण में मिलते हैं--आक्सिजन (४६.७१), सिलिकन (२७.६९), एल्यूमीनियम (८.०७), लौह (५.०५), कैल्शियम (३.६५), सोडियम (२.७५), पोटेशियम (२.५८), मैग्नेशियम (२.०८), टाइटैनियम (०.६२) और हाइड्रोजन (०.१४)। ये मूलतत्व आक्साइड यौगिकों के रूप में निम्न परिमाण में विद्यमान मिलते हैं--सिलिका (५९.०७), अल्यूमीना (१५.२२), लोह या फैरस आक्साइड (६.८१), चूना (५.१०), सोडा (३.७१), पोटाश (३.११), मैग्नेशिया (३.४५), टाइटेनिया

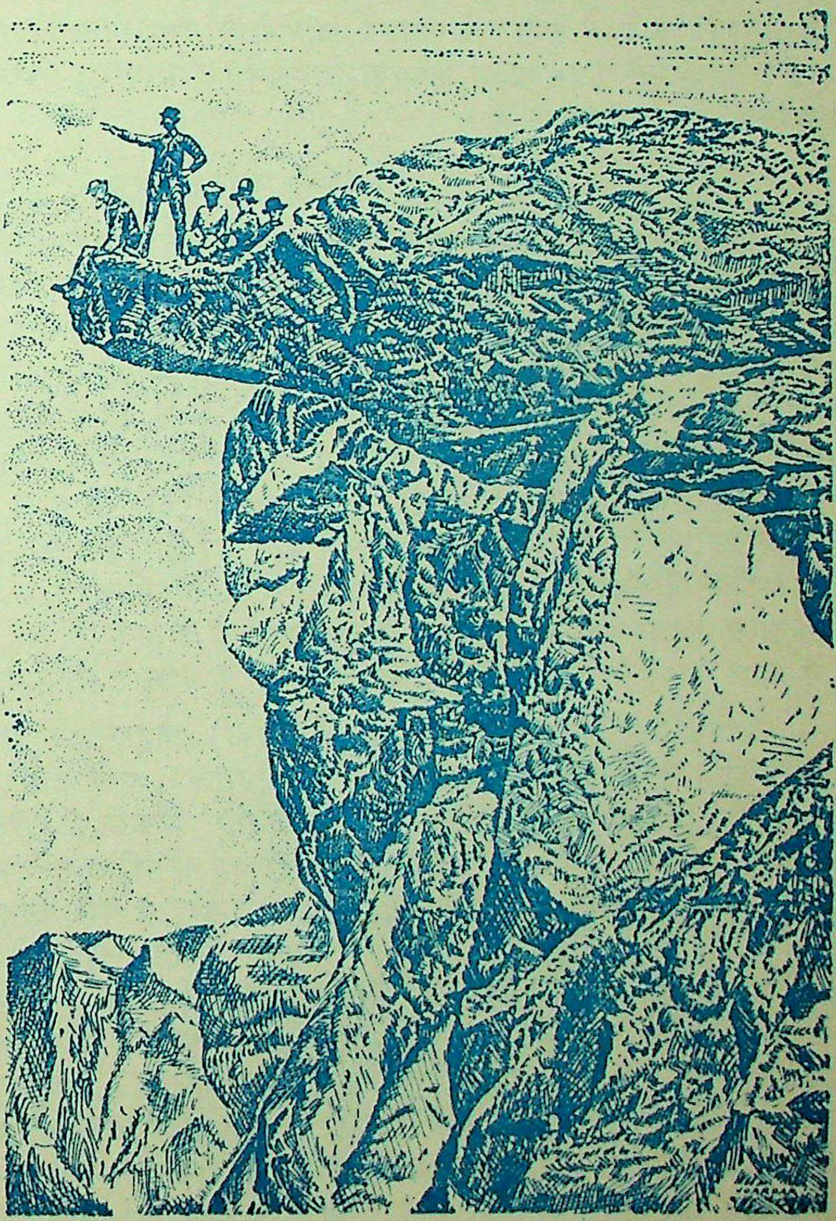

अमेरिका की प्रसिद्ध 'योशेमाइट-घाटी' में छज्जे की तरह बाहर की ओर निकले हुए, तले से लगभग एक हजार मीटर ऊँचे एक गगनचुंबी शिलाखंड का भव्य दृश्य।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१.०३), और जल (१.३०)। इनके अतिरिक्त सोना, चाँदी, ताँबा, टिन, गंधक, कार्बन आदि कुछ मूलतत्व भी कहीं-कहीं प्राकृतिक रूप में चट्टानों की नसों में जमा मिलते हैं, यद्यपि भूपृष्ठ के अवयवों के रूप में उनकी औसत मात्रा नगण्य-सी है।

महत्व और परिमाण दोनों ही की दृष्टि से इन शिलानिर्माणकारी तत्वों में पहला स्थान दरअसल आक्सिजन का है और दूसरा सिलिकन का। इन्हीं के मिश्रण से सिलिका (सिलिकन आक्साइड) नामक यौगिक बना है। इसका विख्यात रूप ग्रेनाइट, बलुआ पत्थर, आदि में पाये जानेवाले क्वार्ट्ज नामक रवादार खनिज अवयव में देखने को मिलता है। यद्यपि कोई दो हजार के लगभग खनिजों के नाम गिनाये जाते हैं, तथापि महत्व की दृष्टि से चट्टानों के सामान्य अवयवों का वर्णन दस-ग्यारह खनिज-वर्गों को गिनाकर ही बखूबी किया जा सकता है।

सिलिकेट खनिज-समूह

खनिज यौगिकों के लिहाज से सिलिका अन्य कई सामान्य आक्साइडों के साथ मिलकर शिलानिर्माणकारी यौगिकों के एक बड़े ही महत्वपूर्ण समूह की रचना करता है। इस वर्ग के 'खनिज' सिलिकेट कहलाते हैं। खनिजों में सबसे अधिक मात्रा में पाये जानेवाले द्रव्य 'फेल्सपार' के नाम से पुकारे जाते हैं। इनके 'आर्थोक्लेज', 'प्लेजियोक्लेज' और 'माइक्रोक्लाइन' नामक तीन वर्ग माने गये हैं। फेल्सपार के रवे अपनी तड़क एवं कठोरता के कारण स्फटिक से कहीं अधिक स्पष्ट पहचाने जा सकते हैं। 'आर्थोक्लेज' नामक फेल्सपार ग्रेनाइट का विशेष अवयव है। यह सफेद, लाल, भूरे और गुलाबी रंगों का होता है। इसके 'अनार्थाइट', 'अल्बाइट', 'ऐंडेसाइन' आदि कई उपवर्ग माने गए हैं। इसी खनिज-समूह में चन्द्रमणि या 'मूनस्टोन' जैसे कतिपय सुन्दर कीमती पत्थर भी सम्मिलित हैं। जल आदि की रासायनिक क्रिया से सड़गलकर जब फेल्सपार तितर-बितर हो जाता है, तो वह 'केओलिन' नामक मिट्टी में बदल जाता है। इसी को हम 'चीनी मिट्टी' के नाम से पहचानते हैं।

अन्य प्रसिद्ध सिलिकेटों में 'अबरक' (मायका), 'जहरमोहरा' (सर्पेण्टाइन), 'क्लोराइट', 'ऑगाइट', 'नैफेलिन', 'हार्नब्लैण्ड', 'सेलखरी' (टाल्क), 'एस्बेस्टास', 'ओलीवाइन', 'टूर्मलीन', 'पुखराज' (टोपाज), 'वैदूर्यमणि' (लैपिस लेजुली), 'जिर्कान', 'बेरिल', आदि खनिजों के नाम गिनाये जा सकते हैं। इनमें से अंतिम कुछ पत्थर कीमती रत्न-जवाहरों की श्रेणी में स्थान पाये हुए हैं। 'अबरक' की सफेद अबरक (मस्कोवाइट) और काला अबरक (बायोटाइट) नामक दो प्रधान जातियाँ हैं। पारदर्शी तड़कदार पर्तों की मोटी तहों में पाये जानेवाला यह अद्भुत खनिज अपनी भाँति-भाँति की उपयोगिताओं के कारण बड़ा ही महत्वपूर्ण माना गया है। 'नैफेलिन' काँच के निर्माण में प्रयुक्त होने के कारण कीमती है। 'हार्नब्लैण्ड' काले रंग के फलकदार रवों वाला एक दर्शनीय खनिज है, जिसका भाई-बन्धु 'ऑगाइट' नामक अन्य एक फलकदार सिलिकेट है, जिसे 'पाइरोक्सिन' भी कहते हैं। दोनों में अंतर केवल यही है कि जहाँ हार्नब्लैण्ड के रवे अधिक चमकीले और छः पहलवाले होते हैं, वहाँ ऑगाइट कम चमकीला और आठ फलकवाला होता है। 'एस्बेस्टास' का महत्त्व इस बात में है कि वह अग्निप्रतिरोधक है। इसीलिए मशीनों, इंजनों, बायलरों आदि में प्रायः उसकी तहें दी जाती हैं। यह एक रेशेदार खनिज है, जिसकी रस्सियाँ तक बँटी जाती हैं!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
'सेलखरी' (या टाल्क) से कौन परिचित नहीं होगा ? टेल्कम पाउडर का मूल पदार्थ वही है! 'जहरमोहरा' (सर्पेण्टाइन) हरे अंगूरी रंग का चिकना मोम जैसा एक पत्थर होता है। यह अपने सौंदर्य के कारण प्रायः संगमर्मर आदि के साथ इमारतों में प्रयुक्त होता है।

अन्य महत्वपूर्ण खनिज-समूह

सिलिकेटों के उपरान्त अन्य महत्वपूर्ण खनिज ये हैं– 'कैल्साइट', 'डोलोमाइट', 'मैग्नेसाइट' आदि कार्बोनेट यौगिक; 'सोनामाखी' (चाल्कोपायराइट), 'रूपामाखी' (पायराइट्स), 'रक्तपारद' (सिनाबार), 'मेलाकाइट', 'अजूराइट', आदि धातुओं के गंधकीय यौगिक; 'स्फटिक' (क्वार्ट्ज), 'ओपेल', 'याकूत' (एमिथिस्ट), 'एगेट', 'ओनिक्स', 'सूर्यकान्त मणि' (जैस्पर) जैसे सिलिका के आक्साइड यौगिक; 'लाल गेरू' (हीमेटाइट), 'कुरंद' (कोरंडम), 'माणिक्य' (रूबी), 'नीलम' (सैफायर), 'क्यूप्राइट', 'पिचब्लैंड', 'बाक्साइट', 'लिमोनाइट' आदि धातुओं के आक्साइड यौगिक; 'मोनाजाइट', 'बोरेक्स', 'शोरा' (नाइटर), आदि फास्फैट और नाइट्रेट यौगिक; 'हरसोठ' (जिप्सम), 'फिटकरी' जैसे सल्फेट और क्रोमेट यौगिक; एवं 'फ्लुओरस्पार', 'सेंधा नमक' (रॉक साल्ट), 'सिल्वाइट', 'स्टेनाइट' आदि भाँति भाँति के खनिज लवण।

उपयोगिता और महत्व की दृष्टि से इन सबको मात करनेवाला खनिजों का एक उल्लेखनीय वर्ग हाइड्रो-कार्बन यौगिकों का है। इस वर्ग में 'पेट्रोलियम' (मिट्टी का तैल), 'कोयला' और 'तारकोल' (एस्फाल्ट) जैसे वे महत्वपूर्ण पदार्थ सम्मिलित हैं, जो आधुनिक सभ्यता के प्रधान शक्ति-स्रोत एवं उद्योग-धंधों के प्राण हैं। इनके अतिरिक्त 'सोना', 'चाँदी', 'ताँबा', 'प्लैटिनम', 'संखिया' (आर्सेनिक), 'सुरमा' (एण्टीमनी) और 'बिस्मथ' जैसी कुछ धातुएँ और अर्द्ध-धातुएँ तथा 'हीरा', 'ग्रैफाइट' और 'गंधक' जैसे कतिपय पदार्थ अपने असली मूलतत्वीय रूप में ही प्राकृतिक दशा में यहाँ-वहाँ मिल जाते हैं। उधर 'लोहा', 'सीसा', 'जस्ता' 'एल्यूमीनियम', 'निकल', आदि सभी धातुएँ भी यौगिक रूप में माता पृथ्वी के भंडार में से ही निकाली जाती हैं। साथ ही 'यूरैनियम' और 'रेडियम' जैसी वे दुर्लभ अमूल्य धातुएँ भी खनिजों में से प्राप्त होती हैं, जिनसे कि परमाणुशक्ति के अगाध स्रोतों को खोलने का तिलस्मी गुर मनुष्य ने सीखा है। जिन देशों के पास इन खनिजों के भंडार हैं, वे अगाध शक्ति-स्रोत के मालिक हैं।

धरातल से नीचे एक खदान् में से मूल्यवान खनिज खोदे जा रहे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चट्टानों की व्यवस्था और अव्यवस्थाएँ—स्तर-रचना, जोड़, मोड़, स्तर-स्खलन, अन्तर्प्रवाह, शिलाभित्ति, अधोशिला, शिलापट, शिलाछत्रक आदि

भूपृष्ठ की उपमा ईंट-पत्थर से चुनी गई किसी कृत्रिम इमारत से तो नहीं दी जा सकती। क्योंकि उसकी रचना पूर्वनिश्चित योजनानुसार कृत्रिम भवनों की तरह नहीं, बल्कि प्रकृति की निरंतर बदलती हुई स्थितियों के अनुरूप अपने आप द्रव्य-पदार्थों के विकास के फलस्वरूप हुई है। फिर भी सुविधा के लिए हम यह कह सकते हैं कि इस प्राकृतिक रचना में भी कृत्रिम दीवारों की तरह नींव की जगह नीचे तले में ग्रेनाइट जैसी आदिम आग्नेय चट्टानों का एक ऊबड़खाबड़ आधारतल है। तदुपरान्त उस पर ईंटों की तहों की तरह उठते चले गए हैं विविध तलछटी चट्टानों के एक पर एक रचे हुए व्यवस्थित परतीले स्तर! ये स्तर ऐसे प्रतीत होते हैं मानो किसी अलौकिक कारीगर द्वारा चूने या गारे में चुन-चुनकर दीवार के रूप में उठाये गए हों! इन समानान्तर स्तरों की एक-दूसरे के बीच की सुव्यवस्थित विभाजक दरारों, सुगठित आपसी जोड़ों और बीच-बीच की खाली जगहों में गारे-मिट्टी के साथ-साथ भरे हुए कंकड़-पत्थरों और कत्तलों आदि के अनोखे भरावों तथा लहरदार घुमाव या धनुषाकार मरोड़ के फलस्वरूप यहाँ-वहाँ बन जानेवाली अद्भुत मेहराबनुमा रचनाओं को देख-देखकर स्वभावतः ही हमें उनके कृत्रिम होने का भ्रम होने लगता है! परन्तु है दरअसल यह सब-कुछ प्रकृति की लीला का ही अनूठा चमत्कार, जिसमें कहीं यदि हमें एक व्यवस्था-सी दिखाई पड़ती है, तो साथ ही साथ सैकड़ों ऐसी अव्यवस्थाएँ भी मिलती हैं, जोकि उक्त व्यवस्था का क्रम भंग कर देती हैं!

सच तो यह है कि हमारी अपनी निगाह में व्यवस्थित या अव्यवस्थित-सी जान पड़नेवाली ये प्राकृतिक रचनाएँ सब की सब कुदरत के उस कानून के अधीन उपजी और पनपी हैं, जिसका नाम है 'विकासवाद'। इस कानून का एक ही मूलमंत्र है—बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन द्वारा लगातार नई-नई अनुकूल शक्लें सामने लाना! भूपृष्ठ तक चट्टानों की सारी वास्तु-व्यवस्था और उसमें पाये जानेवाले भाँति-भाँति के ये व्यवस्थित और अव्यवस्थित रूप इसी महान् नियम के प्रतिबिंब हैं। वे पृथ्वी के करोड़ों वर्ष के इतिहास की झाँकियों के स्मृतिचिह्न अपने पथरीले चेहरे में बसाये हुए हैं। ये झाँकियाँ निर्माण और ध्वंस, उत्पत्ति और विनाश, इन दोनों ही पहलुओं का चित्र सदैव प्रस्तुत करती रही हैं! अतः चट्टानों और शिलाखंडों के आज के विद्यमान रूपों में पृथ्वी के हलचलभरे भूतकाल की न जाने कैसी-कैसी उथलपुथल और प्रसव-वेदनाओं की मूक कहानी रेखांकित है।

चट्टानों का पुटीकरण कैसे हुआ?

पृष्ठ ४६ का चित्र देखो और उसमें दिग्दर्शित चट्टानों की समानान्तर पर्तों का मिलान पृष्ठ ५० के चित्र में दिखाई पड़ रही परतीली चट्टानों के इसी प्रकार के अन्य एक स्तर-समूह से करो! क्या स्पष्टतः यह जाहिर नहीं होता कि मूलतः तो पृष्ठ ५० के चित्र की परतीली तहें भी पृष्ठ ४६ के चित्र के स्तरों की भाँति समानान्तर पर्तों के रूप में सीधी जमी होंगी, परन्तु बाद में मानो किसी भीषण दबाव के शिकंजे में कसकर वे इस तरह सबकी सब एक साथ मुड़कर धनुषाकार मेहराबों की शक्ल की लहरदार बन गईं, जैसे कि लोहे की सलाखें ताकत लगाने पर मुड़ जाती हैं! इस संबंध में भूतत्त्ववेत्ताओं ने काफी

.CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाँच-परख की है और उस गहरी छानबीन के फलस्वरूप वे इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि परतीली चट्टानों के स्तरों का यह 'पुटीकरण' (फोल्डिङ्ग) निश्चय ही इन स्तरों की उत्पत्ति के बाद की करतूत है। वह है दबाव का परिणाम! यहाँ हम तुम्हें बता दें कि दबाव के कई रूप हो सकते हैं। वह गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार ऊपर से नीचे की ओर पड़नेवाला सामान्य सीधा खड़ा दबाव भी हो सकता है और अगल-बगल से लगनेवाली शक्ति से उत्पन्न आजू-बाजू का दबाव भी! याद रक्खो कि जब किसी पदार्थ पर पड़नेवाले दबाव की मात्रा उस पदार्थ की अपनी शक्ति से बढ़ जाती है, तो उस पर एक प्रकार का जोर पड़ता है। इस जोर के मारे वह पदार्थ यदि चिटकीला या तड़कीला हुआ, तब तो चिटककर या तड़ककर चूर-चूर हो जाता है! परंतु यदि नमनीय हुआ, तो पिचककर, मुड़कर या आकुंचित होकर वह जिस प्रकार का दबाव हो उसके लिहाज से अपनी शक्ल-सूरत बदल लेता है। यदि पदार्थ पिघला हुआ या अर्द्ध-पिघली दशा में हुआ, तो जिधर आसानी से रास्ता मिले उधर ही वह उमगकर बह चलता है! सारांश यह है कि ज्यों-त्योंकर वह दबाव से उत्पन्न जोर की स्थिति से छुटकारा पाने की कोशिश करता है। यही किस्सा चट्टानों की विविध प्रकार की अव्यवस्थाओं का भी है। यह तो तुम जानते ही हो कि एक पर एक तह जमते चले जाने के कारण, जलज या तलछटी चट्टानों की प्रमुख विशेषता उनका पर्त-निर्माण है। दूसरी ओर, आग्नेय चट्टानों की प्रमुख विशेषता, उनकी रचना-सामग्री के लावा की तरह पिघली या अर्द्ध-पिघली दशा में होने के कारण, पिघले हुए गुड़ या तारकोल की तरह बहकर फैलने का उनका ढंग है। इसके अनुसार दबाव की स्थिति में आसपास के रिक्त स्थानों, खाँचों, दरारों, प्रणालियों आदि में रिसकर या भरकर जिधर राह मिली उधर ही पीछे के जोर से वे फैलती और बढ़ती चली गई हैं! इसी से अंतर्गामी (इन्ट्रयूजीव) और बहिर्गामी (एक्सट्रयूजीव) ये दो रूप उनके बन गए हैं। आओ, अब चट्टानों की व्यवस्था और अव्यवस्था के विविध रूपों का तुम्हें परिचय करा दें।

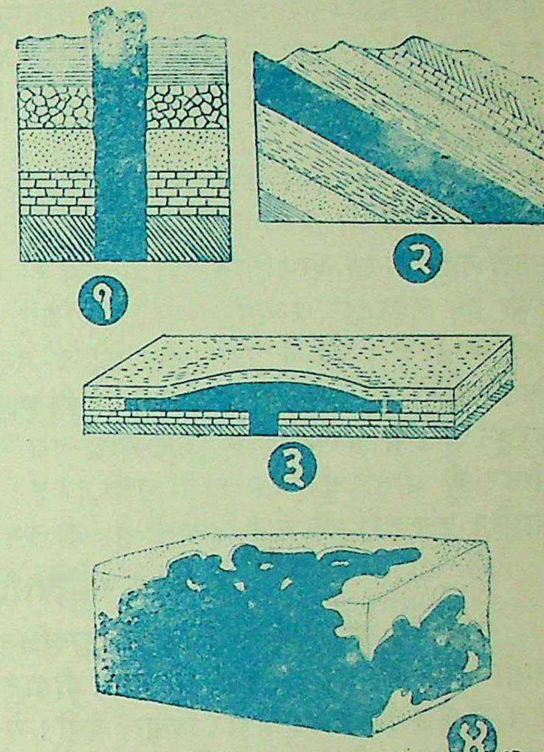

अंतर्गामी शिलारूपों के कुछ प्रकार—(१) 'डाइक' (शिला-भित्ति); (२) 'सिल' (शिलापट); (३) 'लैकोलिथ' (शिलाछत्रक); (४) 'बैथोलिथ' (अधोशिला)।

आकुंचन या मोड़

हम देखते हैं कि आम तौर पर चट्टानों की पर्तें आधारतल के समानान्तर आड़ी दिशा में एक पर एक सीधी बिछती चली गई हैं। परन्तु कहीं-कहीं वे एक ओर से तनिक ऊँची

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उठकर धरातल के साथ कोण बनाते हुए खड़े तिरछे ढंग से भी रची हुई दिखाई देती हैं। उनकी यह अव्यवस्था 'पुटीकरण' (फोल्डिङ्ग) के नाम से सूचित उस वृहत् गड़बड़ी ही की एक झलक है, जिसका कि उल्लेख हम कर चुके हैं। इस व्यतिक्रम का उग्रतम रूप ऊँट की कूबड़ या उल्टी मेहराबों की शक्ल में विकसित उन आकुंचनों या मोड़ों में हमें देखने को मिलता है, जिनकी झाँकी पृष्ठ ५० और ५१ के चित्रों में दिग्दर्शित है। जब पुटें उन्नत कमान या कूबड़ों की शक्ल में धरातल से ऊँची उठी हुई होती हैं, तो भूवैज्ञानिक उन्हें 'एंटीक्लाइन' के नाम से सूचित करते हैं और इसके विपरीत जब वे अंग्रेजी के U या V अक्षरों की भाँति उल्टी मेहराबों या आखातों के रूप में धँसी हुई सी रहती हैं, तो उन्हें कहा जाता है 'सिंक्लाइन'। कभी इन लहरदार अव्यवस्थाओं की बाजुएँ उलट-पलटकर एक दूसरे पर चढ़ जाती हैं या बिछ जाती है। तब वे 'रिकम्बेन्ट फोल्ड' कहलाती हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि शिलाओं की व्यवस्था में उत्पन्न यह विषमता (अनकन्फर्मिटी) दबाव की शक्तियों की ही करतूत है। ये अव्यवस्थाएँ उल्टे-सीधे बल खायी हुई रस्सी की भाँति लहराकर चट्टानों के भीतर ही भीतर दूर तक बढ़ती चली गई हैं। भूपृष्ठ की ये अनोखी पथरीली लहरें उन पुराकालीन हलचलों की याद दिलाती हैं, जो इन शिलाओं के इतिहास में कभी गुजर चुकी हैं!

स्तरों के मध्यवर्ती जोड़ या 'ज्वाइंट'

यदि हम पृष्ठ ४६ के चित्र में दिग्दर्शित बलुआ चट्टानों जैसी तलछटी जलज पर्तों के किसी समूह को गौर से देखें, तो उसमें दीवार में चुने गए ईंट-पत्थरों के जोड़ों की तरह बीच-बीच में कुछ विभाजक दरारें दिखाई देंगी। ये विभाजक दरारें भूविज्ञान की भाषा में 'ज्वाइंट' (जोड़) कहलाती हैं। इनकी रचना दबाव की स्थिति में चट्टानों की पर्तों की चिटक या तनाव की स्थिति में उनके फट पड़ने के कारण ही हुआ करती है। जोड़ की ये रेखाएँ प्रायः स्तर के धरातल के साथ समकोण बनाते हुए खड़ी तड़कन के रूप में विभिन्न स्तरों के बीच में बड़े कायदे से सीधी फैली मिलती हैं। इससे खदान खोदनेवालों को, बने-बनाए आयताकार समकोण ढोकों के रूप में, बड़े-बड़े शिलाखण्ड प्रायः तैयार मिल जाया करते हैं। सूर्यताप, जल, वायु एवं पौधों की जड़ें आदि विखंडनकारी शक्तियों के प्रभाव से इन दरारों के जोड़ सतह पर बहुत शीघ्र खुल जाते हैं। इसी से समुद्री कगारों या गिरि-पृष्ठों की चट्टानों की खुली पर्तें कई स्थानों में दीवारों की-सी कृत्रिम रचनाओं का भ्रम दर्शक के मन में पैदा करने लगती हैं! इन जोड़ों की रचना आग्नेय चट्टानों में कभी-कभी बड़ी ही अद्भुत और दर्शनीय झाँकी विकसित करते पाई गई है, जैसी कि 'जाएण्ट्स काज्वे' के पहलदार स्तंभवर्ती बेसाल्टी शिलाखंडों की फर्शी टाइलसनुमा श्रृंखलाबद्ध रचनाओं में! ऐसी पाँच या छः पहलवाली तड़कन की झलक हमें किसी नदी या दलदली झील की पंकराशि के सूख जाने पर भी प्रायः देखने को मिला करती है। इसी से हम अनुमान लगाते हैं कि इन आग्नेय शिला-पर्तों के ये अनोखे जोड़ आदिम शिला-पदार्थ के ठंढा होकर जमने और सिकुड़कर चिटकने के फलस्वरूप ही बने होंगे।

स्तर-स्खलन या 'फाल्ट'

भूपृष्ठ के स्तरों का निर्माण विविध अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच हुआ है। अतः उनकी जो झाँकी आज के दिन हमें देखने को मिल रही है, उसके पीछे भाँति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाँति की भूशक्तियों के साथ उनकी लगातार की कशमकश और कई एक उल्टे-सीधे प्रभावों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का एक पूरा इतिहास छिपा हुआ है। इसका परिचय हमें इस बात से मिलता है कि शिलास्तरों में न केवल आकुंचन, मोड़ या जोड़ जैसी ऊपर उल्लिखित अव्यवस्थाएँ ही हैं, बल्कि उनकी एक और महत्वपूर्ण अव्यवस्था उनकी स्तर-शृंखला के एकाएक भंग होकर नीचे धँस जाने या बीच में अथवा खंदक छोड़कर अगल-बगल या आगे-पीछे खिसक जाने के रूप में भी देखने को मिला करती है। इस प्रकार की विषमता को भूविज्ञान में स्तर-स्खलन या 'फॉल्ट' के नाम से पुकारा गया है और अलग-अलग परि-स्थितियों के अनुसार उसके तीन मुख्य रूप गिनाये गये हैं।

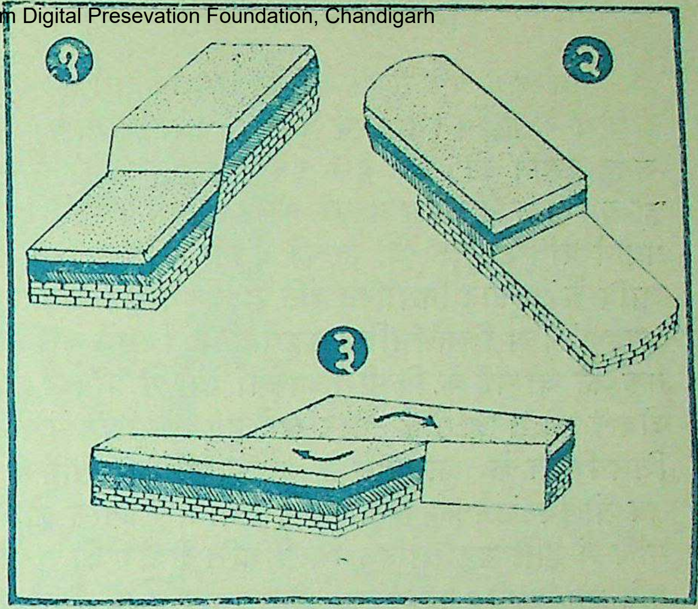

चट्टानों के स्तर-स्खलन (या फाल्ट) के तीन प्रकार—(१) सामान्य स्तर-स्खलन; (२) विपर्यस्त स्तर-स्खलन, और (३) पार्श्ववर्ती स्तर-स्खलन।

स्तर-स्खलन के तीन प्रकार

प्रथम प्रकार में सीधा खड़ा जोर पड़ने के कारण, चट्टान का एक अंश लगभग ४५° का कोण बनाते हुए नीचे खिसक या धँस जाता है। ऐसी स्तरभ्रष्टता को सामान्य स्तर-स्खलन या 'नार्मल फॉल्ट' कहते हैं (दे० इसी पृष्ठ का चित्र)। दूसरा प्रकार वह है, जिसमें सीधे खड़े जोर के बजाय आड़ा जोर पड़ा करता है। फलतः ताश की गड्डी के पत्तों की तरह आड़े बल पर खिसककर स्तर-समूह की कुछ तहें स्थानभ्रष्ट हो जाती हैं और नीचे की आधारतलीय तहों को खुला करके वे इस प्रकार स्थानान्तरित हो जाती हैं जैसे कि मेज की दराजें! कहते हैं, इस प्रकार की पर्त-भ्रष्टता के फलस्वरूप कभी-कभी स्खलित शिलाखंड धकिलकर बहुत दूर तक जा पहुँचते हैं और दूसरे स्तरों के ऊपर जा चढ़ते हैं! अपने इस स्थानान्तरीकरण के क्रम में वे राह में पड़नेवाले अन्य शिलाखंडों को प्रायः चकनाचूर कर देते हैं। कभी-कभी यह भी पाया गया है कि किसी एक स्तर-समूह के नीचे एक नवीन स्तर-समूह घुस आया है! इस वर्ग के स्तर-स्खलन के लिए अंग्रेजी नाम 'रिवर्स या थ्रस्ट फॉल्ट' है, जिसे हम विपर्यस्त या व्यस्त स्तर-स्खलन कह सकते हैं। तीसरा और अंतिम स्तर-स्खलन 'टेयर फाल्ट' कहलाता है। इसमें जोर पार्श्ववर्ती और ऊपर-नीचे दोनों ही दिशाओं में पड़ता है। नतीजा यह होता है कि स्थल-भ्रष्ट स्तरों की गति कभी-कभी चक्रवत्-सी हो जाती है! इस प्रकार के भू-व्यतिक्रम के फलस्वरूप भूतल पर महान् विनाश की लीला रच जाया करती है, क्योंकि इसका भूकंप जैसी विध्वंसकारी घटनाओं के साथ सीधा संबंध है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिलाओं का अन्तर्प्रवाह—'शिलाभित्ति', 'अधोशिला' आदि

हम बता चुके हैं कि आग्नेय शिला-पदार्थ की एक विशेष प्रवृत्ति भूपृष्ठ के शिलास्तरों के बीच के रिक्त स्थानों में घुसकर, भाँति-भाँति की अंतर्गामी रचनाओं की शक्ल में, अपनी जगह बनाने की रही है। इससे 'हाइपैबिसल' नामक आग्नेय चट्टानों का एक पृथक् वर्ग ही बन गया है। इस प्रकार की मध्यवर्ती रचनाओं का रूप-आकार, जिस स्थान में पिघला पदार्थ प्रविष्ट हुआ हो, उसकी अपनी विशिष्ट स्थिति, शक्ल-सूरत एवं प्रवेश करने के ढंग आदि के अनुसार निर्धारित होते पाया गया है। उदाहरणार्थ, ऐसी ही एक प्रमुख शिला-रचना 'डाइक' (या शिलाभित्ति) कहलाती है, जिसमें कुछ सेंटीमीटर से लेकर सैकड़ों-हजारों मीटर तक की चौड़ाई के किसी मध्यवर्ती गर्त्त में प्रविष्ट हो, पिघला हुआ आग्नेय पदार्थ भींत या दीवार की तरह सीधे टटार खड़े हुए शिलाखंड में परिणत होते पाया गया है। इस आग्नेय शिलाभित्ति के आसपास के स्तरपृष्ठों का खनिज पदार्थ यदि उससे कमजोर हुआ, तब तो विखंडन की क्रियाओं के प्रभाव से ध्वस्त हो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और उसके साँचे में ढली यह आग्नेय शिलाभित्ति दीवार की तरह अकेली ही खड़ी रह जाती है। परंतु यदि यह आग्नेय पदार्थ स्वयं ही कमजोर हुआ, तो कभी-कभी विखंडित होकर वह छिन्न-भिन्न हो जाता है और उसकी स्मृति के रूप में केवल पार्श्ववर्ती स्तरों के बीच बचा हुआ खंदक रह जाता है (पृ० ५७ का चित्र देखिए)।

इस वर्ग की अन्य कुछ रचनाएँ 'बैथोलिथ' (अधोशिला), 'लैकोलिथ' (शिला-छत्रक), और 'सिल' (शिलापट) के नाम से पुकारी जाती हैं। 'सिल' की रचना परतीले स्तरों में से किसी के बीच की दरार में पिघले हुए पदार्थ के घुस पड़ने और ऊपर के स्तरों को ऊँचा उठाकर वहीं अपनी एक सपाट पतली तह फैला देने के रूप में हुई है। जब नीचे की दरार या छिद्र की राह से किसी स्तर में घुस पड़नेवाला ऐसा आग्नेय पदार्थ सिल की-सी पतली चादरनुमा तह फैलाने के बजाय अपने दबाव से ऊपरी स्तरों को इस प्रकार जोर से उठा देता है कि वहाँ एक गुंबदनुमा जगह बन जाती है, तो उसमें बन जानेवाली कुकुरमुत्ता की छत्री या छत्रक की-सी रचना को 'लैकोलिथ' या शिलाछत्रक के नाम से पुकारा जाता है। परंतु इनमें सबसे आश्चर्यजनक रूप तो 'बैथोलिथ' नामक उन अधोगत शिलाओं का है, जो कि एक ऊबड़-खाबड़ गुंबदाकार छत के नीचे गहराई तक चले गए अनोखे दीर्घकाय शिलापिंड होते हैं। वे चट्टानों के स्तरों के नीचे के किसी कंदरानुमा खोखले कक्ष में घुसकर आग्नेय पिघले हुए द्रव्य के कभी ठंढा पड़ जाने से निर्मित हुए प्रतीत होते हैं (पृ० ५७ का चित्र देखिए)!

यह तो हुई शिलाओं के सामान्य रूप और उनकी भूभौतिक रचना की संक्षिप्त कहानी। परन्तु उनका रूप तो प्रकृति की पंचभूतीय शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं द्वारा निरंतर बदलता रहा है और बदलता चला जायगा। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि यदि हम कुछ ही वर्षों के बाद धरातल के किसी स्थल को जाकर देखें, तो वह हमें हूबहू पहले जैसा देखने को नहीं मिलता! पुरातन के विखंडन द्वारा नव-निर्माण का यह कार्य धरती के आँगन में किस प्रकार हुआ है और होता चला जा रहा है, इसका विवरण अगले एक प्रकरण में हम तुम्हें बताएँगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदि आपकी निगाह के सामने एकाएक ऐसा कोई पहाड़ आ खड़ा हो, जिसकी चोटी में से काले-पीले धुएँ के उद्‌गार निकल रहे हों; तदनंतर वही पहाड़ देखते-देखते धुएँ के साथ आग की चिनगारियाँ, जलते हुए पत्थर, गरम-गरम राख और जहरीली गैसों की फूत्कार भी छोड़ने लगे--साथ ही उसमें से तोपों की गड़गड़ाहट जैसी विस्फोट-सूचक आवाजें उठने लगें और अंत में उसमें से पिघले हुए लोहे जैसा कोई गाढ़ा-गाढ़ा द्रव उबल-उबलकर शैतान की जीभ की तरह राह में पड़नेवाली सभी चीजों को चाटता हुआ, धीरे-धीरे फैलने और बढ़ने लगे–तो फिर भला आपके भय का क्या ठिकाना होगा ? यही दशा लाखों वर्ष पूर्व के हमारे उन आदिम पुरखों की भी रही होगी, जिन्होंने जीवन में पहले-पहल धुआँ और आग उगलते हुए किसी ज्वालामुखी पर्वत को देखा होगा! इन डरावने प्राकृतिक कौतुकों के प्रति जो भय की भावना मनुष्य के मन में तब से जड़ जमा चुकी है, वह आज तक उखड़ने नहीं पाई है। यही कारण है कि जब हम किसी छिपे हुए खतरे की चर्चा करते हैं, तो कहते हैं कि हम सोये हुए ज्वालामुखी की चोटी पर बैठे हैं! इससे अंदाज किया जा सकता है कि चाहे जाग्रत चाहे सुप्त हर दशा में ज्वालामुखी हमारे लिए कितनी भयावनी वस्तु है!

ज्वालामुखी--क्या और क्यों ?

आखिर धुआँ और आग उगलनेवाले ये अनोखे पहाड़ हैं क्या ? किस गुप्त भट्टी की दबी हुई आँच को बाहर निकालने के लिए स्थान-स्थान पर कुदरत ने धरती पर इन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनोखी चिमनियों की रचना कर रक्खी है ? फिर, क्यों तो ये चिमनियाँ एकदम ठंढी पड़कर कभी सो जाती हैं और क्यों बिना किसी पूर्वसूचना के हड़बड़ाकर कभी-कभी एकाएक जग पड़ती हैं एवं धुआँ, आग, गरम राख और पिघले हुए रक्ततप्त द्रव पदार्थ का भयावना उगाल चारों ओर उँडेलने लगती हैं ? इसका उत्तर खोजने के लिए पृथ्वी के उस महान् रहस्यलोक 'भूगर्भ' और उसके अन्तराल में सुलग रही भीषण भट्टी की ओर हमें चलना होगा, जिसका परिचय पिछले एक प्रकरण में हम पा चुके हैं ।

तुम जानते ही हो कि कुछ ही किलोमीटर मोटे ऊपरी चट्टानी आवरण के नीचे पृथ्वी का गर्भालय एक धधकते हुए अग्निपिंड का रूप लिये हुए है । इस अग्निपिंड का केन्द्रीय तेजोमय धातुपिंड (जो व्यास में शायद चन्द्रमा से दूने आकार का होगा) हमारी पहुँच से सर्वथा परे की वस्तु है । उसके बारे में हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं, उसकी प्रत्यक्ष झाँकी देख पाने के कोई साधन हमारे पास नहीं ! परन्तु ऊपरी चिप्पड़ और उक्त अग्निकेन्द्र के संधिस्थल पर एक इलाका ऐसा है, जिसकी कि लौ-लपट की किंचित् झलक पा लेना हमारे लिए बिल्कुल नामुमकिन नहीं है ! यह संधिक्षेत्र धरातल से संभवतः पंद्रह-बीस से चालीस-पचास किलोमीटर की गहराई पर अवस्थित है। उसकी झलक दिखाने का श्रेय प्राप्त है इन्हीं ज्वालामुखी-रूपी प्राकृतिक चिमनियों को, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं । ये चिमनियाँ इस तप्त प्रदेश के साथ उसी प्रकार संबद्ध हैं, जिस प्रकार किसी कल-कारखाने की चिमनी नीचे सुलग रही कोयले की भट्टी के साथ संबद्ध रहती है !

निकास-नली या 'क्रेटर' का निर्माण

हम तुम्हें बता चुके हैं कि भूगर्भ की भट्टी का यह अंश १,०००° शतांश से कम ताप का प्रदेश नहीं है । ऐसे उच्च ताप की दशा में निश्चय ही कठोर से कठोर चट्टान भी पिघलकर एकदम तरल हो जाती है। अतः चिप्पड़ के शिला-स्तरों के नीचे धधकते हुए इस भौगर्भिक संधिक्षेत्र की झाँकी बहुत-कुछ लोहे के कारखानों में इस्पात तैयार करनेवाली भट्टियों जैसी होगी । वहाँ केवल पिघले हुए लोहे जैसे रक्त-तप्त चट्टानी द्रव्य और उसके बीच-बीच में अंगारों की तरह चमचमाते हुए अर्द्ध-विगलित रोड़ों, उनसे उठती हुई जहरीली गैसों की लाल-पीली लपटों एवं तड़पती हुई चिनगारियों का प्रलयंकर दृश्य सदैव छाया रहा करता होगा ! दबाव की परिस्थिति में रहनेवाला द्रव्य स्वभावतः आसपास फैलकर तनाव की स्थिति

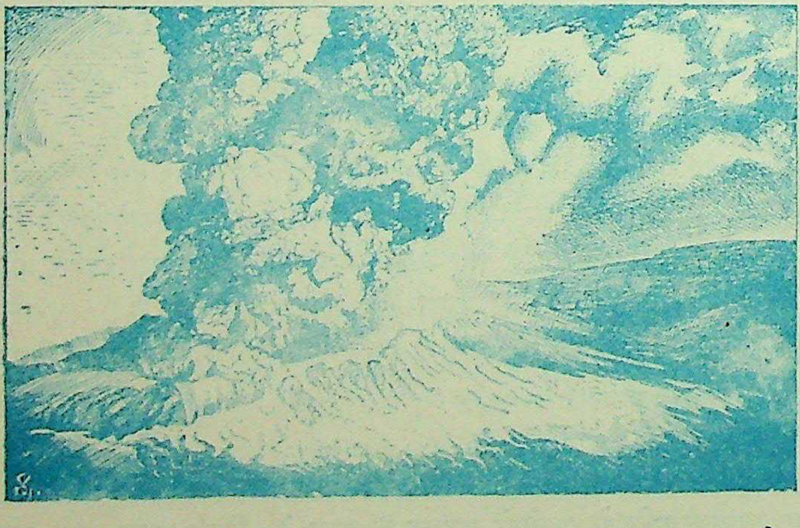

धुआँ और आग उगलते हुए ज्वालामुखी की भयावनी झाँकी—जापान के 'आसो-सान' नामक इस ज्वालामुखी के मुख का व्यास २४ किलोमीटर है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से छुटकारा पाने की कोशिश करेगा। वह जिस ओर भी उसे अनुकूलता प्राप्त होगी, उसी ओर निकास का मार्ग बना, अपना जोश निकालने के लिए जूझेगा! इस बात की तो कोई गुंजाइश नहीं कि ऊपर का द्रव्य कई गुना दबाववाले, नीचे के केन्द्रीय धातुपिंड को तनिक भी भेद सके! अतः उसके लिए इसके सिवा कोई चारा नहीं रह जाता कि ऊपर लदे हुए उस चट्टानी आवरण ही में वह अपने निकास का मार्ग खोजे, जिसे कि हम पृथ्वी के चिप्पड़ के नाम से पुकारते हैं!

ज्वालामुखी की भीतरी रचना—नलकूपाकार खड़ा स्तंभ ही 'क्रेटर' है, जो चट्टानों के स्तरों को भेदता हुआ गर्भप्रदेश की भट्टी को धरातल से संबद्ध किए हुए है। मुख्य क्रेटर से निकली हुई शाखों पर भी ध्यान दीजिए।

आखिर यही बात घटती है! इस कार्य में चट्टानों के विभिन्न स्तरों के बीच की सेंधें, दरारें, अव्यवस्थाएँ आदि बड़ी मददगार होती हैं। इन खोखली और कमजोर जगहों में आसानी से घुस-कर या रिसकर, संमिश्रित गैसों-सहित नीचे का रक्ततप्त द्रव्य अनुकूल मार्ग बनाते हुए लगातार आगे बढ़ता चला जाता है। अंत में वह अपने लिए बाहर निकलने का एक नलिकाकार निकास-मार्ग बना लेता है। इस निकास-मार्ग से पहले तो रुँधी हुई गैसों और लपटों आदि के गुबार निकलते देखे जाते हैं। परन्तु कालान्तर में जोश बढ़ने पर, गरमागरम राख और जलते हुए अंगारों के साथ-साथ पिघले हुए लोहे की तरह तमतमाता हुआ गाढ़ा-गाढ़ा द्रवित चट्टानी पदार्थ भी उसमें से उमड़ने लगता है। इसी उगाल को 'लावा' के नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार नीचे की भौगर्भिक भट्टी की आँच के निकास के लिए ठेठ धरातल तक एक स्थायी रास्ता निर्मित हो जाता है। यह मार्ग मुख के आसपास उगले हुए आग्नेय पदार्थ के निरंतर संचय के फलस्वरूप धीरे-धीरे शंकु के आकार के एक टीले का रूप ग्रहण कर लेता है। इस टीले के बीच में कूप की शक्ल की एक निकास-नली बनी रहती है। इस संपूर्ण रचना को 'ज्वालामुखी' के नाम से हम पुकारते हैं और बीच की नली को ज्वालामुखी का 'क्रेटर' कहते हैं।

जाग्रत और सुप्त ज्वालामुखी

कभी-कभी जब कि नीचे का दबाव बेतरह बढ़ जाता है, इन प्राकृतिक चिमनियों के भीतर से विस्फोटों का एक ताँता-सा शुरू हो जाता है। इससे उनकी दीवारें एकाएक फट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

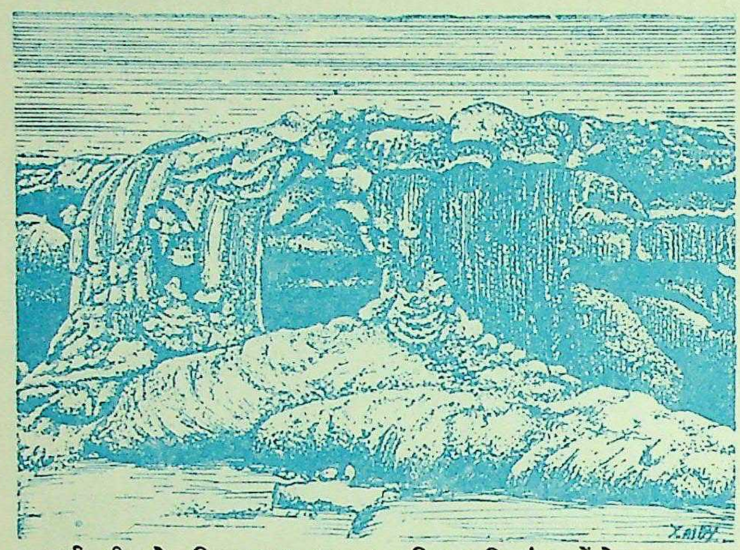

हवाई द्वीप के किलाऊआ नामक प्रसिद्ध अग्निकुंड में से बहकर जम जानेवाली लावा--यह अग्निकुंड वस्तुतः एक ज्वालामुखी का क्रेटर है।

पड़ती हैं और आसपास का क्षेत्र थरथरा उठता है! इन विस्फोटों के समय भीतरी रुँधा हुआ पदार्थ एकबारगी ही जोश के साथ उमड़-कर चारों ओर अग्नि-वर्षा करने लगता है। कभी-कभी यह भी होता है कि जोश ठंडा पड़ जाने के कारण एक लंबे अरसे के लिए (अथवा सदा के लिए) ये चिम-नियाँ सो-सी जाती हैं। उस समय निकास-नली का मार्ग आसपास के विखंडित द्रव्य के भर जाने से रुँध जाता है। ऐसे बहुतेरे ज्वाला-मुखी हजारों वर्षों से ठंढे पड़कर सोये हुए हैं। कहा नहीं जा सकता कि वे कभी जगेंगे भी या नहीं! परन्तु बहुत-से ऐसे भी हैं, जो अब भी अपने धुएँ के गुबार उड़ाते देखे जा सकते हैं। कई ज्वालामुखी वर्षों तक प्रसुप्त रहने के बाद एकाएक भड़कते भी पाये जाते हैं, जिससे कि आसपास के इलाकों में साक्षात् प्रलय की झाँकी रच जाया करती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आग उगलने-वाली इन अद्भुत रचनाओं की हलचल का सारा दारोमदार पृथ्वी की आन्तरिक भट्टी की विशिष्ट परिस्थितियों पर ही निर्भर है। जैसे-जैसे उन परिस्थितियों में उलटफेर होंगे, वैसे-वैसे इन ज्वालामुखियों की हलचल भी उग्र या मंद होते देख पड़ेगी। ये आग उगलने-वाली अनोखी चिमनियाँ कोई आजकल की रचनाएँ हों, सो बात भी नहीं है। वस्तुतः उनमें से अधिकतर अपने अंचल में पृथ्वी के उस धूमिल शैशवकाल की स्मृतियाँ समेटे हुए हैं, जबकि धरातल की चट्टानों के निर्माण के सिलसिले में भूगर्भ की हलचल बेतरह जोर-शोर पर थी। यह तो तुम्हें मालूम ही है कि अपना भीतरी जोश-गुबार निकालने के प्रयास में उन दिनों पृथ्वी के वक्षःस्थल पर फफोलों की-सी रचनाओं की भरमार हो आई थी। ये ज्वालामुखी उन्हीं फोड़े-फुंसियों के निशान हैं।

प्रमुख ज्वालामुखी-शृंखलाएँ

इतिहास के आरंभकाल से अब तक मनुष्य की जानकारी में आनेवाले जाग्रत ज्वाला-मुखियों की कुल गिनती पाँच सौ के लगभग आँकी जाती है। परन्तु पृथ्वी के आँगन में यहाँ-वहाँ बिखरे हुए हजारों सुप्त ज्वालामुखियों की शंकुवत् चोटियों एवं पातालस्पर्शी क्रेटरों को देखते हुए यह संख्या वस्तुतः बहुत छोटी है। जो भी हो, पृथ्वीतल पर जाग्रत स्थिति में पाये जानेवाले ज्वालामुखी इस समय दो-ढाई सौ से अधिक नहीं हैं, जबकि प्रसुप्त ज्वालामुखी-शिखर हजारों हैं, जिनमें से अधिकतर समुद्र के गर्भ में छिपे हुए हैं। ये सब ज्वालामुखी प्रायः धरातल के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में विशिष्ट शृंखलाबद्ध पट्टियों के रूप में फैले हुए हैं। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि जैसे पुराकाल में वैसे आज

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के दिन भी पृथ्वी के चिप्पड़ के कुछ इलाके ज्वालामुखियों की हलचल के लिए विशेष रूप से अनुकूल हैं। संभवतः इन क्षेत्रों का उन पुराकालीन हड़कंपों के साथ गहरा नाता रहा होगा, जिनके फलस्वरूप समय-समय पर धरातल पर पर्वतश्रेणियाँ उपजती और विकसित होती रही हैं। यदि हम उक्त पर्वतश्रेणियों की उपमा पृथ्वी के मुखमंडल पर प्रकट होनेवाली झुर्रियों से दें, तो इन शंकुवत् ज्वालामुखीय रचनाओं को हम उसी चेहरे पर उभड़ आनेवाले मुँहासों की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं! ये मुँहासे जिस क्रम से धरती के मुखमंडल पर बिखरे और फैले हुए हैं, उसका ब्योरा निम्न प्रकार से है।

उनकी एक मुख्य लड़ी एक प्रकार की सिलसिलेवार शृंखला के रूप में अमरीकी और एशियाई दोनों बाजुओं से प्रशान्त महासागर को अपने घेरे में लिए हुए है। संसार के कतिपय सबसे पुराने, सर्वोच्च और सबसे भयंकर ज्वालामुखी (जिनमें से कई एक इस समय ठंढे पड़े हैं) इस लड़ी में पिरोये हुए है। इस ज्वालामुखी-शृंखला का क्रम अमरीकी तट की ओर उत्तर में अलास्का से आरंभ होकर, रॉकी तथा एंडीज पर्वतमालाओं के साथ-साथ बढ़ता हुआ, उक्त सागरतट के एकदम समानान्तर ठेठ चिली तक (अथवा यों कहिए कि धुर दक्षिण में टेराडेल्फ्युगो द्वीप तक) पसरता चला गया है। इस लड़ी में जाग्रत ज्वालामुखियों की संख्या बहुत कम है--वे उत्तर में केवल अलास्का प्रदेश में और दक्षिण में एंडीज पर्वतमाला के क्षेत्र ही में मिलते हैं। यह शृंखला उत्तर में एल्यूशियन द्वीप-समूह के रास्ते और दक्षिण में एन्टार्किटका महाद्वीप के इरेबस पर्वत, न्यूजीलैण्ड द्वीप-समूह, न्यूहेब्रिडीज द्वीप-पुंज, सालोमन टापू और न्यूगिनी द्वीप के सिलसिले से क्रमशः प्रशान्त महासागर के पूर्वीय तटवर्ती महान् ज्वालामुखी-क्षेत्रों की महत्वपूर्ण एशियाई लड़ी से जा मिली है।

हवाई द्वीप के 'मौना लोआ' नामक अग्निकुंड का लावा-प्रपात--यह भयावना प्रपात अग्निकुंड की दीवार पर से लावा के उबलकर बह निकलने और समीपवर्ती सागर के जल में गिरते रहने से बन गया है। यह अग्निकुंड एक जाग्रत ज्वालामुखी का क्रेटर है।

एशियाई बाजू की ज्वालामुखी-शृंखला की लड़ी का विस्तार उत्तर में कमचटका प्रायद्वीप से लेकर दक्षिण में जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों तक है। इस शृंखला में सम्मिलित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जापान-क्षेत्र तीस जाग्रत ज्वालामुखियों का केन्द्र है ! जावा के क्षेत्र में भी कोई चालीस ज्वालामुखी होंगे ! इनके अतिरिक्त इसी लड़ी में पिरोये हुए फारमोसा, फिलीपाईन और लूचू द्वीप-समूह भी ज्वालामुखियों के प्रख्यात घर हैं। इस एशियाई ज्वालामुखी-शृंखला के बारे में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह यह है कि कमचटका प्रायद्वीप के धुर उत्तरी क्षेत्र को छोड़कर महाद्वीप का मुख्य भूभाग (यथा चीन का तटवर्ती प्रान्त) ज्वालामुखियों से सर्वथा मुक्त-सा है।

प्रशान्त महासागरवर्ती इन महान् पट्टियों के अलावा, अन्य एक महत्वपूर्ण ज्वालामुखी-शृंखला मध्य-अमेरिका से पश्चिमी द्वीप-समूह की ओर बढ़ती हुई एजोर्स, केप वर्दी और कनारी द्वीपों के रास्ते अटलांटिक को पार करती है। वह भूमध्यसागर के तटप्रदेश के साथ-साथ एशिया माइनर, अरब, मध्य एशिया तथा पूर्वी अफ्रीका तक पसरती चली गई है। अफ्रीका की सुप्रसिद्ध 'रिफ्ट घाटी' इसी शृंखला का एक भाग है।

'विसुवियस', 'एटना' और 'स्ट्राम्बोली' नामक प्रसिद्ध ज्वालामुखी

जैसा कि कहा जा चुका है, धरातल के ज्वालामुखियों की कुल संख्या का एक लघु अंश ही 'जाग्रत' चोटियों की कोटि में आता है--शेष सभी प्रसुप्त हैं। इन आग उगलने-वाले पहाड़ों में सबसे प्रसिद्ध और सुपरिचित इटली के 'विसुवियस' और सिसिली के 'एटना' नामक ज्वालामुखी हैं। इनका उल्लेख भूगोल की प्रत्येक पोथी में दिया रहता है। विसुवियस की ख्याति विशेष रूप से उसके उस ऐतिहासिक उद्गार के कारण है, जिसके फलस्वरूप उन्नीस सौ वर्ष पूर्व समीपवर्ती पाम्पिआई, हरक्यूलीनियम और स्टेबि-आई नामक तीन रोमन नगर सदा के लिए राख और आग्नेय पदार्थों की मोटी तह के नीचे दब गए थे ! इस दुर्घटना का आँखों-देखा हाल प्लिनी नामक प्राचीन इतिहासकार के विवरण में मिलता है। कहते हैं, इस ज्वालामुखी की अग्निवर्षा से लगभग दो लाख मनुष्य मृत्युमुख में समा गए थे ! डेढ़ वर्ष बाद इस विध्वंस-नाटक का पुनः पुनरावर्तन होते दिखाई दिया था, जबकि विसुवियस के अन्य एक उद्गार के फलस्वरूप पास-पड़ौस के अठारह हजार प्राणी पुनः कालकवलित हुए थे ! तदनन्तर १९०६ ई० में एक और विस्फोट हुआ था। इससे इसके शंकु का ऊपरी भाग विदीर्ण हो गया था और मुखगर्त लगभग डेढ़ किलोमीटर चौड़े तथा उतने ही गहरे विवर के रूप में बदल गया था। यह कहा जा सकता है कि जितना प्रामाणिक विवरण इस ज्वालामुखी की हलचलों के बारे में प्राप्त है, उतना अन्य के बारे में सुलभ नहीं ! आज भी कई लोग अपनी जान की बाजी लगाकर इसके अध्ययन में लगे हैं। कहते हैं, मलाद्रा नामक एक साहसी अन्वेषक तो इसके अग्निमुख में उतरकर करीब तीन सौ मीटर की गहराई तक उसके अंतराल की खाक छान आया था !

विसुवियस ही की तरह उसके दो पड़ौसी--'एटना' और 'स्ट्राम्बोली'--नामक ज्वालामुखी भी प्राचीनकाल ही से पश्चिमी जगत् में जाने-पहचाने हुए हैं। 'एटना' सिसिली टापू के पूर्वीय भाग में करीब साढ़े तीन हजार मीटर ऊँची एक चोटी है। उससे निरन्तर भाप और गैसें निकलती रहती हैं। इसके उद्गारों का ताँता ईस्वी पूर्व पाँचवीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
शती से जारी है। 'स्ट्राम्बोली' सिसिली के उत्तर में इसी नाम के एक छोटे-से द्वीप पर स्थित है। यह अपने चिरप्रकाशमान् बाष्पोद्गार के कारण 'भूमध्यसागर के दीपस्तंभ' के नाम से पुकारा जाता है। इन दोनों ही ज्वालामुखियों में समय-समय पर भीषण उद्गार होने के उल्लेख इतिहास में मिलते हैं।

हवाई द्वीप के अद्भुत अग्निकुंड

भूमध्यसागरीय क्षेत्र से हटकर अब हम प्रशान्त महासागर के दोनों तटों तथा हवाई द्वीप जैसे मध्यवर्ती टापुओं के अंचल में स्थित ज्वालामुखीय हलचल के महान् केन्द्रों की ओर चलते हैं। यहाँ संसार की कतिपय सबसे अद्भुत और विकट आग्नेय चोटियों के साक्षात्कार का मौका हमें मिलता है। स्थान की कमी के कारण इस क्षेत्र के सभी ज्वाला-मुखियों का परिचय देना संभव नहीं। अतः कुछ प्रख्यात छुटफुट उदाहरणों का ही उल्लेख करके हमें संतोष कर लेना होगा।

इस सिलसिले में सबसे पहले हवाई द्वीप के 'मौना लोआ' और 'किलाऊआ' नामक विलक्षण ज्वालामुखियों के नाम हमारे सामने आते हैं। इन ज्वालामुखियों में प्रत्यक्ष रूप से गरम-गरम लावा के नियमित उद्गार और प्रवाह के दिल दहला देनेवाले दृश्य देखने को मिलते हैं। हवाई द्वीप वस्तुतः सागर के वक्षःस्थल पर उभड़े हुए ज्वालामुखियों के शीर्षभाग अथवा उनके शंकुओं की पानी के बाहर निकली हुई चोटियाँ ही हैं। इन सागरतलीय गुप्त चोटियों के शीर्षभाग पर बने मुखगर्तों ने विशिष्ट परिस्थितिवश विशाल कड़ाहों की-सी झाँकी रच रक्खी है, जिनमें पिघली हुई लावा खदबदाते देखी जा सकती है। किलाऊआ ज्वालामुखी का 'हालमाऊमाऊ' नामक अग्निकुंड ऐसा ही एक जाग्रत कड़ाहा है। इसके प्रधान गर्त का आकार चार-पाँच किलोमीटर लम्बे और लगभग डेढ़ किलोमीटर चौड़े एक विशाल अंडाकृति विवर का-सा है। सबसे अद्भुत बात यह है कि इस कड़ाहे की आकृति और लंबाई-चौड़ाई में सदैव फेरबदल होता रहता है! 'मौना लोआ' किलाऊआ से बत्तीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह ११२ किलोमीटर व्यास के धरातल पर स्थित एक ज्वालामुखी-शंकु का शीर्षभाग है, जिसकी समुद्र के पेंदे से ऊँचाई करीब दस हजार मीटर होगी (अर्थात् एवरेस्ट पर्वत से भी अधिक)! किला-ऊआ की तरह मौना लोआ के कड़ाहे में भी खदबदाती हुई लावा का दृश्य देखने को मिलता है। उद्गार के समय इस भयावने अग्निकुंड की लावा कभी-कभी क्रेटर की एक ओर की दीवार को लाँघकर खड़े कगार पर से जल-प्रपात की तरह समीपवर्ती सागर के जल में गिरने लगती है! उस समय का दृश्य अत्यंत भयावना होता है!

'माण्ट पेली' नामक ज्वालामुखी का भीषण उद्गार

ज्वालामुखियों के आधुनिक उद्गारों में पश्चिमी द्वीप-समूह के मार्टिनिक टापू पर स्थित 'माण्ट पेली' नामक ज्वालामुखी का भीषण उद्गार प्रसिद्ध है। यह १९०२ ई० में हुआ था। यह ज्वालामुखी पिछले पचास वर्षों से एकदम सुप्त पड़ा था। तब धीरे-धीरे उसमें हलचल के चिह्न प्रकट हुए। अंत में ८ मई, १९०२ ई० के दिन उसके दक्षिणी पार्श्व में एक प्रचंड विस्फोट हुआ! उसके साथ ही गैसों की एक भयावनी मेघराशि-सी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
धरती में से ऊपर उमड़ा ! यह घटाटोप बहुत-कुछ ऐसा ही था, जैसा कि परमाणु-बम के विस्फोट के समय पिछले दिनों उमड़ते देखा गया था ! देखते ही देखते इस मेघमंडल ने एक प्रलयकारी बवंडर का रूप ग्रहण कर लिया । धू-धू करता हुआ यह बवंडर एक ओर बढ़ा ! दुर्भाग्य से मार्टिनिक द्वीप की राजधानी सेंट पीयरी उसकी लपेट में आ गई ! बस, फिर क्या था ! पलक मारते ही सारा नगर धूल में मिल गया ! सभी इमारतें ढेर हो गईं ! बंदरगाह में जहाज उलट गए ! समुद्र उबल पड़ा ! सारांश यह कि कुछ ही मिनटों में न तो उस नगर का, न उसके ३० हजार निवासियों का ही नामोनिशान शेष बचा ! उसी समय १४४ किलोमीटर की दूरी पर स्थित सेंट विन्सेण्ट द्वीप की सूफ्रायर नामक ज्वालामुखीय झील एकदम उबल पड़ी और उसके भी गर्त से उसी प्रकार का एक बवंडर उमड़कर बढ़ चला । इससे लगभग डेढ़ हजार मनुष्य काल के गाल में समा गए और द्वीप पर बीस मीटर गहरी राख और धूल की पर्त जम गई !

क्राकातोआ द्वीप का महान् विस्फोट

परन्तु भयंकरता और दूरव्यापी प्रभाव की दृष्टि से, इस युग की समस्त ज्वालामुखीय हलचलों की पराकाष्ठा अगस्त १८८३ ई० में सुमात्रा के समीप सुंदा-जलडमरूमध्य में स्थित क्राकातोआ नामक टापू के प्रलयंकर विस्फोट के रूप में हुई ! इस द्वीप पर एक प्रसुप्त ज्वालामुखी विद्यमान था, जो दो शताब्दियों से ठंढा पड़ा था । तब मई १८८३ ई० में वह सहसा पुनर्जाग्रत होते जान पड़ा ! इसकी पूर्व-सूचनाएँ धरती के भीतर से उठनेवाली गंभीर गड़गड़ाहट की आवाजों तथा भूकंपों के रूप में मिल रही थी ! तोपों की गड़गड़ाहट जैसी ये आवाजें क्रमशः बत्तीस किलोमीटर की दूरी तक सुनी जाने लगीं । कुछ ही समय में टापू के ऊपर रजकणों की एक काली मेघराशि-सी छा गई, जिससे सैकड़ों किलोमीटर की दूरी तक दिन ही में रात का-सा अँधेरा फैल गया ! इधर आसपास के समुद्र का पानी इतना गरम हो चला कि ढेर की ढेर मछलियाँ मर गईं !

अगस्त के अंतिम सप्ताह में यह प्रलय-क्रीड़ा चरम सीमा पर पहुँची । क्रमशः दस-दस मिनट के अंतर से भयंकर धड़ाकों की एक विस्फोट-शृंखला का आरंभ हुआ, जिसके बाद धरती डरावने ढंग से काँप उठी ! तभी एक दानवीय शक्ति ने इस द्वीप के लगभग दो-तिहाई अंश को विस्फोटित कर एकदम मिटाकर आसमान में उड़ा दिया ! इस भीषण विस्फोट की आवाज ४८०० किलोमीटर दूर ऑस्ट्रेलिया तक सुनाई दी और उससे जो धूल उड़ी, वह आकाश में ८० किलोमीटर की ऊँचाई तक ऊपर उठ गई ! कहते हैं, २५०० किलोमीटर दूर तक के

न्यूजीलैंड के एक सुप्त गाइसर का मुखगर्त ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहाजों पर वह गिरते पाई गई ! यही नहीं, उससे जो भीषण आँधी उठी, वह धूलि के वापस धरती पर गिरने से पहले ही तीन बार पृथ्वी का चक्कर लगा गई ! इस उथल-पुथल से समुद्र हजारों किलोमीटर की दूरी तक डोल उठा और उसकी बाढ़ से जावा-सुमात्रा के तटवासी कोई ३६ हजार व्यक्ति डूब-कर मर गए ! इस भीषण विस्फोट के फलस्वरूप आसमान में रजकणों की जो बृहत् राशि दूर-दूर तक छा गई, उसका प्रभाव महीनों तक ठेठ योरप तक दिखाई दिया ! मानवीय स्मृति में ऐसा भीषण धड़ाका दूसरा कभी भी नहीं हुआ था। यह ज्वालामुखी की प्रचंड शक्ति और उसके विध्वं-सक रूप की पराकष्ठा का इस युग का एक प्रत्यक्ष उदाहरण था !

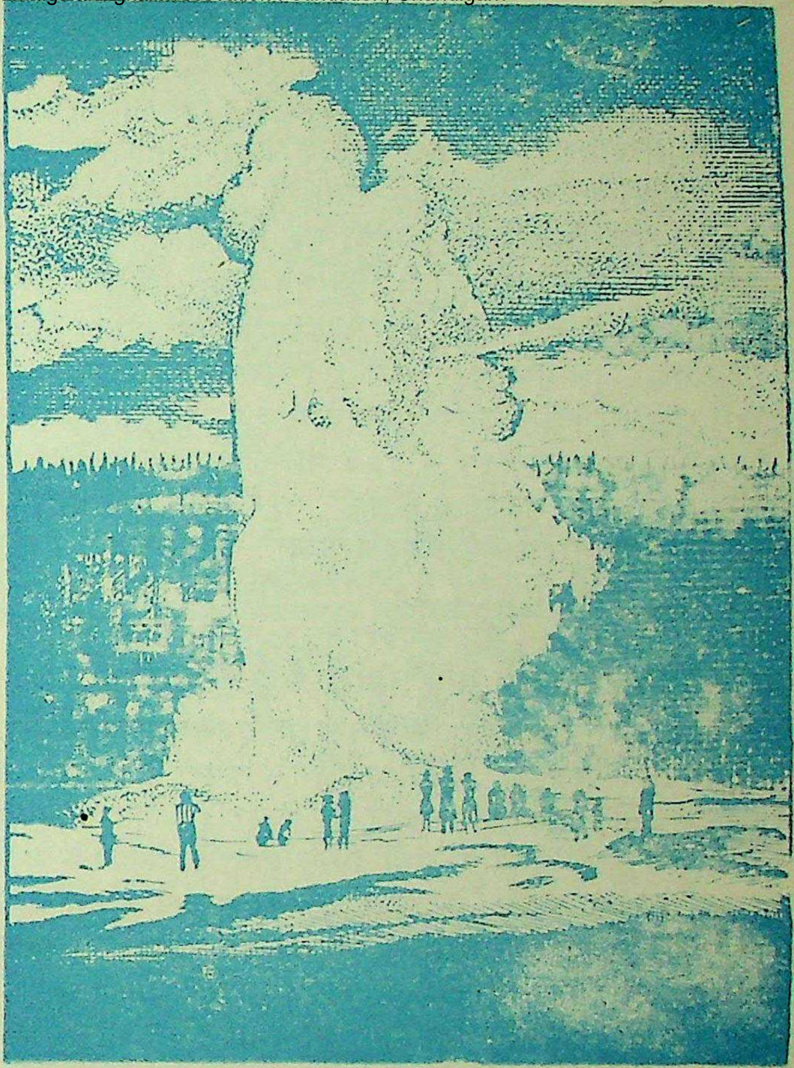

अमेरिका के येलोस्टोन पार्क का संसार-प्रसिद्ध 'ओल्ड फेदफुल गाइसर', जो नियमित रूप से घंटे सवा घंटे के अंतर से अपनी पचास मीटर ऊँची गरम पानी और भाप की फुहार छोड़ता रहता है !

गाइसर या भाप के फव्वारे

ज्वालामुखी ही की भाँति, धरती के अंतस्तल का जोश-गुबार बाहर निकालने का एक और प्राकृतिक साधन गरम पानी और भाप के उन फव्वारेनुमा अद्भुत कौतुकों के रूप में हमें देखने को मिलता है, जिन्हें अंग्रेजी में 'गाइसर' के नाम से पुकारा जाता है। ये एक प्रकार से ज्वालामुखी के ही संक्षिप्त संस्करण कहे जा सकते हैं। वैसी ही इनकी रचना होती है और वही शक्ति-सिद्धान्त इनके पीछे भी काम करता है, जो ज्वालामुखी का उत्पादक होता है। इनका भी मुखगर्त क्रेटर की-सी एक नली द्वारा भूगर्भ से संबद्ध रहता है। उस मुखगर्त के आसपास जल में घुले हुए विविध खनिज द्रव्यों की जमावट के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलस्वरूप एक लघु टीली-सी प्रायः बनी रहती है, जो कि ज्वालामुखी के शंकु का प्रतिरूप कहा जा सकता है। अंतर केवल यही होता है कि ज्वालामुखी में से जहाँ अग्नि, लावा, राख-पत्थर और जहरीली गैसों का गुबार निकला करता है, वहाँ गाइसर से केवल खनिजमिश्रित गरम जल और भाप के उद्गार निकलते हैं। फलतः ये प्राकृतिक फव्वारे उस प्रकार की प्रचण्ड विध्वंस-लीला के सर्जक नहीं होते, जैसी कि ज्वालामुखियों की करतूतों में पाई जाती है। इनकी एक विशेषता यह भी है कि इनमें से अधिकतर का उद्गार (ज्वार-भाटे की तरह) नियमित ढंग से निश्चित समय के अनुसार होता है।

गायसरों के तीन महान् क्षेत्र हैं—आइसलैण्ड, संयुक्त राज्य (अमेरिका) का 'येलोस्टोन पार्क' और न्यूजीलैण्ड का उत्तरी टापू। संसार का सबसे बड़ा गाइसर न्यूजीलैण्ड के उत्तरी द्वीप के व्हाकारेवारेवा स्थान में है। यह 'पोहुतु गाइसर' के नाम से प्रसिद्ध है और इसका फव्वारा १५० से ४५० मीटर की ऊँचाई तक आसमान में उठते पाया गया है! इसकी नली लगभग २६ मीटर लम्बी है! ऐसा दूसरा एक महान् कौतुक आइसलैण्ड का 'ग्रेट गाइसर' है। इसके फव्वारे की उठान ३२ मीटर तक की पाई गई है। इसके शंकु का व्यास करीब ४० मीटर और ऊँचाई ४ मीटर है। इसके शिखर पर २० मीटर व्यास का १॥ मीटर गहरा एक मुखगर्त बना हुआ है। इसकी नली का व्यास ३ मीटर है। यह फव्वारा प्रति चौबीस घंटों के अंतर से उफनता है।

परन्तु ख्याति की दृष्टि से दुनिया का सबसे मशहूर गाइसर संयुक्त राज्य (अमेरिका) के येलोस्टोन पार्क का 'ओल्ड फेदफुल गाइसर' है। इसे देखने प्रति वर्ष लाखों यात्री पहुँचते हैं। इस प्राकृतिक फव्वारे की फुहार ५० मीटर तक ऊँची उठती है और नियमित रूप से एक घंटे के अंतर से उसमें उफान आता है। फुहार के छूटने की पूर्व-सूचना देते हुए इस गाइसर के अन्तराल में से एक प्रकार का गरजने का-सा शब्द होता है! कहते हैं, एक फुहार में लगभग ६७ लाख लीटर पानी इस फव्वारे में ऊपर उछलता है! कुल मिलाकर 'येलोस्टोन पार्क' में कोई सौ जाग्रत गाइसर होंगे। इनमें 'जाएन्टेस' (दानवी) नामक गाइसर प्रायः दस-बीस दिन तक चुप बना रहकर तब दस-बारह घण्टे से छत्तीस घण्टे तक चालू दिखाई देता रहता है!

'धुआँरे' और 'पंक-ज्वालामुखी'

गाइसर-प्रदेशों में कई स्थानों पर धरातल में से दरारों आदि की राह से भाप और धुएँ के बादल उठते भी पाये जाते हैं, जिन्हें 'फ्यूमेरोल' या 'धुआँरे' कहते हैं। इनके अतिरिक्त बहुतेरे स्थानों में उबलते पानी के सोते और कुंड भी विद्यमान हैं। सबसे दिलचस्प हैं तप्त कीचड़ के वे अनोखे कुंड, जो 'पंक-ज्वालामुखी' के नाम से पुकारे जाते हैं। कीचड़ के इन तप्त कुंडों की रचना वस्तुतः उष्ण जलकुंडों में जल की मात्रा के कम पड़ जाने से होती है। बर्मा, बलूचिस्तान एवं न्यूजीलैण्ड में ऐसे कई पंकिल तप्तकुंड मिलते हैं। इनके मुखगर्त के आसपास मिट्टी के जमा होने से प्रायः ज्वालामुखीय शंकु की भाँति की पंकीय रचनाएँ बन जाती हैं। ये बड़ी अनोखी लगती हैं। कहीं-कहीं पर गरम जल के सोतों द्वारा पानी के साथ-साथ निकले हुए चूना आदि खनिज द्रव्यों की जमावट के फलस्वरूप एक प्रकार की सीढ़ीनुमा प्राकृतिक रचनाएँ भी बन गई हैं, जो दर्शनीय हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब धरती हिल उठती है

पृथ्वी पर होनेवाले प्राकृतिक उत्पातों में सबसे भयावना निस्संदेह 'भूकंप ही है ! इस दुर्घटना की सबसे अखरनेवाली बुराई है उसकी आकस्मिकता ! वह अपनी विध्वंसलीला की कोई पूर्व-सूचना नहीं देती ! देखते-देखते हमारे पैरोंतले की जमीन इस तरह थरथराकर काँप उठती है जैसे भँवर में पड़ जानेवाली नाव ! तब तो ऊँची-ऊँची इमारतें, यहाँ तक कि गगनचुंबी पर्वतीय चोटियाँ भी इस तरह सिर हिलाकर डोलते और टूटकर धराशायी होते दिखाई देने लगती हैं, मानो निरी कागदी रचनाएँ हों ! कहीं ऐसे खंदक बन जाते हैं, जिनमें कभी-कभी पूरे के पूरे नगर समा जाते हैं ! कहीं बीच सागर में नवीन द्वीप और पर्वत-शिखर रच जाते हैं ! नदियों का रास्ता पलट जाता है ! मिनटों में सदियों की रचनाएँ मटियामेट हो जाती हैं ! चुटकी बजाते हजारों-लाखों प्राणियों की आहुतियाँ चढ़ जाती हैं ! ऐसे प्राकृतिक उत्पात की भयावहता की कोई सीमा नहीं होती !

भूकंप के कारण

पिछले एक प्रकरण में, भूपृष्ठ की चट्टानों के विवरण में, 'स्तर-स्खलन' और 'आकुंचन' जैसी अव्यवस्थाओं का परिचय हम पा चुके हैं। 'स्तर-स्खलन' नामक अव्यवस्था तब होती है, जब कि चट्टानों की पर्तें विशिष्ट दबाव के कारण स्थानभ्रष्ट हो अपनी जगह से खिसक जाती हैं। 'आकुंचन' या 'मोड़' इस बात के सूचक होते हैं कि किसी समय चट्टानों पर अगल-बगल या ऊपर-नीचे से इस प्रकार का जोर पड़ा है कि टूटकर स्थलभ्रष्ट होने के बजाय वे मेहराबदार बन गई हैं, अर्थात् उनमें सिकुड़न पैदा हो गई है। भूपृष्ठ की इन अव्यवस्थाओं का भूकंप की उत्पत्ति से एकदम सीधा संबंध है।

कल्पना करो कि यदि तुम्हारे मकान की नींव की कोई तह किसी भारी दबाव या जोर के पड़ने से अचानक नीचे धस जाय, अगल-बगल खिसक जाय अथवा सिकुड़कर मुड़ जाय, तो क्या नतीजा होगा ? उक्त घटना से मकान में सहज ही मामूली भूकंप-सा आ जायगा ! मुमकिन है कि कम-ज्यादा गड़बड़ के अनुसार या तो वह मकान क्षण भर के लिए केवल हिलकर रह जायगा या फिर एकबारगी ही ऐसा डगमगा जायगा कि उसकी छतें ढह पड़ेंगी और ताश के घर की तरह गिरकर वह एकदम खँडहर बन जायगा ! यही बात पृथ्वी की चट्टानों की अव्यवस्थाओं के संबंध में भी लागू होती है । वे विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न करके भूपृष्ठ के ऊपरी स्तरों को समय-समय पर हिला और डगमगा दिया करती हैं । तभी भूकंप का अनुभव हमें होता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कंपन-लहरों की उत्पत्ति और गतिविधि

होता यह है कि प्राकृतिक और भौगर्भिक क्रिया-प्रक्रियाओं के फलस्वरूप जब चट्टानों पर भाँति-भाँति के दबाव और खींचतान का प्रभाव पड़ता है, तो उनके कुछ स्तरों के खिसककर या टूटकर स्थानभ्रष्ट हो जाने से ऊपर के सारे लदाव को एक आघात सहना पड़ता है । यह आघात भूपृष्ठ में स्वभावतः ही एक कंप या कंपन-लहर-सी उत्पन्न कर देता है और जब तक कि उक्त स्तर-अव्यवस्था की स्थिति में असंतुलन की वह दशा समाप्त नहीं हो जाती, तब तक ये आघात और उनसे उत्पन्न कंपन-लहरें भूपृष्ठ के अंचल में रह-रहकर लगातार उठती ही रहती हैं । भौतिक विज्ञान के नियमों के अधीन, ये कंपन-लहरें जब पृथ्वी के गोले के आन्तरिक 'तरल' पिंड में से होकर गुजरती हैं, तो विशेष प्रकार से आगे को बढ़ती हैं । वे एक विशेष केन्द्र से उठकर आसपास फैलती

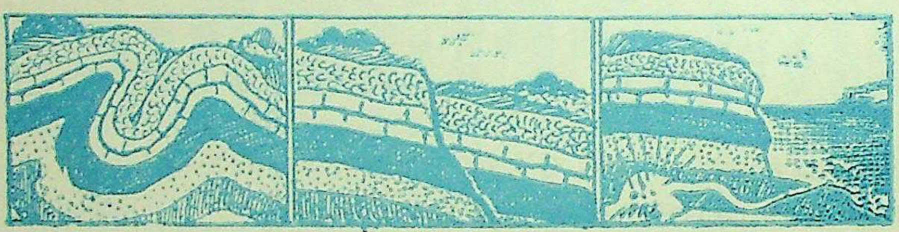

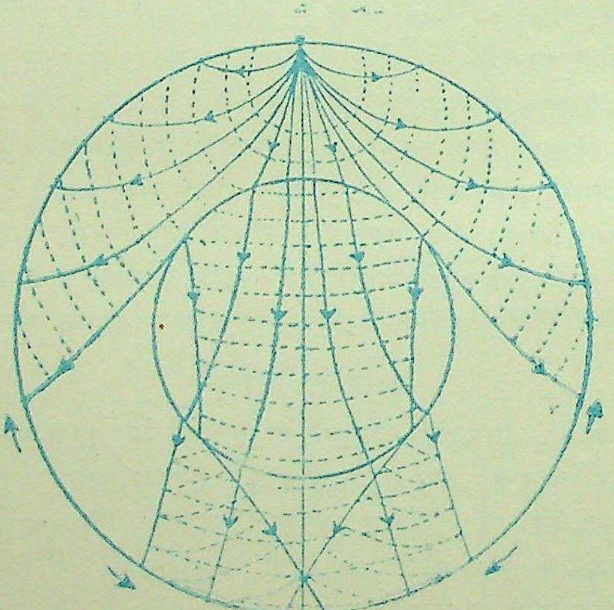

साधारणतया भूकंप की उपज धरती के शिलापर्तों के 'आकुंचन', 'स्तर-स्खलन' या भूगर्भ-स्थित किसी गर्त तक समुद्रजल के जा पहुँचने और वहाँ विस्फोट होने के फलस्वरूप हुआ करती है । चित्र के ऊपरी तीन भागों में यही तथ्य दिग्दर्शित है । दाहिनी ओर भूकंपकेन्द्र से वितरित होनेवाली कंपन-लहरों के फैलाव का ढंग दिखाया गया है । भूगर्भ के मध्य पिंड तक पहुँचने पर अधिकतर कंपन-लहरें किस प्रकार परावर्तित हो जाती हैं, इस बात पर गौर कीजिए ! भूकंप-केन्द्र का पता कंप-लेखक (सिस्मोग्राफ) नामक यंत्र पर इन कंपन-लहरों की विशिष्ट प्रतिक्रियाओं से लगाया जाता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई, अंत में धरती के कलेवर में जज्ब हो जाती हैं। पृथ्वी के पिंड में होनेवाली यह कंपन-क्रिया ही 'भूकंप' की जननी है। जब ये कंप साधारण होते हैं, तब तो धरती केवल क्षण भर के लिए थरथराकर रह जाती है। ऐसे कंपनों में से कई का पता केवल सूक्ष्मग्राही यंत्रों द्वारा ही लग पाता है। परन्तु जब कंप तीव्रतर होते हैं, तो उनके आघात से धरातल पर विध्वंस का भयावना नाटक रच जाता है! यह लीला और भी अधिक भयावनी हो उठती है, जबकि उसकी लपेट में घनी आबादीवाला कोई क्षेत्र आ जाता है! उस समय जन-धन-हानि की कोई सीमा नहीं रहती। प्रायः बड़े-बड़े नगर, बल्कि सारे के सारे जन-प्रदेश विध्वस्त और धराशायी होकर ऐसी झाँकी दरसाने लगते हैं, मानो युद्ध के समय हवाई बमबारी द्वारा उनका सत्यानाश कर दिया गया हो!

पृथ्वी के प्रधान भूकंप-क्षेत्र

यह एक अचंभे की बात है कि भूकंप के दौरे धरती के कुछ विशेष क्षेत्रों ही में अधिक आते हैं, शेष बहुतेरे भाग उनके आघातों से प्रायः मुक्त रहते हैं। इस संबंध में गौर करने पर विदित होता है कि ज्वालामुखीय हलचल के इलाकों की तरह पृथ्वी के भूकंप-क्षेत्र भी धरातल पर विशेष श्रृंखलाबद्ध पट्टियों के रूप में फैले हुए हैं। इनमें से कई पट्टियों का विस्तार तो लगभग ज्वालामुखीय क्षेत्रों की श्रृंखलाओं के ही अनुरूप है। उदाहरणार्थ, प्रशान्त महासागर को अमरीकी और एशियाई दोनों ही बाजू से दो महान् लड़ियों के रूप में घेरे हुए ज्वालामुखी-क्षेत्रों के उत्तर-दक्षिणवर्ती सिलसिलों की तरह, भूकंपीय हलचल के भी वैसे ही दो महत्वपूर्ण सिलसिले हैं। ये अमरीकी बाजू में अलास्का से चिली तक और एशियाई बाजू में कमचटका प्रायद्वीप से न्यूजीलैण्ड तक अपनी श्रृंखला फैलाये हुए हैं। यह सही है कि इन पट्टियों का दायरा हूबहू एकदम ज्वालामुखीय क्षेत्रों के साथ बँधा हुआ नहीं है। उदाहरणार्थ, उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश (ब्रिटिश कोलम्बिया, ओरेगान, दक्षिणी कैलिफोर्निया, मैक्सिको का उत्तरी तट और पनामा-क्षेत्र) भूकंपीय हलचल से सर्वथा मुक्त हैं। फिर भी मोटे तौर पर भूकंपीय और ज्वालामुखीय हलचलों की इन पट्टियों के फैलाव का रुख बहुत-कुछ मिलता है।

भूकंप-क्षेत्रीय तीसरी महान् पट्टी यूरेशिया भूखंड को मध्यवर्ती मेखला के रूप में घेरे हुए है। यह भूकंपीय पट्टी पश्चिम में स्पेन-पुर्तगाल तथा मोरक्को के भूमध्यसागरीय तटप्रदेश से

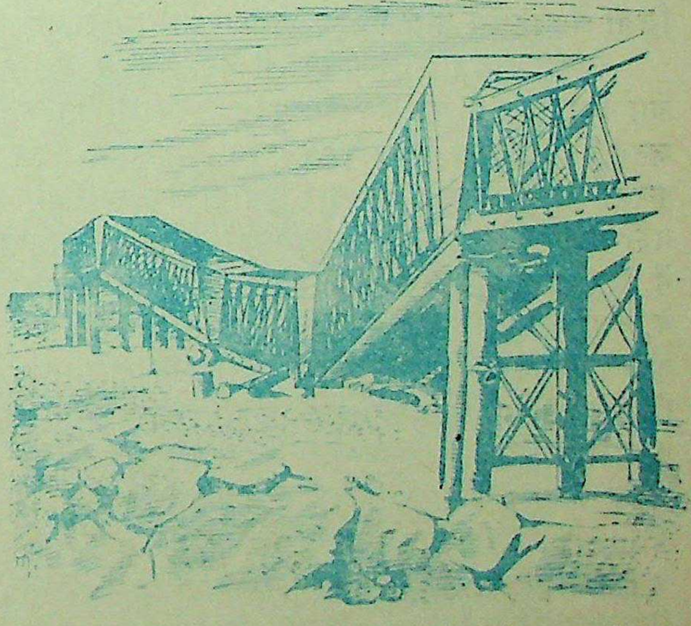

जापान के एक भूकंप के अवसर पर मानो किसी के द्वारा मरोड़ दिए जानेवाले रेल के इस पुल की दुर्दशा देखिए!

आरंभ होती है। उसने पिरेनीज पर्वतमाला, दक्षिणी फ्रान्स, इटली, आल्प्स प्रदेश, बाल्कन प्रदेश, तुर्की, एशिया माइनर, ईरान, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, भारत, मध्य एशिया, हिमालय पर्वतमाला के प्रदेश, बर्मा तथा चीन के दक्षिणी-पश्चिमी प्रान्त को अपने अंचल में समेट रक्खा है। इन महान् भूकम्प-पट्टियों के अतिरिक्त धरातल पर कुछ छुटपुट जगहें ऐसी भी हैं, जो उपर्युक्त श्रृंखलाओं से दूर और हटी हुई होने पर भी भूकंपों की हलचल से बची हुई नहीं हैं। स्थलभाग के अतिरिक्त जलमंडल के तलप्रदेश में भी भूकंपीय क्षेत्रों का जबर्दस्त बोलबाला है। इसका परिचय यदा-कदा घटित महान् समुद्री भूकंपों की लीलाओं के रूप में मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एशियाई क्षेत्र के उल्लेखनीय भूकंप

जन-धन-हानि की दृष्टि से जैसे व्यापक और प्रचण्ड भूकंप विगत कुछ वर्षों में एशिया में हुए, वैसे संसार के अन्य भागों में शायद ही कभी कहीं हुए हों। इनमें से तीन महान् हड़कंप भारतीय भूखंड में ही घटित हुए। ये थे १९३४ ई० का बिहार-भूकंप; १९३५ ई० का क्वेटा-भूकंप और १९५० ई० का असम-भूकंप। इनके अलावा एक प्रलयकारी भूचाल १९२३ ई० में जापान में और दूसरा अभी हाल ही में (अर्थात् १९६८ ई० में) ईरान में आया था। जापान के १९२३ ई० के भूकंप में टोकियो और योकोहामा नगरों को ध्वस्त-प्राय करके कोई डेढ़ लाख व्यक्तियों को यमलोक पठा दिया था! इस भारी भूकंप में लगभग पाँच लाख मकान नष्ट हो गए थे और बीस लाख व्यक्ति बेघरबार हुए थे, साथ ही लगभग छः-सात अरब रुपये की धन-हानि हुई थी! इसे आधुनिक युग का सबसे अधिक क्षतिकारी भूकंप माना जाता है। बिहार का प्रसिद्ध भूचाल, जो १५ जनवरी, १९३४ ई० के दिन आया था, हिमालय के स्तरों के धँसाव से उपजा था। इसका प्रभाव कोई बत्तीस लाख वर्ग-किलोमीटर भूमि पर पड़ा था और बिहार प्रदेश के मुंगेर, मुजफ्फरपुर आदि जिलों में लगभग बीस हजार व्यक्ति इससे मारे गए थे।

बिहार-भूकंप के मुकाबले में मई, १९३५ ई० का क्वेटा (बलूचिस्तान) का भूचाल कम व्यापक क्षेत्र का कंप था, परंतु उसकी शक्ति कहीं अधिक थी। फलतः उससे काफी जनहानि हुई थी। उधर १९५० ई० का असम-भूकंप इस दृष्टि से निराला था कि उसकी करतूत से भूकंप-क्षेत्र की सारी भौगोलिक रूपरेखा ही उलट-पलटकर क्या से क्या हो गई थी! उसके प्रभाव से बड़ी-बड़ी नदियों की प्रवाह-दिशा बदल गई थी! क्षणभर ही में, जहाँ पहाड़ थे वहाँ खड्ड दिखाई देने लगे थे और जहाँ हरे-भरे खेत लहलहाया करते थे, वहाँ लंबे-चौड़े दलदल बन गए थे! कहते हैं, इस भूकंप की शक्ति इतनी तीव्र थी कि कंप-लेखक यंत्र बेकार-से हो गए थे। यदि तीस लाख अणुबम एक साथ फूटते, तो उनसे जितनी शक्ति विस्फुटित होती, उतनी शक्ति इस हड़कंप में प्रकृति को लगाना पड़ी होगी, ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है! इन प्रसिद्ध भूकंपों के पहले भी एशिया में समय-समय पर अनेक भूचाल आते रहे हैं। उनमें हमारे अपने देश का १९३० ई० का धुबरी-भूकंप, १९०५ ई० का काँगड़ा-भूकंप, १८९७ ई० का असम-भूकंप और १८१९ ई० का कच्छ-भूकंप उल्लेखनीय है। विगत कुछ शताब्दियों में चीन, तुर्की आदि में भी कतिपय महा-विनाशकारी भूकंप आए, जिनमें अनगिनत आदमी मारे गए। ईरान के हाल के भूकंप में लगभग बीस हजार आदमी मारे गए थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिमी क्षेत्र के महान् भूकंप

विगत दो-चार शताब्दियों में पश्चिमी जगत् में होनेवाले भूकंपों में सबसे भयावनी यादगार संभवतः १७५५ ई० के लिस्बन नगर के विनाशकारी भूचाल की है ! इससे कुछ ही क्षणों में पौन लाख नरनारी कालकवलित हो गए थे ! यह महान् हड़कंप समुद्र के तल-भाग के एकाएक धँसकर खिसक जाने के फलस्वरूप पैदा हुआ था। इसकी लीला कुल सात-आठ मिनट के भीतर ही समाप्त हो गई थी। परन्तु इस अल्प अवधि ही में उससे न केवल सारा लिस्बन नगर चौपट हो गया था, बल्कि आसपास की पहाड़ियों की चोटियाँ तक मीनारों की तरह टूटकर घाटियों के खड्ड में ढुलक पड़ी थीं ! इस दुर्घटना की सबसे भयावनी बात यह थी कि ज्योंही भूकंप ने अपना काम पूरा किया, त्योंही कुछ क्षणों में लगभग १६ मीटर ऊँची एक दानवीय जलतरंग समुद्र में से उठकर वेगपूर्वक तट की ओर बढ़ चली ! उसने भूकंप की मार खाये हुए हजारों संत्रस्त नर-नारियों को बात की बात में अपनी कराल भुजाओं में समेट लिया ! यह इतना जबर्दस्त कंप था कि उसके वेग से अमेरिका तक के जलाशयों में ऊँची-ऊँची लहरें उमड़ पड़ी थीं।

लिस्बन नगर के इस स्मरणीय भूकंप के अलावा पश्चिमी जगत् में विभिन्न स्थानों में समय-समय पर और भी अनेक भूचाल आने के आलेख मिलते हैं। यथा, १६१५ ई० का मध्य इटली का भूकंप, जिसमें लगभग चार सौ नगर और गाँव नष्ट हुए और तीस हजार व्यक्ति काल के गाल में समा गए; १६०८ ई० का सिसिली का भूकंप, जिसने मेसीना एवं पड़ौस की बस्तियों को एकदम मटियामेट कर लगभग पौन लाख नर-नारियों को मृत्यु के घाट उतारा तथा एक लाख को आहत किया; १६०६ ई० का अमेरिका का सेन-फ्रान्सिस्को का भूकंप, जिसमें भूचाल द्वारा होनेवाली हानि से कहीं अधिक हानि उसके कारण भड़क उठनेवाली आग से हुई, जिससे कि कोई दो लाख व्यक्ति एकदम बेघरबार हो गए; और नेपल्स का भूकंप, जिसमें कोई सवा लाख व्यक्तियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा !

पचास वर्षों में डेढ़ लाख भूकम्पों का दौरा

माण्टेसस दे बेलोर नामक एक भूवैज्ञानिक ने कठिन परिश्रम करके एक सूचीपत्र तैयार किया है, जिसमें एक लाख साठ हजार भूकंपों का विवरण

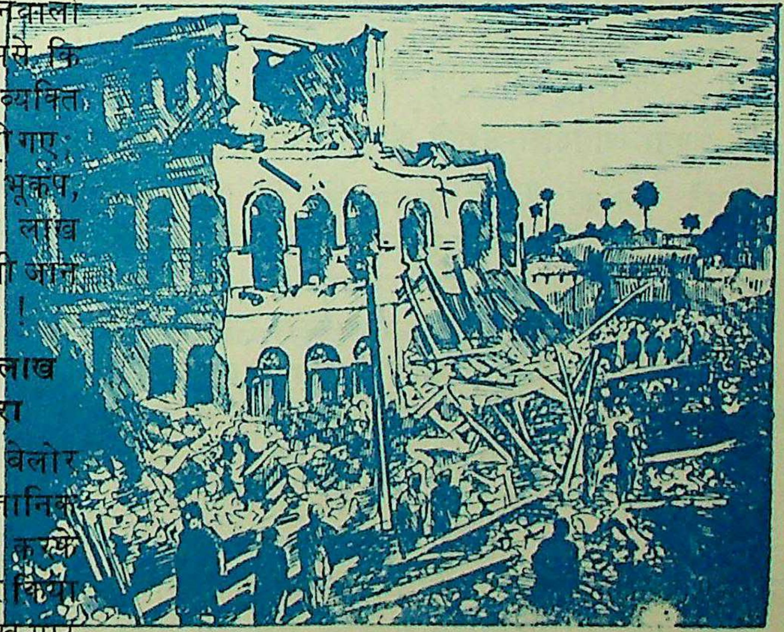

१६३४ ई० के बिहार-भूकंप द्वारा होनेवाली विनाशलीला का एक दृश्य !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। परन्तु यह केवल पचास वर्षों के भूकम्पीय धक्कों की एक सूची है! इनमें से २७,६७२ धक्के इटली में; २७,५६२ जापान में; १०,३०६ यूनान में; ८,०८१ दक्षिणी अमेरिका में; ५,५८६ मैक्सिको में; ४,४६७ संयुक्त राज्य (अमेरिका) के प्रशान्त महासागर के तटवर्ती प्रदेश में; ४,४५१ एशिया माइनर में; ४,३३१ सिसिली में; ३,८६५ स्विट्ज़रलैंड में, २,७८३ फ्रान्स में; २,७३६ मध्य अमेरिका में; २,६५६ स्पेन और पुर्तगाल में; २,५६१ पश्चिमी द्वीप-समूह में; २,३२६ जर्मनी और हालैण्ड में; २,१५५ जावा में तथा १,६२५ न्यूजीलैण्ड में आए! तदुपरान्त उत्तरोत्तर न्यूनता के साथ क्रमशः अटलांटिक द्वीपों, संयुक्त राज्य (अमेरिका) के अटलांटिक तट, भारत, स्कैंडिनेविया, रूस, आस्ट्रेलिया और टस्मानिया में आये हुए धक्कों की संख्या इस सूची में है! निश्चय ही इनमें से अधिकतर कंप इतने सूक्ष्म रहे होंगे कि केवल कम्प-लेखक यंत्र द्वारा ही उनकी जानकारी हो पाई होगी। फिर भी इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि औसतन् प्रति वर्ष कहाँ कितने भूकंप आया करते हैं। कहते हैं, जापान या इटली में तो वे इतने सामान्य हैं कि प्रति दिन तीन-चार धक्कों का औसत् पड़ जाता है!

जब केवल पचास वर्षों की अल्पावधि में ही पृथ्वी के विभिन्न भागों में आनेवाले भूकंपीय धक्कों की सूची इतनी लंबी-चौड़ी हो सकती है, तो भला विगत हजारों वर्षों में धरती ने जो अनेकों करवटें ली होंगी, उनकी संख्या का अनुमान कोई क्या करे और कौन उनके द्वारा रची गई विनाशलीलाओं का विवरण प्रस्तुत करे?

यद्यपि आरम्भ ही से मनुष्य भूकंप से भय खाता रहा है, फिर भी सच बात यह है कि वैज्ञानिक ढंग से इस दुर्घटना के कारणों पर यथोचित प्रकाश केवल पिछले कुछ सौ वर्षों में ही डाला जा सका है, जबसे कि भूविज्ञान का विधिवत् अध्ययन और अनुसंधान-कार्य होने लगा है। अन्यथा प्राचीन मनुष्य तो यही मानता रहा कि धरती के ये कंप शेषनाग, कच्छप, मेंढक, हरक्यूलीज के स्तम्भ आदि-आदि पातालीय आधारों के हिल-डुल जाने के फलस्वरूप ही होते रहते हैं!

क्या आनेवाले भूकंपों की पूर्वसूचना दी जा सकती है?

हमारे अपने देश का दक्षिणी भूभाग, जो कि 'दक्खिन का पठार' कहलाता है, भूकंपीय हलचल से सदियों से मुक्त-सा रहा है। परन्तु अभी हाल ही में इसी क्षेत्र के पश्चिमवर्ती भूभाग में 'कोयना' नामक स्थान में (जहाँ पर बाँध बाँधकर एक कृत्रिम जलाशय निर्मित किया गया है) एक विनाशकारी स्थानीय भूकंप की उपज से भूवैज्ञानिक चकरा गए हैं! इस प्रकार के आकस्मिक उत्पात को ध्यान में रखते हुए, आज के वैज्ञानिक युग में लोगों के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि क्या आनेवाले भूकंप की पूर्वसूचना देने का भी कोई उपाय है, जिससे कि लोग सचेत होकर उसके विनाशकारी प्रभाव से अपने आपको बचा सकें? इस संबंध में कोई समाधान ढूँढने के लिए भूवैज्ञानिक जीतोड़ कोशिश में लगे हैं। परन्तु अभी तक कोई कारगर उपाय हाथ नहीं लगा है, यद्यपि यह देखकर सभी चकित हैं कि विविध जानवरों और पक्षियों आदि को भूकंपों की आनेवाली विपदा का पता घंटों पहले न जाने कैसे लग जाता है, जिसका परिचय वे उस समय भाँति-भाँति की बेचैनी द्वारा दिया करते हैं!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

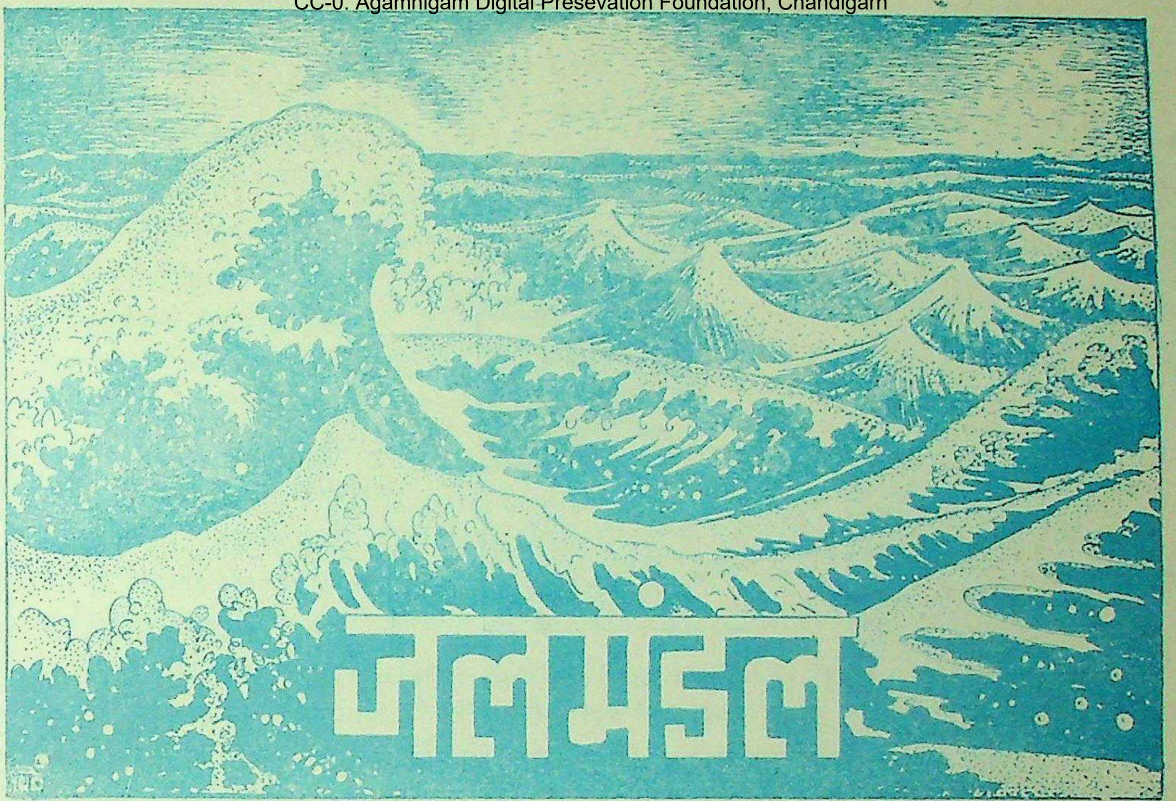

यह बताया जा चुका है कि पृथ्वी की सतह का केवल २९.२१ प्रति शत ही सूखा स्थलभाग है, शेष ७०.७९ प्रति शत अंश जल द्वारा परिप्लावित है। इस प्रकार हमारी इस लीलाभूमि के प्राङ्गण में स्थल से कहीं अधिक वस्तुत: जल का ही साम्राज्य है ! तदनुसार जल की महिमा भी अधिक है। उसी की कोख से पृथ्वी पर जीव-सृष्टि के आदि-स्रोत उपजे ! उसकी ही आदि प्रयोगशाला में ढल-ढलकर भाँति-भाँति की जलज चट्टानों के स्तर सामने आए, जिनसे भूपृष्ठ का मुखमंडल निर्मित हुआ। उसी से वायुमंडल को जल-वाष्प की निधि प्राप्त हुई, जिससे वर्षा का सूत्रपात हुआ, धरातल पर रस का संचार हुआ, हरियाली उपजी एवं जीवन पनपा ! सारांश यह कि उसी की बदौलत धरती आज की अपनी यह सुहावनी झाँकी पा सकी है––उसी से वह माता बन पाई है !

जलमंडल कितना गहरा है ?

आश्चर्य है कि ऊपरी सतह पर प्रायः पग-पग नाप लिए जाने पर भी, जलमंडल का अन्तराल अब भी एक महान् रहस्यलोक बना हुआ है ! वह कितना गहरा है ? उसके तले पर किस प्रकार की झाँकी निखरी है ? कैसे-कैसे डरावने अंधकूप और भयानक खंदक उसके अंतराल में मुँह बाए पसरे हुए हैं ? कैसी-कैसी गुप्त गिरिशृंखलाएँ वहाँ फैली हैं ? कौन-कौन-सी धातुएँ और रत्न-जवाहरातों की राशियाँ उसके खजाने में भरी पड़ी हैं ? किस प्रकार के पेड़-पौधे और वनस्पति उसके अदृष्ट बगीचों में पनपे हुए हैं ? और उसके उस घोर अंधकारपूर्ण महागर्त में, जहाँ पर सूर्य की किरणें कभी भी नहीं पहुँच पातीं,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

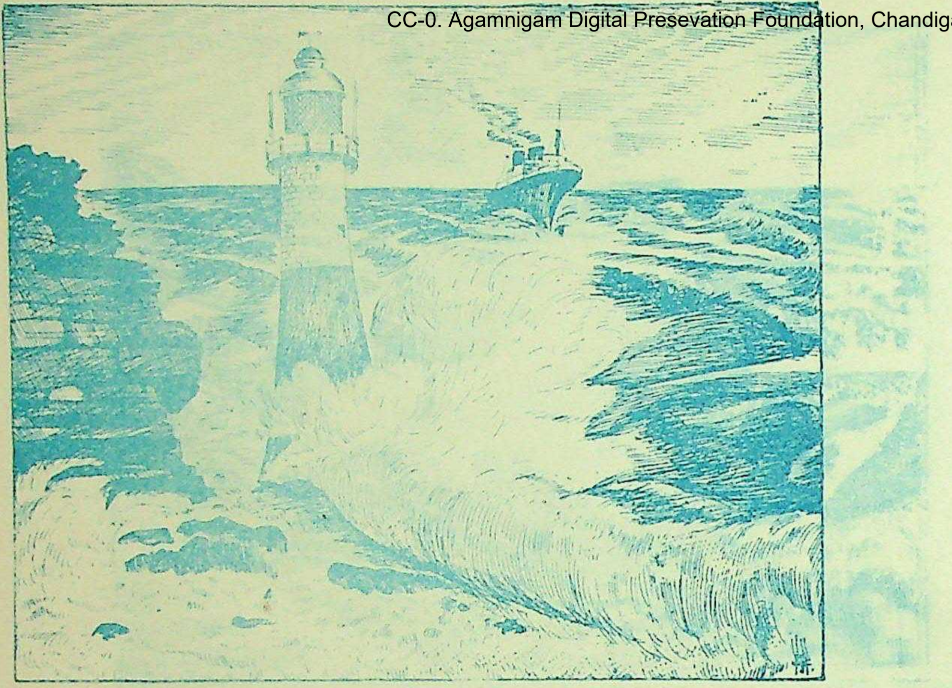

महासागर की एक झांकी––तटवर्ती स्थलभागों के साथ निरंतर जूझते रहनेवाला पृथ्वी का अगाध जलमंडल वस्तुतः उसका सबसे बड़ा रहस्यलोक है।

जीव-सृष्टि का कौन-सा युग इस समय प्रवर्तित है? ये प्रश्न वैज्ञानिकों को लगातार हक्का-बक्का बनाये हुए हैं!

सबसे पहले उसकी गहराई ही को लो! तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि पृथ्वी का स्थलभाग जितना ऊँचा है, जलभाग उससे कहीं अधिक गहरा है! इसका कुछ अनुमान इस रोचक कल्पना द्वारा किया जा सकता है कि यदि धरातल का सर्वोच्च शिखर गौरीशंकर (एवरेस्ट) उखाड़कर जलमंडल के किसी पातालस्पर्शी दह में डुबो दिया जाय, तो वह न केवल उसमें पूरा का पूरा समा जायगा, बल्कि उसके सिर पर लगभग डेढ़ किलोमीटर गहरा पानी फिर भी शेष बचा रह जायगा! ऐसे कितने ही पाताली गर्त प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में पाए गए हैं। इनमें से कुछ के नाम ये हैं––'मेरियाना खंदक' (गहराई १०,८६३ मीटर), 'मिन्दानाओ दह' (गहराई १०,७६० मीटर), 'फिलिपाइन खंदक' (गहराई १०,५३६ मीटर), 'स्वायर दह' (गहराई १०,४६५ मीटर) और 'जापान खंदक' (गहराई १०,४६४ मीटर)! यह बात ध्यान में रखने की है कि स्थलमंडल की सर्वोच्च चोटियों की तरह जलमंडल की महान् गहराइयाँ भी एक सीमित और संकुचित क्षेत्र में ही पाई जाती हैं, अर्थात् उनका दायरा अधिक विस्तृत नहीं है। उदाहरणार्थ, सबसे गहरे जलक्षेत्र––प्रशान्त महासागर––का केवल दो सौवाँ अंश ही सात हजार मीटर से अधिक गहरा पाया गया है और उसके तीन सवा तीन हजार मीटर तक गहरे क्षेत्र का भी फैलाव उसके कुल विस्तार के चतुर्थांश से ज्यादा नहीं है! फिर भी स्थलभाग की तुलना में जलमंडल की औसत गहराई का आँक बहुत बढ़ा-चढ़ा है––वह है चार हजार मीटर के लगभग, जबकि स्थल की औसत ऊँचाई प्रायः साढ़े सात सौ मीटर से अधिक नहीं आँकी जा सकती! नाविकों की भाषा में सागर की गहराई का नाप 'फादम' है। एक फादम १.८२ मीटर के बराबर होता है। अगले पृष्ठ पर जलमंडल का एक मानचित्र प्रदर्शित है, जिसमें फादमों और किलोमीटरों में उसकी गहराइयाँ सूचित हैं।

सागर में कुल कितना पानी है?

अब कई करोड़घन किलोमीटर के प्रसार में फैले हुए वरुणदेव के इस भंडार में संचित पानी की कुल मात्रा के संबंध में अनुमानित आँकड़ों पर भी गौर करो! वह है पचास करोड़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घनकिलोमीटर के लगभग का आंक ! इस समूची जलराशि का यदि बर्फ का एक गोला बनाया जा सके, तो उसका व्यास शायद १,३६० किलोमीटर होगा ! कहते हैं, पृथ्वी के इस जलभंडार में घुले हुए कुल नमक की ही मात्रा, प्रति घनकिलोमीटर सोलह करोड़ टन के हिसाब से लगभग ४८०,०००,०००,०००,०००,००० टन होगी ! और तारीफ की बात तो यह है कि इस लवण-भंडार में निरंतर वृद्धि ही हो रही है, उसके घटने का कोई सवाल नहीं उठता ! कारण, प्रति वर्ष नदियाँ कोई पंद्रह करोड़ टन नमक भूभाग से धो-धोकर लगातार उसमें मिलाये चली जा रही हैं ! इसी प्रकार, यद्यपि प्रति वर्ष करीब सवा लाख घनकिलोमीटर पानी भाप बनकर बादलों के रूप में आसमान में उड़ जाया करता है, तथापि इस भंडार की जलराशि के परिमाण में विशेष कमी पड़ते नहीं दिखाई देती ! कारण, अधिकांश जल वर्षा एवं नदियों के प्रवाह द्वारा पुनः वापस आकर समुद्र में मिल जाया करता है !

गहराई का असाधारण दबाव

आओ, अब सागर की इस रहस्यमयी दुनिया के भीतर पायी जानेवाली दबाव की असाधारण परिस्थितियों से भी तुम्हें परिचित करा दें ! कहते हैं, ज्यों-ज्यों गहराई बढ़ती गई है, त्यों-त्यों समुद्रजल के दबाव की मात्रा भी उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई है । यहाँ तक कि केवल डेढ़ किलोमीटर की गहराई पर उसका जोर इतना है कि यदि बिना सशक्त रक्षाकवच पहने कोई व्यक्ति वहाँ जा पहुँचे, तो उसका बदन एकदम हवा निकले हुए गुब्बारे की तरह पिचक जायगा ! इस दबाव का मान वैज्ञानिकों ने प्रति १.६ किलोमीटर की गहराई पर प्रति वर्ग-सेंटीमीटर १७५ किलोग्राम के लगभग निश्चित किया है ! तदनुसार ठेठ तले

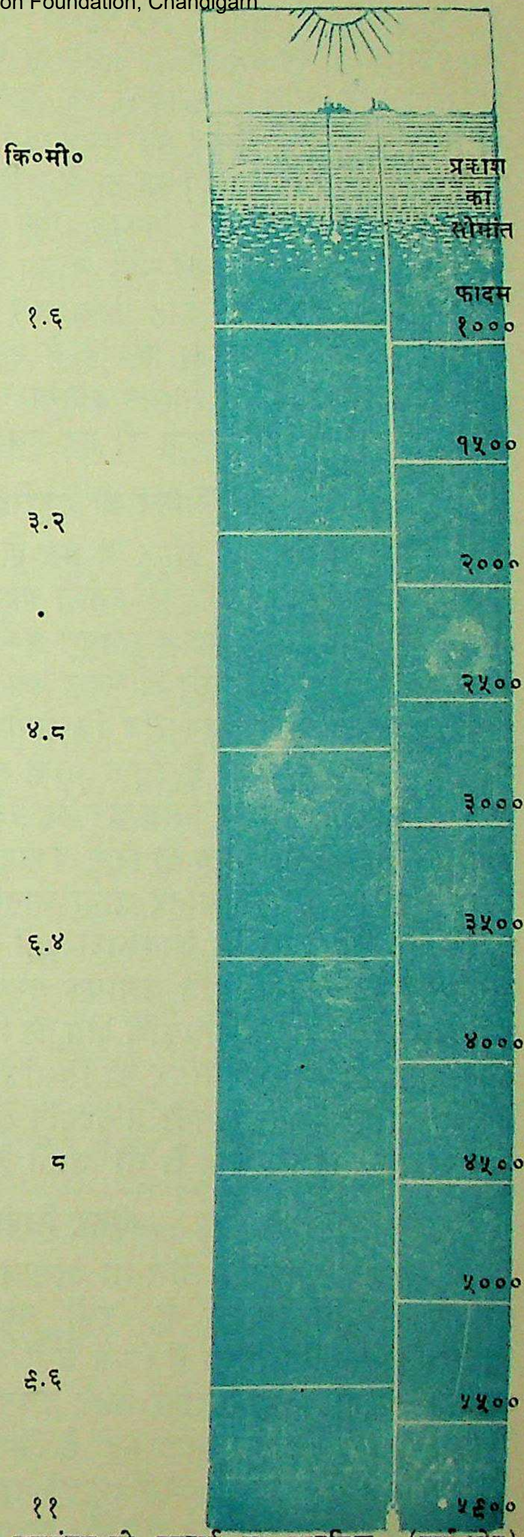

जलमंडल की गहराई का मानचित्र—(बाईं ओर) किलोमीटरों में; (दाहिनी ओर) फादमों में ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर की ग्यारह किलोमीटर की गहराई पर उसका और क्या होगा, इसका अंदाज करो ! वह होगा प्रति वर्ग-सेंटीमीटर उतना ही दबाव जितना मनुष्य-शरीर के लिहाज से लोहे से लदी हुई बीस रेलगाड़ियों के एकाएक ऊपर टूट पड़ने से अनुभव किया जानेवाला चाप होगा ! दबाव की इन विषम परिस्थितियों के कारण ही साधारण रक्षाकवच पहने कोई भी पनडुब्बा सौ मीटर से अधिक नीचे उतरने का साहस नहीं कर पाता। केवल डा० बीब और प्रो० पिकार्ड जैसे कुछ अदम्य साहसी ही विशेष प्रकार के यंत्र-सज्जित धातुनिर्मित मजबूत गोले में बंद होकर कुछ हजार मीटर की गहराई तक सागर में डुबकी लगाने का चमत्कार दिखा सके हैं ! डॉ० बीब तो लगभग एक किलोमीटर तक ही नीचे उतर पाये, परन्तु पिकार्ड ने उनके बाद लगभग चार किलोमीटर नीचे तक की खाक छान ली ! परन्तु लगभग दस-ग्यारह किलोमीटर तक गहरे वरुणदेव के साम्राज्य का विस्तार देखते हुए मनुष्य की यह डुबकी अभी कितनी नगण्य प्रतीत होती है !

सागर की गहराई कैसे नापी जाती है ?

तुम कहोगे कि जब सागर के जल के दबाव की मात्रा इस दर्जे तक बढ़ी-चढ़ी हुई है, तो फिर हजारों मीटर तक की उसकी गहराई की नाप भला किस प्रकार ली जा सकी होगी ? निस्संदेह, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। रस्सी में भारी लंगर बाँधकर उसे पानी में उतारने एवं वापस रस्सी खींचकर उसकी नाप द्वारा किसी गहराई का अनुमान लगाने के पुराने तरीके से तो चार-पाँच किलोमीटर से अधिक गहरे भागों की थाह पाना संभव नहीं था ! कारण, कहाँ से इतना भारी लंगर जुटाया जाता, जो दबाव की ऊपर उल्लिखित शक्तियों पर विजय प्राप्त कर ठेठ पेंदे तक पहुँच पाता ? और यदि ऐसा भारी लंगर कदाचित् जुटाया भी जाता तो किस प्रकार समुद्र में जहाज पर से वह नीचे उतारा जाता एवं क्योंकर खींचकर वापस बाहर लाया जाता ? इन्हीं अड़चनों के कारण इस शताब्दी के आरंभ तक सागरतल की जानकारी नहीं के बराबर रही ! तब १९२० ई० में, गहराई नापने की एक अनूठी विधि अचानक मनुष्य के हाथ लग गई ! उसके फलस्वरूप कुछ ही वर्षों में सागरतल के अधिकांश क्षेत्र की विधिवत् पैमाइश कर डाली गई ! इस नए तरीके के अनुसार, रस्सी और लंगर को तिलांजलि देकर, यंत्रों द्वारा जल में ध्वनि-तरंगें प्रसारित की जाती हैं और उनकी प्रतिध्वनि के वापस लौटकर सुनाई पड़ने के समय की सूक्ष्म नाप द्वारा सागर की थाह ले ली जाती है !

भीतर छिपी हुई गिरिश्रृंखलाएँ

जिस प्रकार किसी झील या तालाब का तलभाग उसके आसपास के भूभाग का ही क्रमबद्ध सिलसिला होता है, उसी प्रकार सागर का तलप्रदेश भी तटवर्ती स्थलभाग का ही विस्तृत सिलसिला है। वह उसी प्रकार की गिरिश्रृंखलाओं, घाटियों, उपत्यकाओं, खाइयों, खंदकों तथा मैदानों आदि रचनाओं से भरपूर है, जैसी कि सूखे स्थलभाग पर दिखाई देती हैं। अंतर केवल यही है कि ये सब रचनाएँ जल से ढकी हुई हैं। इसी कारण वे हमारी दृष्टि से छिपी हुई हैं। जहाँ-जहाँ ये रचनाएँ पानी की सतह से ऊपर उभर आई हैं, वहीं हमें द्वीपों के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ, सुप्रसिद्ध 'हवाई द्वीप' प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में भीतर ही भीतर पसरी हुई लगभग २,५०० किलोमीटर लंबी एक समुद्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
गिरिश्रृंखला का ही अंश है! इस द्वीप-समूह का 'मौना लोआ' नामक ज्वालामुखी इस लिहाज से पृथ्वी का सबसे ऊँचा गिरिशिखर माना जा सकता है कि यद्यपि पानी से बाहर उसकी ऊँचाई केवल ४,२११ मीटर है, परन्तु पानी के भीतर ठेठ तले तक की गहराई सहित उसका नाप लगभग ६,४४८ मीटर है! जलमंडल के भीतर पसरी हुई गिरिमालाओं में संभवतः मध्य अटलांटिक को चीरकर निकली हुई एक उत्तर-दक्षिणवर्ती समुद्रगर्भीय गिरिश्रृंखला है। वह पानी की सतह से लगभग ३,००० मीटर नीची है, फिर भी लंबाई में कम से कम १६,००० किलोमीटर और चौड़ाई में ८०० किलोमीटर तक वह फैली है! इस महान् श्रृंखला के जो छुटपुट शिखर पानी से बाहर अपना मस्तक उठाये देख पड़ते हैं, उन्हें ही 'एसेंशन द्वीप', 'सेंट पॉल की चट्टानों के द्वीप' और 'अजोर द्वीप-समूह' के नाम से हम पुकारते हैं! इनमें सर्वोच्च शिखर अजोर टापू का 'माउंट पिको' है। यह समुद्र की सतह के ऊपर तो केवल २,३२० मीटर ऊँचा है, परंतु पानी के भीतर उसका लगभग छः हजार मीटर गहरा अंश छिपा हुआ है!

इन समुद्री गिरिमालाओं की अनेक शाखा-प्रशाखाएँ स्थलीय पर्वत-श्रेणियों के सिलसिलों की तरह ही पानी के भीतर ही भीतर बढ़ती चली गई हैं। महाद्वीपों के समीपवर्ती द्वीप तटवर्ती भूभाग से इसी प्रकार के सिलसिलों से भीतर ही भीतर जुड़े हुए हैं। उदाहरणार्थ, मैडेगास्कर द्वीप अफ्रीका के मुख्य भूभाग से पानी की सतह से लगभग तीन हजार मीटर नीचे पसरी हुई एक गिरिरज्जु द्वारा संलग्न है। इसी तरह उत्तरी अटलाण्टिक क्षेत्र में एक गुप्त गिरिश्रृंखला पानी की सतह से चार सौ मीटर नीचे स्कॉटलैण्ड, आइसलैण्ड और ग्रीनलैण्ड के भूभागों को एक ही सिलसिले में परस्पर जोड़े हुए है। इधर हिन्द महासागर के क्षेत्र में सुमात्रा द्वीप के पश्चिम और जावा के दक्षिण में ऐसी कुछ समुद्री गिरिमालाएँ हैं, जो समीपस्थ द्वीपश्रृंखला के एकदम समानान्तर फैली हैं। इन समानान्तर श्रेणियों के बीच की घाटियाँ पाँच-छः हजार मीटर तक गहरी नापी गई हैं!

जलमंडल की अदृष्ट रचनाओं में सबसे अद्भुत हैं चपटे शिखरवाले वे पठारनुमा पहाड़, जो आरी से काट लेने के बाद बचे रहनेवाले वृक्ष के ठूँठ की भाँति पानी की ऊपरी सतह से एक या डेढ़ कि० मी० नीचे सैकड़ों की संख्या में प्रशान्त महासागर में पाए गए हैं! वैज्ञानिकों ने इन्हें ठंढे पड़े हुए ज्वालामुखी-शिखर माना है। ये किसी समय धँसकर पानी के नीचे बैठ गए हैं और जल की क्रिया-प्रक्रिया द्वारा कट-छँटकर उनकी चोटियाँ वृक्ष के ठूँठ के शीर्षभाग की तरह सपाट हो गई हैं! भूविज्ञान की भाषा में इन्हें 'गूयॉट' कहा जाता है।

सागरतल का मानचित्र

मोटे तौर पर, सागरतल गहराई के आधार पर तीन महाविभागों या महाक्षेत्रों में बाँटा जा सकता है—१. महाद्वीपीय ढाल (जो सीढ़ी-उतार क्रम से गहराई की ओर बढ़ते चला गया छिछले पानी का तटवर्ती प्रदेश है); २. महाद्वीपीय कगार या ढाल की दीवार (जो सागर की अगाध गहराई और तटवर्ती छिछले क्षेत्रों के बीच का संधिस्थल है); और ३. महासागरीय दह (जो जलमंडल का गहरा तलप्रदेश है)!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तटवर्ती समुद्री क्षेत्र ६० से २०० मीटर तक गहरे पानी के छिछले इलाके के रूप में फैला है। केवल कहीं-कहीं ही ऐसे स्थल हैं, जहाँ पर तट के समीप ही गहराई पाताल-स्पर्शी पायी जाती हो। महाद्वीपीय ढाल का यह क्षेत्र तट से प्रायः बीस-पच्चीस से लेकर दो-ढाई सौ कि० मी० तक चौड़ी एक पट्टी के रूप में स्थलमंडल के मुख्य भूभाग के समीप व्याप्त है। इसका सबसे महत्वपूर्ण विस्तार एशिया के दक्षिणी तट के आसपास है। इस भाग का क्षेत्रफल सोलह लाख वर्गकिलोमीटर के लगभग आँका जाता है। छिछले पानी का यह इलाका इसलिए अधिक महत्व रखता है कि मछलियों के पनपने के लिए यह एक आदर्श क्षेत्र है।

इन सीढ़ी-उतार ढालों के बाद सागर का तल एक प्रकार के कटावदार कगार का रूप ग्रहण करके एकबारगी ही लगभग तीन से छः हजार मीटर तक की गहराई पर जा पहुँचता है। कहते हैं, संधिस्थलीय कगार-क्षेत्र की चौड़ाई कहीं-कहीं डेढ़ सौ कि० मी० तक फैली हुई पाई गई है और कहीं-कहीं ऐसा भी देखने को मिलता है कि ढाल की कोर पर से ही एकाएक लगभग ३,००० मीटर की गहराई का महागर्त आरंभ हो गया है! इन कगारों में बीच-बीच में सैकड़ों किलोमीटर लंबे-चौड़े ऐसे खंदक पाये गये हैं, जिनके मुकाबले में हमारे स्थलभाग की नदियों की घाटियों की चौड़ान तुच्छ प्रतीत होती है!

समुद्रजल का ताप और रंग

तुम्हें यह जानकर कौतूहल होगा कि सागर के महागर्त में जो जलराशि संचित है, उसके भाग्य में एक निश्चित गहराई के बाद सूर्य की रोशनी का दर्शन होना नहीं बदा है––वह चिरकाल से अंधकार में ही लिप्त रही है और सदैव वैसी ही रहेगी! कारण, केवल एक-डेढ़ किलोमीटर की गहराई पर ही समुद्रजल में सूर्य की रोशनी के प्रवेश का आखिरी सीमान्त आ जाता है! इससे आगे बढ़ने पर घोर अंधकार का ही साम्राज्य मिलता है। बीब और पिकार्ड जैसे अन्वेषकों ने उस गहराई पर कतिपय ऐसे जलजंतुओं की विद्यमानता की सूचनाएँ दी हैं, जो अपने शरीर से भाँति-भाँति की रंगबिरंगी रोशनियाँ चमकाकर अंधकार की उस दुनिया को जब-तब चमचमाया करते हैं! ताप के संबंध में भी वरुणदेव के इस अंधकारपूर्ण साम्राज्य में ज्यों-ज्यों अधिकाधिक गहरे चला जाय, त्यों-त्यों घोर शीत का ही बोलबाला मिलने की संभावना है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार पाँच-छः किलोमीटर की गहराई तक पहुँचते-पहुँचते ही समुद्रजल का ताप हिमांक से कुछ ही अधिक रह जाना चाहिए! वैसे, सागर की ऊपरी सतह पर भी भिन्न-भिन्न प्रदेशों में ताप के विभिन्न आँकड़े हमें मिलते हैं। उदाहरणार्थ, विषुवत् रेखा पर समुद्रजल का औसत ताप लगभग २६° सें० है। उधर ध्रुवप्रदेशों में वह प्रायः हिमांक को छूता रहता है। जलमंडल का उष्णतम भाग ईरान की खाड़ी है। वहाँ का ताप लगभग ३६° सें० तक नापा गया है!

ताप संबंधी इन विषमताओं के कारण ही जलमंडल की ऊपरी सतह पर विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार की झाँकियाँ देखने को मिलती हैं। उदाहरणार्थ, भूमध्यरेखा के आसपास के उष्ण प्रदेश में प्रायः भाप के रूप में निरन्तर ऊपर उठते हुए बादलों के घटाटोप एवं बारहों महीने वर्षा के दौरदौरे का ही नजारा देखने को मिलता है! उधर ध्रुवों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के आसपास के इलाकों में घोर शीत के कारण समुद्र मानो समुद्र ही नहीं जान पड़ता-- वहाँ चिरन्तन हिम का साम्राज्य देख पड़ता है ! वहाँ वर्षा के बजाय तुषारपात का बोल-बाला छाया रहता और बड़े-बड़े हिमखंडों को गोदी में लिये हुए हिमानियाँ (या बर्फ की नदियाँ) मंथर गति से सरकती रहती हैं । ताप में किंचित् वृद्धि होने पर इन हिमक्षेत्रों की बर्फ जब पिघलती है, तो सागर के वक्षःस्थल को ढाँपनेवाली हिम की चादर फट-सी जाती है । उस समय विलग हो जानेवाली बर्फ की शिलाएँ स्वतंत्र रूप से पानी पर तैरती हुई अपनी जगह से खिसकने लगती हैं । ये हिमखंड कभी-कभी विशाल भूधरों के रूप में तैरते हुए सैकड़ों-हजारों किलोमीटर की दूरी तक चले जाते हैं । अंग्रेजी में इन्हें 'आइसबर्ग' कहते हैं । ये जहाजों के लिए बड़े खतरनाक होते हैं ।

समुद्र के पानी का रंग भी एक अचंभा-सा हमारे मन में पैदा करता है ! कारण, वह सब जगह एक-सा नहीं है । वह कहीं तो एकदम नीला या हरा और कहीं आसमानी, भूरा या काला भी देखने को मिलता है ! विशुद्ध गहरे नीले वर्ण के सागर की झाँकी उत्तरी अटलांटिक महासागर, सारगोसा समुद्र एवं पैसिफिक तथा हिन्द महासागरों के उत्तरी प्रदेशों में देखने को मिलती है । उधर उत्तरी समुद्र के क्षेत्र में पानी का रंग प्रायः शुद्ध हरा होता है ! ध्रुव-प्रदेशों में वह विशेष रूप से दर्शनीय होता है । सागरजल के रंग की ये विभिन्नताएँ विभिन्न क्षेत्रों में उसके ऊपर छाये हुए आसमान की परिस्थितियों और

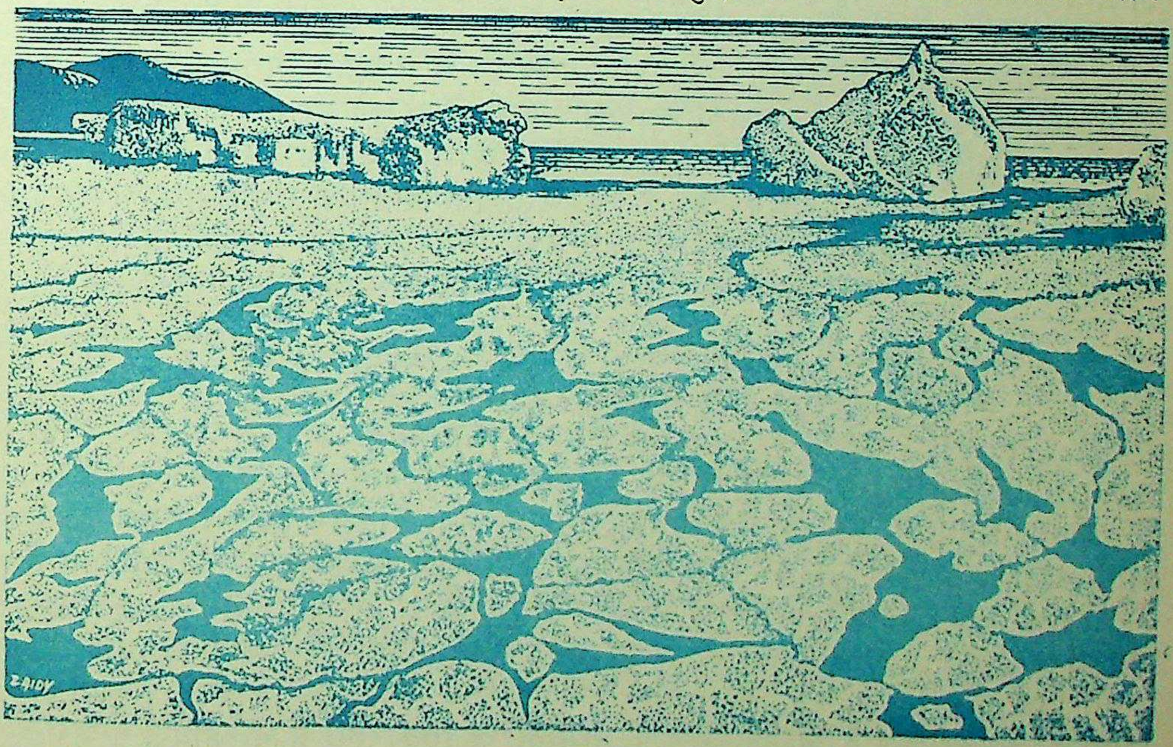

ध्रुवप्रदेशों में सागर एक विशाल हिमक्षेत्र का रूप लिये हुए है । वहाँ ताप बढ़ने पर जब ऊपर छायी हुई बर्फ की चादर पिघलकर फटने लगती है, तो शिलाखंडों के बीच की दरारों में से नीचे भरा हुआ हरे रंग का पानी झलक उठता है ! चित्र में इन शिलाखंडों के अतिरिक्त वे 'हिमखंड' भी दिखाई दे रहे हैं, जोकि तैरते हुए हजारों किलोमीटर की दूरी तक निकल जाया करते हैं ।

समुद्रजल में घुले हुए खनिज द्रव्यों की मात्रा आदि से संबंधित है। रंग के साथ जल की पारदर्शिता का भी घना संबंध है। नीलवर्ण का पानी सबसे अधिक पारदर्शी होता है। सबसे अधिक पारदर्शिता सारगोसा समुद्र में पाई गई है। वहाँ पर लगभग दो मीटर व्यास की एक थाली सत्तर मीटर की गहराई तक नंगी आँखों द्वारा देखी गई थी !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महासागर जलभंडार ही नहीं, रत्नभंडार भी है !

करोड़ों वर्षों से चिरन्तन अन्धकार, घोर शीत और निपट नीरवता के वातावरण में प्रसुप्त धरती के रहस्यमय जलभंडार का तलभाग कैसा है और किन-किन तत्त्वों से निर्मित है, इस संबंध में वैज्ञानिकों ने कुछ अटकलें लगाई हैं। उनका कहना है कि सागर की फर्श किसी कृत्रिम जलाशय की फर्श जैसी एकदम समतल नहीं है। वह एक उबड़खाबड़ रचना है, जिस पर तलछटी पदार्थों की अलग-अलग मुटाई या गहराई की पर्त पर पर्त छाई हुई है। कहते हैं, जलमंडल के मूल रसातलीय बेसाल्टी तले पर करोड़ों-अरबों वर्षों की निरन्तर प्राकृतिक प्रक्रिया के फलस्वरूप जलज तलछटी पर्तों की जो तहें जमा हो चुकी हैं, उनकी गहराई पौन किलोमीटर से कम नहीं है। यह स्तर प्रति ढाई हजार वर्षों में लगभग पाँच-छः सेंटीमीटर ऊँचा उठा होगा, ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है। महासागरीय ढाल और नदियों के मुहानों के क्षेत्र में जो तलछटी द्रव्य जमा है, उसमें बालू, मिट्टी आदि के सामान्य मोटे कणों की बहुलता है। यह नदियों द्वारा बहाकर लाया गया पदार्थ है। इसके विपरीत अधिक गहराई पर जो जमावट पाई जाती है, उसमें महीन कणोंवाली समुद्री लाल अथवा गुलाबी, पीले, हरे, भूरे, लाल और सफेद रंग के महासागरीय कर्दम या पंक का ही बोलबाला पाया जाता है। इसकी उपज खड़िया मिट्टी या चूने की पर्तों की भाँति सागर-जल के भीतर ही भीतर कोटि-कोटि सूक्ष्म जीवों द्वारा विसर्जित जैव पदार्थों के अवशेषों के अंबार लगते रहने के फलस्वरूप हुई है। इसमें महासागरीय ज्वालामुखियों द्वारा उगले गए लावा आदि आग्नेय पदार्थों के कण तथा लौह, मैंगनीज आदि धातुओं के अंश भी मिश्रित हैं। समय-समय पर बरसे हुए उल्कापिंडों के खंड भी इसमें सम्मिलित हैं।

तुम्हें शायद मालूम हो कि सागर को हमारे यहाँ केवल 'उदधि', 'जलनिधि', 'अंबुधि', आदि नामों ही से नहीं पुकारा गया है, बल्कि 'रत्नाकर' कहकर भी उसे अभिहित किया गया है। यह क्यों ? इसका कारण यह है कि वह भाँति-भाँति की मूल्यवान् वस्तुओं का महान् भंडार है। तुम्हें अपने देश की वह पुराणप्रसिद्ध कथा ज्ञात होगी ही कि किस प्रकार पुराकाल में देवताओं और असुरों ने मिलकर समुद्र को मथा था और उसमें से अमृत, लक्ष्मी आदि रत्न प्राप्त किए थे ! वह समुद्र-मंथन का कार्य आज भी समाप्त नहीं हो पाया है — आज भी मनुष्य विज्ञान की मथानी से इस महान् रत्नभंडार से भाँति-भाँति के मूल्यवान् पदार्थों को प्राप्त करने में संलग्न है। इनमें मोती, मूँगा, सुवर्ण, चाँदी आदि के साथ-साथ मैग्नेशियम, ब्रोमाइड, नमक, पैट्रोलियम (खनिज तैल) आदि उन उपयोगी रासायनिक द्रव्यों का भी समावेश है, जो कि आज की सभ्यता के लिए रत्नों से भी अधिक मूल्यवान् हैं। जलमंडल का यह रहस्यपूर्ण खजाना कितना अगाध है, इसका अंदाज तो केवल इसी अनुमान द्वारा लगाया जा सकता है कि यदि इसकी केवल दो सौ पचासवें अंश की सामग्री हमारे हाथ लग सके, तो उसमें से हमें लगभग तीस लाख टन सोना, साढ़े नौ करोड़ टन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
चाँदी, साठ लाख टन मैग्नेशियम और साढ़े तीन करोड़ टन गंधक का तेजाब मिल सकेगा ! इसके अतिरिक्त नमक और मछलियों जैसी खाद्य वस्तुओं की जो वृहत् राशि उसमें संचित है, उसका तो अंदाज ही लगाना कठिन है !

सागर सदैव बेचैन-सा क्यों रहता है--उसकी हलचल के कारण

सागर में निरन्तर हलचल होती रहती है। वह जब देखो तब लहर पर लहर उभाड़कर तटवर्ती चट्टानों या बालुकाराशि के साथ अठखेलियाँ करता रहता है ! कभी-कभी तो अपनी इस चंचलता में वह ऐसा उग्र हो उठता है कि उसकी लहरें प्रचण्ड वेग धारण कर बीस-पचीस मीटर तक की ऊँची लपकें भरने लगती हैं !

वैज्ञानिकों के अनुसार इस हलचल के पीछे तीन प्रधान कारण हैं--१. जल के ताप एवं उसमें नमक की मात्रा की घट-बढ़ के कारण होनेवाला फेरबदल; २. वायु की गति-विधि से उत्पन्न फेरबदल, और ३. पृथ्वी के आवर्तन से उत्पन्न हलचल ! इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों के जलवायु, सूर्य और चाँद की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के खिचाव, स्थलभाग के साथ जल की टक्कर से उत्पन्न घर्षण, आदि का भी हाथ इस गतिविधि के पीछे है।

सागर के अंचल में बहनेवाली जलधाराएँ

ऊपर उल्लिखित कारणों से सागर के कई एक क्षेत्रों में एक से दूसरे क्षेत्र की ओर कई एक धाराप्रवाह के चक्र मिलते हैं। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण भूमध्यसागर है, जिसका जल अधिक भाप बनने एवं नदियों द्वारा कम पानी लाये जाने के कारण अपने पड़ोसी काले सागर तथा अटलांटिक महासागर की अपेक्षा अधिक लवण-मिश्रित एवं भारी है। फलतः इस जलक्षेत्र में एक ओर तो जिब्राल्टर के मार्ग से और दूसरी ओर बास्फोरस के रास्ते अपेक्षाकृत हल्के पानी का संतत प्रवाह होता रहता है। इसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भूमध्यसमुद्र के तले की ओर बैठते रहनेवाला भारी पानी भी एक धारा के रूप में नीचे ही नीचे, एक ओर तो अटलांटिक महासागर की ओर और दूसरी ओर कृष्णसागर की ओर, गुप्त रूप से प्रवाहित होता रहता है। इस प्रकार दोनों जलक्षेत्रों का संतुलन बना रहता है ! यही क्रम लाल सागर और हिन्द महासागर तथा बाल्टिक समुद्र और उत्तरी सागर आदि अन्य असमान खारेपन के क्षेत्रों के बीच भी देखने को मिल सकता है।

महासागरों की जलधाराओं के प्रवाह का मुख्य चक्र व्यापक रूप में विषुवत् प्रदेश के उष्णताप्रधान क्षेत्रों से उत्तरी और दक्षिणी शीतप्रधान क्षेत्रों की ओर एवं उन शीत प्रदेशों से वापस उष्ण प्रदेशों की ओर संचरण के रूप में देखने को मिलता है। गरम जल की अपेक्षा ठंढा जल भारी होता है। अतः उष्णता बढ़ने पर जब भूमध्यप्रदेशों का समुद्रजल गरम होकर फैलता एवं हल्का होने लगता है, तो वह स्वभावतः उत्तर-दक्षिण के उन क्षेत्रों की ओर बढ़ने लगता है, जहाँ शीत के कारण भारी जल नीचे तले की ओर बैठने में प्रवृत्त रहता है। इस प्रकार एक ओर तो ऊपरी सतह पर विषुवत् उष्ण प्रदेशों से उत्तरी-दक्षिणी शीत प्रदेशों की ओर गरम जल की धाराएँ बहने लगती हैं और दूसरी ओर नीचे ही नीचे ध्रुवप्रदेशों से भूमध्यरेखा के उष्ण प्रदेशों की ओर शीतल जल की धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं। इन जलधाराओं की प्रवाह-दिशा में पृथ्वी के आवर्तन तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हवाओं के कारण काफी अंतर पड़ते पाया जाता है, जिससे उत्तरी गोलार्द्ध में ये दाहिने हाथ की ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बाएँ हाथ की ओर घूमते पाई जाती हैं।

'गल्फ स्ट्रीम'

आओ, अब जलमंडल की इन धाराओं में से कुछ प्रमुख जलधाराओं से तुम्हें परिचित करा दें! सब से पहले अटलांटिक महासागर के क्षेत्र की धाराओं को लो! यहाँ दो प्रधान धाराएँ उच्छ्वसित होती हैं। एक भूमध्यरेखा के उत्तर में उठकर क्रमशः पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। यह 'उत्तरी विषुवत् जलधारा' के नाम से पहचानी जाती है। दूसरी उसके प्रतिकूल भूमध्यरेखा के दक्षिण में उठकर पश्चिम से पूर्व की ओर अग्रसर होती है और 'दक्षिणी विषुवत् जलधारा' के नाम से पुकारी जाती है। उत्तरी विषुवत् धारा पश्चिमी द्वीप-समूह और दक्षिणी अमेरिका के उत्तर-पूर्वी स्कंध के बीच की गली में होती हुई मैक्सिको की खाड़ी में घुस पड़ती है। वहाँ से पलटकर वह फ्लोरिडा की ओर अग्रसर होती और 'गल्फ स्ट्रीम' नामक प्रख्यात वेगवती गरम धारा में परिणत हो जाती है। लगभग आठ किलोमीटर प्रति घंटे की चाल से बहती हुई, डेढ़ किलोमीटर चौड़ी यह उष्ण धारा अटलांटिक महासागर में प्रविष्ट होकर पछुवा हवाओं के जोर से क्रमशः उत्तर की ओर बढ़े चली जाती है। अन्त में कई शाखाओं में विभक्त होकर वह योरप के पश्चिमी तट, ब्रिटिश द्वीप-समूह, स्कैंडिनेविया एवं उत्तरी हिमसमुद्र तक जा पहुँचती है। इसका एक अंश स्पेन तथा अफ्रीका के पश्चिमी स्कंध के पास से मुड़कर कनारी द्वीप-समूह के समीप वापस उत्तरी विषुवत् धारा के प्रवाह में मिल जाता है। इस प्रकार उस धारा का एक पूरा वृत्त-सा बन जाता है। गल्फ स्ट्रीम का सबसे बड़ा महत्व इस बात में है कि वह उष्ण प्रदेशों की गरमी को योरप के उत्तर-पश्चिमी शीतल प्रदेशों तक ले जाती और इस प्रकार उन्हें कठोर शीत से बचाने में मदद देती है।

अन्य महत्वपूर्ण धाराएँ

गल्फ स्ट्रीम के अतिरिक्त उत्तरी अटलांटिक की अन्य एक महत्वपूर्ण जलधारा बैफिन की खाड़ी के रास्ते उत्तरी महासागर से दक्षिण को आनेवाली 'लेब्राडार धारा' है। यह एक शीतल धारा है। न्यूफाउण्डलैंड के समीप गल्फ स्ट्रीम के साथ इसका संगम होने के फल-स्वरूप घना कोहरा छाया रहता है। इसके कारण लेब्राडार का समुद्रतट बेहद ठंढा रहता है।

दक्षिणी अटलांटिक महासागर की धाराओं में सबसे प्रसिद्ध 'ब्रेजिल धारा' है। यह दक्षिणी विषुवत् धारा में से उपजकर दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी किनारे के साथ-साथ बहती है। धुर दक्षिण में फाकलैंड द्वीप के समीप पछुवा हवाओं के प्रभाव से यह पूर्व की ओर मुड़ जाती है। अफ्रीका के दक्षिणी-पूर्वी तट के समीप दक्षिणी महासागर से आनेवाली शीतल धारा के साथ मिलकर यह सीधे उत्तर की ओर चली जाती है और वापस दक्षिणी विषुवत् धारा में मिल जाती है।

अटलांटिक महासागर की धाराओं की भाँति प्रशान्त और हिन्द महासागर के क्षेत्रों में भी उत्तरी-दक्षिणी विषुवत् धाराएँ एवं उनसे संबद्ध विविध उष्ण और शीतल धाराओं एवं प्रतिधाराओं के प्रवाह-चक्र मिलते हैं। गल्फ स्ट्रीम की भाँति उत्तरी प्रशान्त महासागर की एक प्रख्यात उष्ण धारा 'क्यूरो सिवो' है। यह धारा विषुवत् रेखा के समीप प्रशान्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महासागरीय उत्तरी विषुवत् धारा से उपजकर फिलिपाइन द्वीप-समूह, फारमोसा और जापान द्वीप-समूह को उष्णता पहुँचाती हुई घूमकर उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट तक जा पहुँचती है। यह धारा वैंकोवर टापू को छूती हुई दक्षिण में मुड़ जाती और इस प्रकार वापस उत्तरी विषुवत् धारा में जा मिलती है। यहाँ यह 'कैलिफोर्नियन धारा' के नाम से पुकारी जाती है। उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट और जापान द्वीप-समूह की शीत को कम करने में इस धारा का महत्वपूर्ण हाथ है।

इसी प्रकार दक्षिणी प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में भी, दक्षिणी विषुवत् धारा की शाखा-प्रशाखाओं के रूप में, 'हम्बोल्ट या पीरू धारा' और 'पूर्वी ऑस्ट्रेलियन धारा' नामक दो धारा-चक्र मिलते हैं। यही हाल हिन्द महासागर के क्षेत्र का भी है। यहाँ भी एक धारा ऑस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट को छूती हुई बहती है। अन्य एक धारा मेडेगास्कर द्वीप को अपनी बाहु में समेटती एवं दक्षिणी-पूर्वी अफ्रीका के तटवर्ती क्षेत्र को छूती हुई अरब-समुद्र की ओर बढ़ जाती है। इस क्षेत्र में बहनेवाली उत्तरी विषुवत् धाराओं के संचार और उनकी दिशा-निर्धारण में मानसून नामक हवाओं का प्रमुख हाथ रहता है। जाड़े के दिनों में उत्तरी-पूर्वी मानसून के वेग से बंगाल की खाड़ी और अरब-समुद्र की जलधाराओं का रुख दक्षिण-पश्चिम की ओर हो जाता है। ग्रीष्मकाल में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के जोर से ये जलधाराएँ भारत के समुद्रतट की ओर बहने लगती हैं।

जलमंडल के इन कुंडलाकार प्रवाह-चक्रों के बीच में कुछ क्षेत्र ऐसे भी पाए जाते हैं, जहाँ पूर्णतया शांति स्थापित रहती है, अर्थात् समुद्र में प्रवाह बिल्कुल नहीं जान पड़ता! ऐसे पाँच उल्लेखनीय स्थान पाए गए हैं। इनमें उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र का 'सारगोसा समुद्र' सबसे महत्वपूर्ण है। यहाँ का पानी उत्तरी विषुवत् धारा के कुंडलाकार चक्र के बीच में फँसकर इतना रुँध गया है कि उसमें चारों ओर की जलधाराओं की थपेड़ से इकट्ठा किया हुआ सदियों का समुद्री कूड़ा-कबाड़ (जैसे कि वृक्षों के टूटे हुए तने, जहाजों के भग्नावशेष, सेवार आदि) संचित हो गया है।

ज्वार-भाटा का कौतुक--क्या और क्यों ?

जलमंडल की हलचल का एक महत्वपूर्ण रूप है 'ज्वार-भाटा'! यह अनूठी हलचल समुद्रजल में नियमित रूप से आनेवाली एक विचित्र प्रकार की बाढ़ के रूप में प्रकट होती है! यह बाढ़ प्रति २४ घंटे ५२ मिनट की अवधि में जलमंडल के सभी भागों में साधारणतया दो बार उमड़ती है। एक निश्चित ऊँचाई तक ऊपर उठने के उपरान्त उतरकर

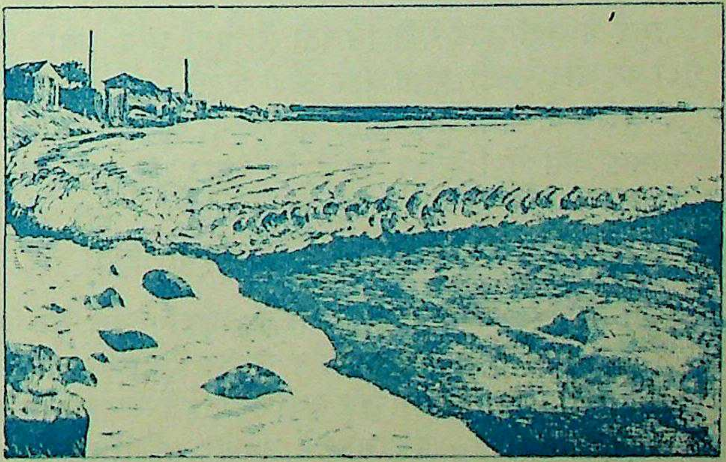

फंडी की खाड़ी में उमड़नेवाले संसार के सबसे ऊँचे ज्वार का दृश्य।

वह पुनः एक निम्नतम स्थिति को प्राप्त करते देखी जाती है। इसके ऊपर उठने की हरकत को ही 'ज्वार' तथा नीचे उतरने की क्रिया को 'भाटा' के नाम से पुकारा जाता है। यह बाढ़ सभी स्थानों में ठीक एक ही समय पर नहीं आया करती, न उसका जोर ही हर कहीं समान होता है। परन्तु हर स्थान के ज्वार-भाटा का निश्चित समय और वेग रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तरी अमेरिका के नोवास्कोशिया प्रदेश की सुप्रसिद्ध फंडी की खाड़ी में ज्वार लगभग २० मीटर की गगनस्पर्शी ऊँचाई तक भी पहुँचते पाया गया है ! ज्वार का वेग और उसके उठान की मात्रा हर पखवाड़े में पूर्णिमा और अमावस्या के दिन सबसे अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है। उस समय का ज्वार 'बृहत् या ऊँचा ज्वार' कहलाता है। इसके प्रतिकूल हर पखवाड़े की अष्टमी के दिन ज्वार का वेग और उठान सबसे कम होता है, अतः वह 'लघु या नीचा ज्वार' कहा जाता है। ज्वार-भाटे के इस रहस्यमय कौतुक का चंद्रमा के घटाव-बढ़ाव के साथ एक अद्‌भुत नाता देखकर ही वैज्ञानिकों ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया है कि जल-मंडल की इस बाढ़ की उत्पत्ति का कारण चंद्रमा है। वे कहते हैं कि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के पाश में बँधा हुआ चंद्रमा स्वयं भी अपनी निजी गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के जोर से धरती के साथ जो खींचतान करता है, उसी के फलस्वरूप पृथ्वी के जलमंडल का पानी तरल होने के कारण रबड़ की तरह खिचकर ऊँचा उठने लगता है। चंद्रमा के इस आकर्षण के वशीभूत होकर न केवल सामने पड़नेवाला जलपृष्ठ ही बल्कि केन्द्रसहित पृथ्वी का सारा ठोस पिंड उसकी ओर तनिक खिच जाता है। इस दशा में (तरल होने के कारण) सामने न पड़नेवाला जलभाग पिंड के साथ-साथ खिचने को विवश नहीं होता। फलतः वहाँ कुछ जगह खाली पड़ जाती है। उसमें आसपास का जल खिचकर भर जाता है। इस प्रकार गहराई बढ़ने के फलस्वरूप चाँद के सामने न पड़नेवाले जल में भी वैसा ही ज्वार उमड़ते देख पड़ता है, जैसा कि सामने पड़नेवाले जलपृष्ठ पर घटित होता है।

ज्वार-भाटा के कौतुक को पैदा करने में किसी अंश तक सूर्य का भी हाथ है। पूर्णिमा और अमावस्या को ज्वार का वेग जो सबसे बढ़ा-चढ़ा होता है, उसका कारण शायद यही है कि उस समय सूर्य और चंद्रमा दोनों (पृथ्वी के साथ एक लंबवत् दिशा में अवस्थित होने के कारण) मिलकर अपनी आकर्षण-शक्तियों का संयुक्त प्रभाव उस पर डालते हैं।

समुद्र में जहाँ कोई नदी मिलती है, वहाँ प्रायः ज्वार के समय पानी की धारा समुद्र से नदी की ओर उल्टी बहते और ऊँची चढ़ते देखी जाती है। इस प्रकार की ज्वार-लहर की ऊँचाई कभी-कभी सात-आठ मीटर तक की पाई जाती है, जैसी कि चीन की स्वाएन थैंग नामक नदी में ! होता यह है कि ज्वार की उल्टी बाढ़ आने के कारण नदी का अपना प्रवाह रुक-सा जाता है और दोनों की रुकावट से जल की एक भीत-सी नदी के मुहाने में खड़ी हो जाती है। इसका दृश्य बड़ा ही अद्‌भुत होता है !

पृथ्वीतल पर कई स्थल ऐसे भी हैं, जहाँ केवल सूर्य की आकर्षण-शक्ति से बारह घंटों में एक मामूली-सा समान ज्वार उठता है। ऐसा एक स्थल दक्षिणी प्रशान्त महासागर का ताहिती द्वीप है। वहाँ न लघु ज्वार होता है, न बृहत् ज्वार ही। इसके विपरीत इंगलैण्ड के साउ थैम्पटन नामक बंदरगाह में, विशेष परिस्थितियों के कारण, पचीस घंटों में दो-दो बार नहीं, बल्कि चार-चार बार ज्वार-भाटा का उतार-चढ़ाव होते पाया जाता है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम जान चुके हैं कि पृथ्वी की सीमा उसके जलस्थलमय धरातल अथवा भूगर्भ की अदृष्ट भट्टी तक ही परिमित नहीं है, बल्कि उसका दायरा धरातल से सैकड़ों किलोमीटर की ऊँचाई तक आसमान में भी चहुँ ओर फैला हुआ है। पृथ्वी का यह अद्भुत अनोखा आवरण 'वायुमंडल' के नाम से पुकारा जाता है। भूपृष्ठ एवं भूगर्भ की भाँति यह भी हमारी लीलाभूमि का एक अभिन्न अंग है। उसका अपना एक विशिष्ट महत्व है। उसके ही अस्तित्व पर पृथ्वी पर के जीवन का सारा दारोमदार है। तो फिर, आओ, उसके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त की जाय !

अनोखा रक्षाकवच

पिछले एक प्रकरण में हम पृथ्वी के आसपास लिपटे हुए वायु के आवरण की उपमा लिहाफ से दे चुके हैं। यह उपमा किसी हद तक ठीक लागू होती है। जिस प्रकार लिहाफ ताप का नियंत्रण करके हमें सुख और आराम पहुँचाता, उसी तरह धरती का वायुमंडल-रूपी आवरण भी उसकी सतह पर के ताप को उचित एवं सुखप्रद बनाए रखने का सबसे बड़ा प्राकृतिक साधन है। परन्तु इससे भी अधिक महत्व उसका इस बात के लिए है कि वह सूर्य से निरंतर बरसती हुई हानिकर किरणों के घातक प्रहार से इस ग्रह के निवासियों की रक्षा करता है ! इस प्रकार हम उसे अपना सबसे मूल्यवान् रक्षाकवच कह सकते हैं, जिसके अभाव में धरती पर जीवन का टिकना दूभर हो जाता !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी तरह ऑक्सिजन-रूपी संजीवनी प्राणवायु का अक्षुण्ण भंडार होने के नाते भी वायुमंडल हमारे लिए एक महान् वरदान है। उसी की बदौलत भाँति-भाँति के जीवधारी धरती पर जीवन की ज्योति जगाए हुए हैं ! उसी से भूमंडल पर हरियाली की अद्‌भुत छटा छायी हुई है ! हमारे ऊपर जो मंद समीर का पंखा प्रायः झलता रहता है और आसमान में मेघमाला एवं इन्द्रधनुष की जो अनोखी छटा अक्सर छा जाया करती है, वह सब इस वायुमंडल की ही देन है ! यही नहीं, हम परस्पर जो बोल पाते हैं, भाँति-भाँति की ध्वनियाँ सुन पाते तथा तरह-तरह की गंध का अनुभव करते हैं, सो भी इसी अनूठी नियामत की बदौलत होता है। उसके अभाव में न तो हम कोई आवाज सुन सकते थे, न किसी गंध का ही प्रसार हो सकता था। संक्षेप में, वायुमंडल के बूते पर ही पृथ्वी 'माता' बन पाई है, वरना वह भी अन्य ग्रहों की तरह एक वीरान लोक होती !

वायुमंडल के तीन महाविभाग—(१) सबसे निचला स्तर 'ट्रापोस्फीयर'

तुम्हें यह जानकर अचंभा होगा कि लगभग पाँच सौ किलोमीटर की ऊँचाई तक आसमान में फैला होने पर भी, वायुमंडल में केवल पंद्रह-सोलह किलोमीटर की ऊँचाई तक जीवन की आवश्यकता-पूर्ति के योग्य वायु की मात्रा उपलब्ध है। इससे ऊपर जाने पर उत्तरोत्तर कम होते हुए वायु इतनी क्षीण हो गई है कि उसके कुछ छुटपुट अणु ही वहाँ विद्यमान मिलते हैं। वायुमंडल का उपर्युक्त सबसे निचला स्तर वैज्ञानिकों द्वारा 'ट्रापोस्फीयर' के नाम से पुकारा जाता है। पृथ्वीवासियों के लिए यही सबसे महत्व का वायु-स्तर है। यही हमारी ऑक्सिजन, नाइट्रोजन आदि की आवश्यकता-पूर्ति का सर्वसुलभ भंडार है। इसी के अंचल में बादलों की हलचल होती है, जिससे हमें वर्षा का उपहार मिलता है। यहीं आँधियों, बवंडरों, जोरदार हवाओं आदि की लीलाएँ होतीं, जिनके कारण पृथ्वी पर भाँति-भाँति के भूभौतिक उलटफेर हुआ करते हैं। इस स्तर के अंचल में क्रमशः ऊपर उठने पर ध्रुवप्रदेशों की-सी घोर शीत से लेकर विषुवत् प्रदेशों की प्रचंड गरमी तक के ताप के उतार-चढ़ाव की सभी श्रेणियों की झाँकी प्रायः देखने को मिल सकती है। वायुमंडल के इस स्तर में प्रति लगभग १०० मीटर ऊँचे उठने पर ताप लगभग आधा अंश सेंटीग्रेड गिरता चला जाता है, यहाँ तक कि अंत में सबसे ऊपर पहुँचकर वह लगभग –१६° शतांश के दर्जे तक जा उतरता है ! यह एक अद्‌भुत बात है कि जहाँ अन्यत्र इस स्तर की सीमा पंद्रह-सोलह किलोमीटर की ऊँचाई तक व्याप्त है, वहाँ ध्रुवों के ऊपर वह केवल आठ किलोमीटर तक ही परिमित है ! इस स्तर के ऊपर 'ट्रापोपॉज' नामक एक पतली तह छाई हुई है, जिसकी विशेषता यह है कि उसमें उत्तरोत्तर ऊपर चढ़ते चले जाने पर भी ताप में कोई अंतर नहीं पड़ता !

(२) 'स्ट्रेटोस्फीयर' नामक मध्यवर्ती स्तर

'ट्रापोस्फीयर' के ऊपर 'स्ट्रेटोस्फीयर' नामक वह प्रसिद्ध वायु-स्तर है, जिसमें पहुँचने के लिए पिछले दिनों गुब्बारे में बैठकर ऊपर उड़ने के अनेक साहसिक प्रयोग वैज्ञानिकों ने किए थे। उक्त प्रयोगों में अंत में प्रो० पिकार्ड जैसे अदम्य साहसी कई हजार मीटर तक ऊपर उठकर पर्याप्त सफल भी हुए थे। इस स्तर का दायरा सोलह से अस्सी किलोमीटर की ऊँचाई के बीच के क्षेत्र में फैला हुआ है। यह स्थिर भाव से बहती हुई मंद वायु और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तरोत्तर बढ़ते चले गए ताप का अनोखा क्षेत्र है। लगभग चालीस किलोमीटर की ऊँचाई पर इस क्षेत्र में ओजोन नामक जीवन-प्रदायिनी गैस की एक पर्त विद्यमान है, जो सोलह किलोमीटर मोटी पट्टी में फैली हुई है! ओजोन की यह पर्त सूर्य से आनेवाली किरणों की 'अल्ट्रा-वायोलेट' नामक परा-बैंगनी रश्मियों की आवश्यकता से अधिक मात्रा को अपने में जज्ब कर लेती है। इस प्रकार वह घातक किरणों को पृथ्वी पर आने से रोककर और जीवनप्रद किरणों को बिना रोक-टोक के आने देकर एक अनूठे जादुई छन्ने का-सा काम देती है, जिसके कि अभाव में धरती पर जीवन का टिकना असंभव हो जाता! ओजोन गैस की इस पर्त तक पहुँचते-पहुँचते ताप एकदम चढ़कर लगभग ७६° सें० तक पहुँच जाता है। तब लगभग अस्सी किलोमीटर की ऊँचाई पर पहुँचकर वह पुनः शून्य से भी नीचे तक आ गिरता है।

(३) 'आयनोस्फीयर' नामक अंतिम सर्वोच्च स्तर

'स्ट्रेटोस्फीयर' के ऊपर कई सौ किलोमीटर की ऊँचाई तक वायुमंडल की

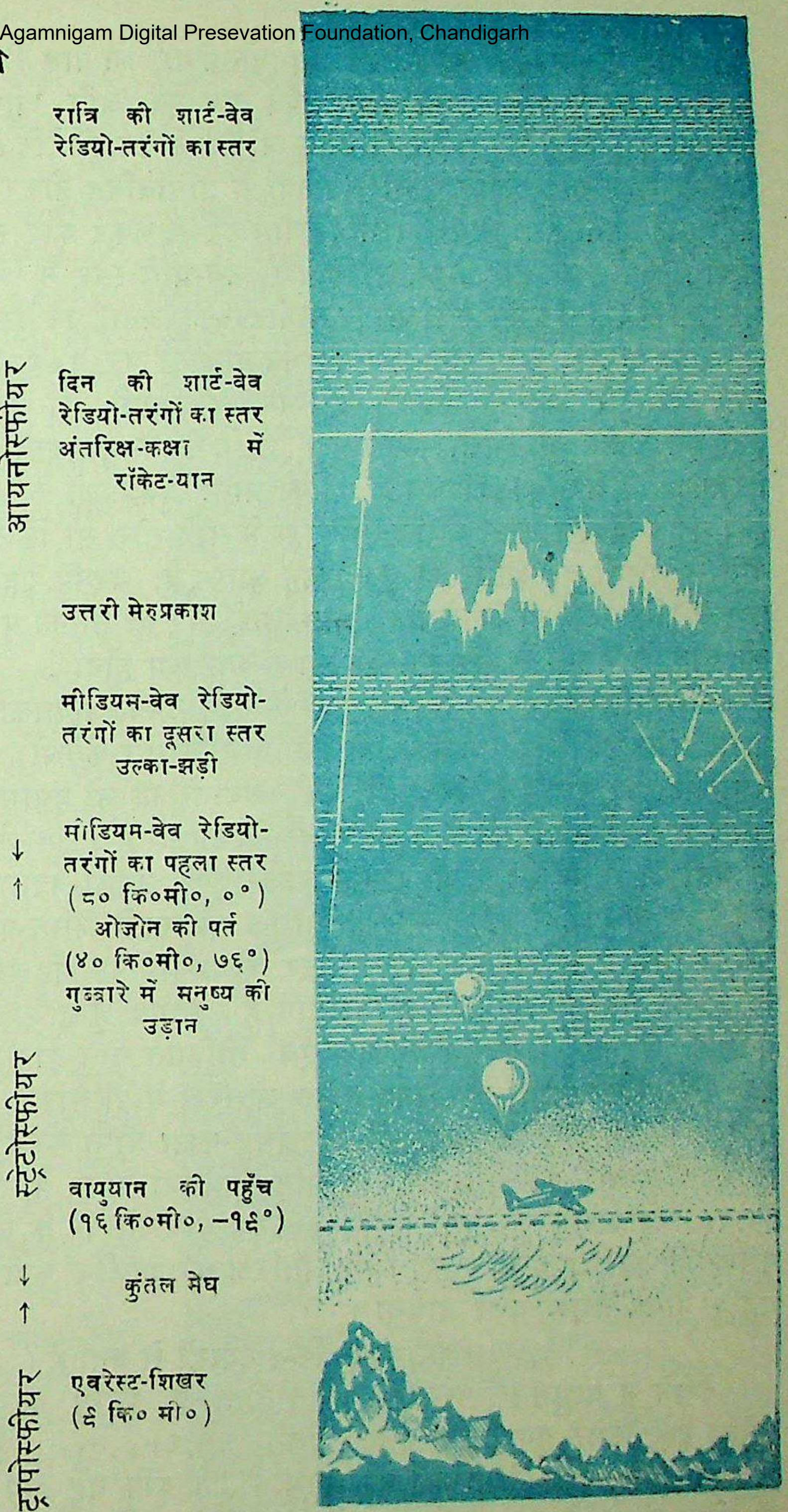

वायुमंडल के विविध स्तर—बाईं ओर उक्त स्तरों की सीमा, ऊँचाई, ताप, आदि सूचित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जो आखिरी तह फैली हुई है, उसे 'आयनोस्फीयर' का नाम दिया गया है। यह स्तर शक्तिशाली विद्युत्-चुंबकीय प्रक्रियाओं, उच्च ताप एवं अति क्षीण विद्युदाविष्ट वायुकणों का इलाका है। पृथ्वी पर से जो मीडियम और शार्ट-वेव की रेडियो-तरंगें प्रसारित की जाती हैं, वे इसी स्तर की कतिपय सुनिश्चित तहों से प्रतिबिंबित होकर भूमंडल के विविध भागों में ग्रहण की जाती हैं। लगभग अस्सी किलोमीटर से लेकर कोई साढ़े चार सौ किलोमीटर की ऊँचाई तक पसरे हुए वायुमंडल के इस लंबे-चौड़े स्तर में भीषण ताप की परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। लगभग सवा सौ किलोमीटर की ऊँचाई पर इस स्तर का ताप १००° सें० है, जोकि क्रमशः बढ़ते-बढ़ते ढाई सौ किलोमीटर पर १०९२° सें० की स्थिति पर पहुँच गया है ! इसी स्तर के निचले छोर पर उल्का-झड़ी का अद्भुत दृश्य यदा-कदा घटित होते हमें देखने को मिला करता है। उधर उसके मध्यवर्ती स्तरों में 'उत्तरी या दक्षिणी मेरुप्रकाश' (अरोरा) की अनूठी झाँकी प्रायः ध्रुवप्रदेशों के आसमान में निखरती रहती है। कहते हैं, इस स्तर की निचली तहों में पौने तीन सौ किलोमीटर प्रति घंटे की भीषण गति से चलती हुई आँधी की एक लहर व्याप्त है, यद्यपि यहाँ की वायु का घनत्व इतना कम है कि कोई सौ किलोमीटर की ऊँचाई पर ही उसका परिमाण समुद्र की सतह पर की वायु के घनत्व से संभवतः दस लाख गुना कम होगा !

'आयनोस्फीयर' की विभिन्न तहों के नाम उनके अन्वेषकों के नाम पर रखे गए हैं—यथा 'लिंडमैन और डाब्सन की तह', 'हैविसाइड-कैनेली तह', 'एपल्टन-तह', आदि। वैज्ञानिकों का कहना है कि पृथ्वी पर चक्रवातों का जो हंगामा यदा-कदा हुआ करता है, उसके मूल स्रोत वायुमंडल के इसी स्तर में उपजते हैं। पिछले दिनों रॉकेटों द्वारा मनुष्य के अंतरिक्ष में पहुँचने के जो सफल प्रयत्न हुए, उनकी बदौलत वायुमंडल के इस महत्वपूर्ण स्तर के बारे में बहुत-कुछ प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर ली गई है। इस बात के प्रमाण मिले हैं कि पाँच सौ किलोमीटर की ऊँचाई पर भी वातावरण में हाइड्रोजन और नाइट्रोजन गैसों के छुटपुट अणु विद्यमान हैं। शायद तुम्हें मालूम होगा कि पिछले कुछ वर्षों में संयुक्त राज्य (अमेरिका) एवं सोवियत रूस द्वारा अनेक यंत्रसज्जित भूउपग्रहों तथा रॉकेट-यानों को मानव-सहित अंतरिक्ष में पहुँचाकर पृथ्वी के आसपास घुमाया गया है। इन अंतरिक्ष-यानों को परिभ्रमण-कक्षा प्राप्त करने के लिए 'आयनोस्फीयर' में निश्चित ऊँचाई तक निश्चित गति सहित पहुँचना पड़ता है, तभी वे वहाँ टिक पाते हैं ! कहना न होगा कि ज्यों-ज्यों मनुष्य के कदम पृथ्वी से परे के लोकों की ओर बढ़ेंगे, वायुमंडल का यह महत्वपूर्ण स्तर, जिसे 'अंतरिक्ष की दहलीज' कहा जा सकता है, अधिकाधिक महत्व प्राप्त करता चला जायगा।

वायुमंडल किन पदार्थों से बना है?

देखने में वायुमंडल पारदर्शी प्रतीत होता है, परन्तु दरअसल वह अपने अंचल में इतना द्रव्य समेटे हुए है कि उसका वजन ११,६००,०००,०००,०००,००० टन के लगभग होगा, ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है। चूंकि यह द्रव्य बहुत अधिक विस्तृत क्षेत्र में झीना-झीना फैला हुआ है, इसी से वह हमें दिखाई नहीं पड़ता ! तुम यह सुनकर हैरान होगे कि केवल छः मीटर लंबे, उतने ही चौड़े और उतने ही ऊँचे घेरे के कमरे में लगभग तीन क्विंटल हवा मौजूद होती है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आओ, अब यह देखा जाय कि वायुमंडल में पाए जानेवाले वे पदार्थ क्या हैं, जिनके कारण उसका इतना वजन है ! ये तत्व अपने प्रति शत परिमाण सहित ये हैं--ऑक्सिजन (२०.९९ प्रति शत), नाइट्रोजन (७८.०३ प्रति शत), आर्गन (०.९४ प्रति शत), हाइड्रोजन (०.०१ प्रति शत), और कार्बन डाइआक्साइड (०.०३ प्रति शत)। इनमें हमारी जीवन-रक्षा और परिपालन के कार्य में महत्वपूर्ण योग देनेवाले 'ऑक्सिजन' तत्व की महिमा सर्वोपरि है। यही समस्त जीवधारियों का प्राणवायु है। दूसरा महत्व का स्थान 'कार्बन डाइआक्साइड गैस' का है। यह प्राणियों के लिए तो घातक है, परन्तु वनस्पतियों के लिए उसकी वही उपयोगिता है, जोकि हमारे लिए ऑक्सिजन की है। इसी तरह 'नाइट्रोजन' भी पृथ्वी के जीवन-चक्र को बनाए रखने में अपने ढंग से बहुत-कुछ सहायक है।

परन्तु वायुमंडल में केवल ये गैसीय अवयव ही मिलते हों, यही बात नहीं है ! वस्तुतः धरती पर से उड़-उड़कर आसमान में छा जानेवाले धूलि, कालिख आदि विजातीय ठोस द्रव्यों के सूक्ष्म कणों की भी वायुमंडल में भरमार है। इनकी संख्या प्रति घन सेंटीमीटर क्षेत्र में दस हजार आँकी गई है ! इन धूलि-कणों की राशि पृथ्वी पर चलनेवाली प्रचंड आँधियों एवं बवंडरों के प्रताप से आसमान में ऊँचाई तक उठकर लंबे समय तक वातावरण में मँडराया करती है। कभी-कभी तो वायु की लहरों के साथ हजारों किलोमीटर की दूरी तक की दौड़ लगाकर वह वापस धरती पर

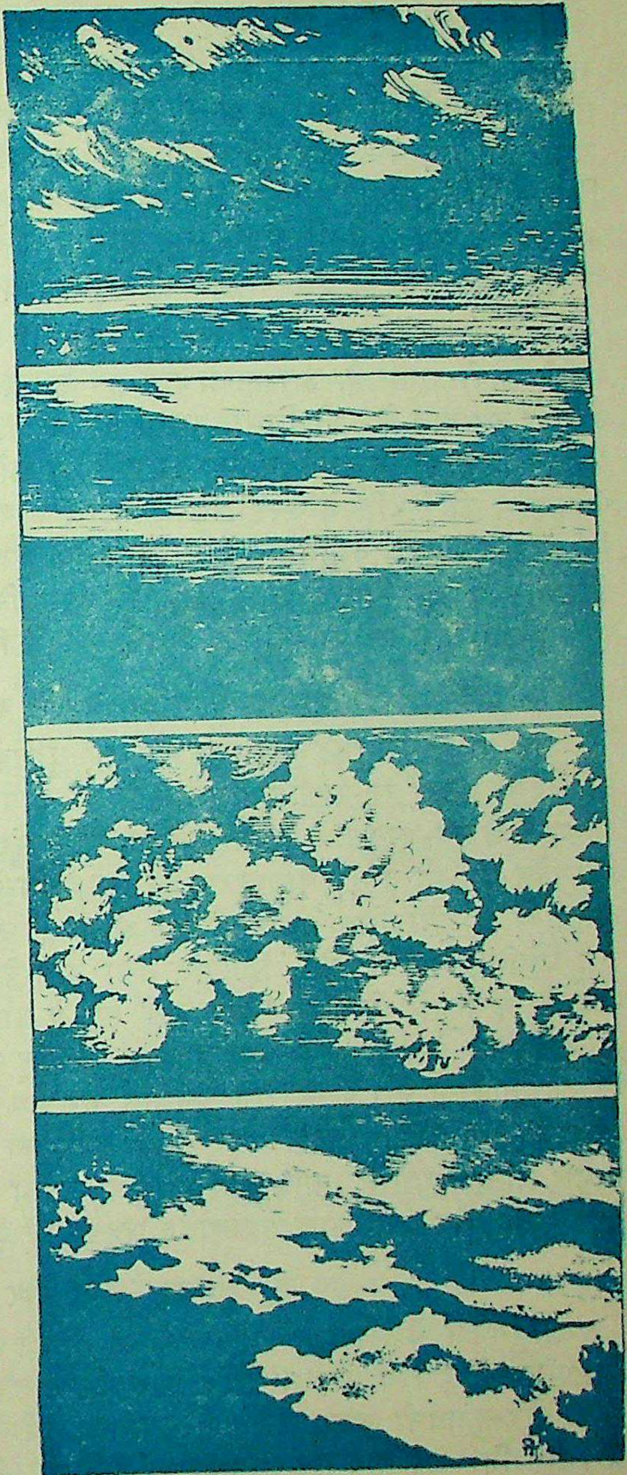

(ऊपर से नीचे) पहले चित्र में कुंतल मेघ; दूसरे में परतोले मेघ; तीसरे में कुंज मेघ; चौथे में उनीले जलद कुंज मेघ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उतरते एवं उस पर जमते भी देखी जाती है। कहते हैं, क्राकातोआ द्वीप के प्रख्यात विस्फोट के बाद ज्वालामुखीय उद्‌गारों द्वारा उड़ाए गए धूलि के कण वायुमंडल के ऊपरी स्तरों में लगभग बत्तीस किलोमीटर की ऊँचाई तक उठकर आसमान में छा गए थे। वे वहाँ की तीव्र वायुलहरों की लपेट में आकर तेरह दिनों के अल्प समय में ही सारी पृथ्वी की परिक्रमा लगा गए थे! उस धूलिकाराशि के घटाटोप के कारण महीनों प्रकाश-रश्मियों के क्रिया-प्रतिक्रियाजनित भौतिक चमत्कारों के कई एक दृश्य सूर्यास्त की अभूतपूर्व रंग-बिरंगी झाँकियों के रूप में पृथ्वी के विभिन्न भूभागों में देखे जाते रहे थे। कुछ स्थानों में तो सूर्य एकदम नीले वर्ण का एवं चन्द्रमा हरे रंग का दिखाई पड़ता रहा था!

वायुमंडल में रजकणों की जो राशि बादलों आदि के साथ मिश्रित होकर प्रायः बारहों महीने छायी रहती है, उसका आभास हमें सूर्योदय एवं सूर्यास्त के रंग-बिरंगे दृश्यों के अलावा इस बात से भी मिला करता है कि जहाँ स्वच्छ वातावरण में धरातल पर से लगभग पाँच सौ किलोमीटर तक की दूरी की झाँकी मिलना संभव है, वहाँ इन रजकणों के बाहुल्य की स्थिति में अस्सी किलोमीटर तक की दूरी को भी नाप पाना कठिन हो जाता है। कहते हैं, यदि वायुमंडल में ये विजातीय रजकण न भरे होते, तो दिन ही में हमें आसमान में तारे दिखाई देते——चाहे उस समय सिर पर सूरज क्यों न तमतमा रहा हो! साथ ही आकाश का रंग भी उस स्थिति में हमें निपट काला दिखाई देता!

वायुमंडल में संचित प्रकृति की महान् जलराशि

यह तो हुई वायुमंडल में छितराए हुए धूलिकणों की बात! पर इनके अलावा ये जो बादलों की घटाएँ रह-रहकर आसमान में छा जाया करती हैं और उनके साथ कभी कोहरे के रूप में धरती-आसमान पर जो एकदम गहरी धुंध-सी छा जाती है, यह सब भला क्या है? निस्संदेह यह भी हमारे वातावरण का एक अभिन्न अंग है। यह है वायुमंडल में संचित जलवाष्प के अपरिमित भंडार की एक झलक! जलवाष्प के इस कुदरती भंडार का परिचय प्रकृति हमें वर्षा, ओले, हिमपात तथा ओस के रूप में देती रहती है। हिसाब लगाया गया है कि किसी भी क्षण जलवाष्प के रूप में वायुमंडल में नमी की जो मात्रा बनी रहती है, वह उसके कुल वजन की एक प्रतिशत (अर्थात् ११०,६००,०००,०००,०००,००० टन) के लगभग होती है। इससे तुम अनुमान कर सकते हो कि इस जलवाष्प की वर्ष भर की मात्रा कितनी अधिक होगी? परन्तु इस राशि का अधिकतर जल बरसकर पुनः धरती पर वापस आता रहता है। यदि ऐसा न हुआ करता तो पृथ्वी का जलमंडल कभी का सूख गया होता और जहाँ आज महासागर लहरा रहे हैं, वहाँ शायद सूखे खंदक नजर आते!

बादल——क्या और क्यों?

वायुमंडल में छायी हुई जलवाष्प की प्रत्यक्ष झाँकी हमें बादलों की छटा में देखने को मिला करती है। ये बादल, जोकि भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर एवं बरसकर धरती को हरी-भरी और सुहावनी बनाए रखने में सबसे बड़ा योग देते हैं, प्रकृति के अद्‌भुत चमत्कार हैं। एक निश्चित ताप पर वायुमंडल किसी एक निश्चित मात्रा से अधिक नमी अपने अंचल में नहीं समेट पाता। अतः जब वायु में नमी की मात्रा इस स्थिति तक पहुँच जाती है कि बिना ताप बढ़े अधिक भाप उसमें संचित नहीं रह पाती, तो उसकी जलवाष्प घनी-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूत हो कोहरे जैसा रूप ग्रहण कर लेती है। भाप के यही घनीभूत कुंज काफी नीचे उतर आने पर जहाँ कोहरे के रूप में देख पड़ते हैं, वहाँ आसमान में विभिन्न गहराई एवं विस्तार से ऊँचे छाये रहने पर बादलों के रूप में दिखाई देते हैं।

बादल अपनी आड़ी-तिरछी स्थिति और सघनता या छितराई हुई दशा के अनुसार जिन-जिन शक्लों में दिखाई पड़ते हैं, उनके अनुकूल उनके अलग-अलग नाम रख दिए गए हैं और उनके उतने ही प्रकार मान लिए गए हैं। उदाहरणार्थ, महीन परों या छितराये हुए घुँघराले बालों जैसे जो नाजुक मेघ आसमान में बहुत अधिक ऊँचाई पर दिखाई देते हैं, वे 'कुंतल' (साइरस) मेघ कहलाते हैं। इनकी रचना जलकणों के बजाय नन्हें-नन्हें हिमकणों से होती है। ये विशुद्ध श्वेत वर्ण के होते हैं। जब इन पर सूर्य-रश्मियाँ पड़ती हैं, तो रंग-बिरंगी झाँकी दरसाते हुए ये बड़े सुंदर लगते हैं। कभी-कभी पताकावत् लंबी धज्जियों या धागों के लच्छों के रूप में भी वे फैले दिखाई पड़ते हैं। ये आठ से दस किलोमीटर की ऊँचाई पर रहते हैं। यही वायुमंडल में बादलों का सबसे ऊँचा स्तर है। इनके ठीक नीचे पतली सफेद चादर के रूप में 'परतीले कुंतल' (साइरो-स्ट्रेटस) नामक मेघों की छटा प्रायः छा जाया करती है। तदुपरान्त लगभग छः-सात हजार मीटर की ऊँचाई पर रुई के गोल फाहों जैसे 'कुंज कुंतल' (साइरो-क्युम्यूलस) नामक पंक्तिबद्ध मेघों, लगभग तीन हजार मीटर पर समानान्तर कतारों में सजे हुए इनसे बड़े 'उच्च कुंज' (आल्टो-क्युम्यूलस) नामक बादलों, उन्हीं के समानान्तर पुनः सफेद चादर के रूप में फैले हुए 'उच्च परतीले' (आल्टो-स्ट्रेटस) नामक घन-समूहों एवं दो हजार मीटर के नीचे 'परतीले कुंज' (स्ट्रेटो-क्युम्यूलस) नामक वारिदों की झाँकी दिखाई दिया करती है। सबसे अंत में 'ऊनीले या जलद कुंज' (निम्बस) नामक बादलों की श्यामवर्ण मेघमाला की बृहत् राशि हमें जब-तब आसमान में फैली दिखाई देती है। यह ऊनीले जलद कुंज ही वर्षा लानेवाले प्रमुख बादल हैं। अति घने होने के कारण इनके भीतर सूर्य की किरणें प्रवेश नहीं कर पातीं, इसी से ये श्यामवर्ण या सलेटी रंग के जान पड़ते हैं। वैसे कभी-कभी सूर्य की रोशनी में चमककर ये चाँदी की तरह उज्ज्वल भी हो उठते हैं। इन्हीं बादलों में वर्षाकाल में बिजली कौंधा करती और इन्हीं से इंद्र के नगाड़ों के गड़गड़ाहट का सुपरिचित स्वर उपजा करता है।

वर्षा का रहस्य

जब वातावरण में ताप की गिरावट की दशा में जलवाष्प से पूर्णतया संपृक्त वायु किसी भी कारण से अपने जलसीकरों (या हिमसीकरों) को धारण करने में असमर्थ हो जाती है, तब वे जलबिन्दु (या हिमकण) वर्षा (या हिमपात) के रूप में धरती पर बरस पड़ते हैं। पृथ्वी पर वर्षा भूमध्य रेखा के आसपास के उष्णप्रधान कटिबन्ध में सर्वाधिक और ध्रुव-प्रदेशों में सबसे कम होती है। उसकी कमी या अधिकता के निर्धारण में विभिन्न क्षेत्रों की अक्षांश-स्थिति, वहाँ चलनेवाली हवाओं का रुख और उनका ताप तथा समुद्र एवं पर्वतमालाओं आदि से उन-उन स्थानों की निकटता या दूरी आदि बातों का मुख्य हाथ पाया जाता है। दुनिया में सबसे अधिक वर्षा हमारे देश के पूर्वोत्तर प्रदेश में स्थित खासी-पहाड़ियों में होती है। उसकी वार्षिक मात्रा १३०० सेंटीमीटर के लगभग होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उधर अरब या सहारा के रेगिस्तानों जैसे ऐसे सूखे प्रदेशों की भी कमी नहीं है, जो जानते ही नहीं कि वर्षा क्या चीज है ! इसका कारण उनकी अपनी विशिष्ट भौगोलिक परि-स्थितियाँ हैं । वैसे सहारा की मरुभूमि के आसमान में भी दरअसल ऊँचाई पर जलवाष्प विद्यमान है और वह बरसने का प्रयत्न भी करती है ! परन्तु वहाँ का ताप इतना ऊँचा होता है और हवा इतनी सूखी या असंपृक्त रहती है कि नीचे धरती तक पहुँचने से पहले ही जलबिन्दु आसमान में सूख जाते हैं ! जब ताप गिरकर हिमांक से भी नीचे हो जाता है, तो तुषारपात होने लगता है । इसीलिए शीत-प्रदेशों तथा पहाड़ों की ऊँची चोटियों पर वर्षा के स्थान में बर्फ गिरा करती है ।

वायुमंडल के दबाव की घट-बढ़

अपने अतुलित वजन के कारण धरातल पर वायुमंडल का निरंतर दबाव पड़ता रहता है । यह दबाव ज्यों-ज्यों हम ऊपर उठते जाएँ, त्यों-त्यों कम पड़ता जाता है । कारण यह है कि ऊपर के स्तर नीचे से हलके हैं । इस दबाव का ठीक-ठीक पता 'बैरोमीटर' नामक यंत्र से चलता है । हिसाब लगाया गया है कि समुद्र की सतह पर हमारे शरीर पर प्रति क्षण लगभग ग्यारह टन वायुमंडल का दबाव पड़ता है । यह लगभग तीन हाथियों के वजन के बराबर होता है ! ऊँचाई और मौसम-संबंधी इस दबाव की मात्रा में फेरबदल से घट-बढ़ भी होती रहती है । बैरोमीटर के पारे के उतार-चढ़ाव द्वारा इस घट-बढ़ की सूक्ष्मतम सूचना मिलती है ।

सामान्यतः समुद्र की सतह पर बैरोमीटर की नली में पारे का स्तंभ ७६·२ सेंटीमीटर की ऊँचाई तक खड़ा रहता है । परन्तु हम ज्यों-ज्यों ऊँचे चढ़ते हैं, त्यों-त्यों हवा का दबाव और वजन कम होने के कारण बैरोमीटर का पारा लगातार गिरता चला जाता है । वह करीब २७५ मीटर की ऊँचाई पर २·५४ सेंटीमीटर कम होते पाया गया है । परन्तु यह पैमाना लगातार एक जैसा लागू नहीं है, क्योंकि हवा के दबाव के घट-बढ़ का क्रम सब कहीं एक-सा नहीं है । वैज्ञानिकों ने इस घट-बढ़ के क्रम की एक तालिका तैयार की है । उसके अनुसार एवरेस्ट के शिखर की ऊँचाई तक पहुँचने पर बैरोमीटर का पारा अपनी नली में केवल १९ सेंटीमीटर तक ही उठा हुआ रह जाता है ! ऐसे कम दबाववाले वातावरण में साँस लेने में भारी कठिनाई होने के कारण मनुष्य अधिक देर नहीं टिक पाता । इसीलिए ऊँचे पर्वतों की चढ़ाई करते समय अथवा वायुयान में अधिक ऊँचाई तक उड़ते समय ऑक्सिजन की पूर्ति की कृत्रिम व्यवस्था करना आवश्यक होता है !

हवाएँ—क्या और क्यों ?

वायुमंडल की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह सदैव चंचल बना रहता है । कभी तो मंद समीर बहने लगता और कभी सौ किलोमीटर प्रति घंटे की चालवाली भयंकर आँधियाँ भी दौड़ लगाने लगती हैं । देखते-देखते धरातल की धूलि आकाश तक ऊपर उठ जाती है ! पेड़ उखड़ पड़ते हैं ! जहाज डूब जाते हैं ! यह सब क्यों होता है ?

इसका रहस्य धरातल के समीप के वायुमंडल में ताप की घट-बढ़ और उसके फल-स्वरूप एक से दूसरे क्षेत्र में वायु की लहरों के संचरण में निहित है ! होता यह है कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जब किसी क्षेत्र विशेष में ताप के चढ़ाव-उतार के फलस्वरूप धरातल के साथ-साथ वहाँ की हवा भी अधिक गरम या ठंढी होकर सिकुड़ने लगती है, तो वायुमंडल के दबाव में काफी फेरबदल हो जाता है। अर्थात् कहीं तो उच्च वायु-भार का क्षेत्र बन जाता है और कहीं कम वायु-भार का। नतीजा यह होता है कि वायु में लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में संतुलन स्थापित करने के लिए प्रकृति उच्च वायु-भार के क्षेत्र की ओर से निम्न वायु-भार के क्षेत्र की ओर तथा निम्न से उच्च वायु-भार के क्षेत्र की ओर हवाओं का दौर चलाने लगती है। इस प्रकार मंद समीर से लेकर भीषण आँधियों तक की विविध कोटि की वायु-लहरों की उपज होती है।

यह तो तुम्हें मालूम ही है कि पृथ्वी पर सब कहीं समान ताप की स्थिति नहीं है। उदाहरणार्थ, भूमध्य रेखा के आसपास के क्षेत्रों में सूर्य से प्राप्त गरमी की मात्रा सबसे अधिक होती है, जबकि ध्रुव-प्रदेशों में उसका परिमाण सबसे कम रहा करता है। परिणाम यह होता है कि दोनों क्षेत्रों के वायु-भारों में भारी अंतर बना रहता है। ऐसी दशा में विषुवत् उष्ण कटिबंध की ओर से उत्तरी और दक्षिणी शीत कटिबंधों की ओर गरम हवा की तेज लहरें बहने लगती हैं। ये वायु-लहरें उच्च वायु-भारवाले शीत प्रदेशों की वायु में भी गति पैदा कर देती हैं। इसका परिचय पुनः शीत से उष्ण प्रदेश की ओर वायु-लहरों के संचरण के रूप में हमें मिलता है। इस प्रकार वायु-संचार का एक चक्र-सा बँध जाता है। हवाओं की इस गतिविधि के वेग, दिशा-निर्धारण, आदि के निर्माण में पृथ्वी के अपने दैनिक आवर्तन की गति एवं जल-स्थलभागों के असमान रूप से गरम या ठंढा होने की क्रिया का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

प्रमुख वायुक्षेत्र और उनमें बहनेवाली हवाएँ

इन क्रिया-प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप धरातल पर बहनेवाली हवाओं के सुनिश्चित रूप, उनके प्रवाह की निश्चित दिशाएँ तथा अपने-अपने विशिष्ट प्रवाह-क्षेत्र जैसे बन गए हैं, जो कि किसी भी अच्छे भौगोलिक मानचित्र के जलवायु-संबंधी नक्शों में विस्तारपूर्वक सूचित रहते हैं। मोटे तौर पर प्रत्येक गोलार्द्ध में तीन सुनिश्चित वायु-क्षेत्र पाये जाते हैं। एक की उपज विषुवत्-प्रदेश से वायु के प्रवाह के फलस्वरूप होती है। दूसरे की ध्रुव-प्रदेशों की ओर से वायु के संचरण के फलस्वरूप और तीसरे की क्रमशः पश्चिम से पूर्व की ओर हवाओं के संचार के कारण होती है। उत्तरी या दक्षिणी गोलार्द्धों में ध्रुव से भूमध्यप्रदेश की ओर अथवा भूमध्य से ध्रुव-प्रदेशों की ओर बहनेवाली हवाएँ अपनी राह से बिचककर कुछ-कुछ दाहिने या बाएँ मुड़ जाती हैं। इसलिए समशीतोष्ण कटिबन्धों के उच्च भारवाले क्षेत्र से विषुवत् उष्ण कटिबंध के लघु भारवाले क्षेत्र की ओर प्रवाहित होनेवाली हवाएँ उत्तरी गोलार्द्ध में 'उत्तरी-पूर्वी' और दक्षिणी गोलार्द्ध में 'दक्षिणी-पूर्वी' हवाएँ बन जाती हैं। ये हवाएँ बारहों महीने नियमित रूप से समान गति से बहती हैं। प्राचीन काल ही से ये नाविकों के लिए सबसे प्रिय और अनुकूल हवाएँ रही हैं। चूँकि पुराने जमाने में इनसे तिजारती जलयात्रा में बहुत अधिक सहायता मिला करती थी, इसीसे इनका नाम 'तिजारती या व्यापारिक हवाएँ' (ट्रेड विंड्स) पड़ गया था। इन्हीं की मदद से कोलंबस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अटलांटिक महासागर को पार कर सका था और मैगेलन प्रशान्त महासागर को चीरकर अपनी पृथ्वी-परिक्रमा पूरी कर पाया था ।

अन्य मुख्य-मुख्य हवाओं के भी अपने बहाव की दिशा या अन्य विशेषताओं के अनुसार अलग-अलग नाम पड़ गए हैं । उदाहरणार्थ, समशीतोष्ण कटिबंधों से उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव-प्रदेशों की ओर दाहिने या बाएँ बिचककर बहनेवाली तेज हवाएँ क्रमशः उत्तरी या दक्षिणी 'पछुवा हवाएँ' कहलाती हैं । ये हवाएँ चालीस अक्षांश (दक्षिण) के समीप बहुत उग्र रूप धारण किए रहती हैं । अतः इन्हें 'वीर पछुआ' या 'गरजती चालीसा' (रोअरिंग फॉर्टिज) भी कहते हैं । अन्य मशहूर हवाओं में 'मानसून' नामक वे उत्तरी-पूर्वी तथा दक्षिणी-पश्चिमी हवाएँ सबसे महत्वपूर्ण हैं, जो हिन्द महासागर एवं चीनी समुद्र में उपजती हैं । ये अरब-समुद्र तथा बंगाल की खाड़ी पर से बहती हुई भारतवर्ष, चीन और समस्त दक्षिणी-पूर्वी एशिया को वर्षा का अनमोल उपहार देती हैं । इन हवाओं में मौसम के अनुसार दिशा-परिवर्तन होता रहता है, इसीलिए इन्हें 'मौसमी हवाएँ' कहते हैं । तिजारती हवाओं के ही एक विकसित रूप-सी इन हवाओं की उपज मई-जून के महीनों में दक्षिण एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका और नवंबर-दिसंबर में उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के लंबे-चौड़े स्थलभागों के तपकर अत्यंत उष्ण हो जाने के फलस्वरूप होती है । जब सूर्य भूमध्यरेखा के उत्तर में एकदम सिर पर चमकता होता है, तब दक्षिण-पूर्व एवं दक्षिण-पश्चिम से और जब वह उसके दक्षिण में सिर पर होता है, तो उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम की ओर से हवा का एक प्रबल दौर प्रचंड वेग से इन विशाल भूभागों की ओर बहने लगता है । इसी से ये प्रसिद्ध हवाएँ उपजती हैं ।

तुम्हें यह जानकर कौतूहल होगा कि पृथ्वी पर कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं, जहाँ हवाओं का मानो सर्वथा अभाव-सा रहता है ! फलतः वे क्षेत्र एकदम गुमसुम-से बने रहते हैं । ऐसा एक मशहूर क्षेत्र 'डाल्ड्म्स' या 'हॉर्स लैटीटयूड्स' (अश्वाक्षांश) नामक वह विषुवत्-प्रदेश है, जहाँ भूमध्यीय लघु भार की अत्यधिकता के कारण वायु का प्रवाह सामान्य रूप से धरातल के समानान्तर न होकर धरती से आकाश की ओर होता रहता है । यहाँ समुद्र एकदम शान्त और निश्चल-सा बना रहता है ।

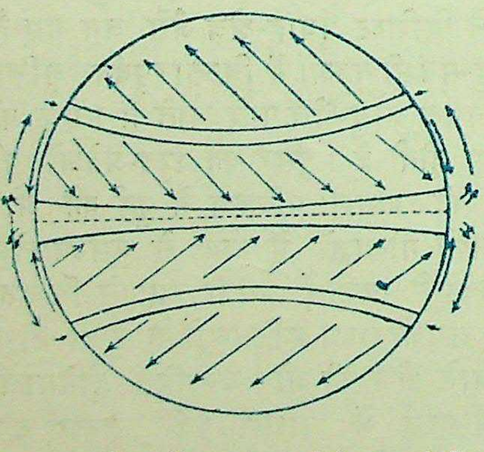

प्रस्तुत मानचित्र में ऊपर तथा नीचे ध्रुव-प्रदेशों की ओर बहनेवाली शीतधाराओं तथा मध्य में समशीतोष्ण कटिबंध से विषुवत् उष्णक्षेत्र की ओर प्रवाहित धाराओं की दिशाएँ दिग्दर्शित हैं । इनके पूर्वीय-पश्चिमी झुकाव पर ध्यान दीजिए !

आँधी, तूफान, बवंडर, चक्रवात, आदि

यह तो स्थायी और नियमित रूप से चलनेवाली कतिपय हवाओं की बात हमने तुम्हें बताई ! परन्तु इनके अलावा हवाओं के कुछ ऐसे ऊटपटाँग अनियमित रूप भी प्रायः देखने को मिलते हैं, जिनकी दिशा, समय या प्रवाह-क्षेत्र आदि का कोई ठौर-ठिकाना नहीं होता । वस्तुतः जब भी इनकी रचना में योग देनेवाले प्राकृतिक कारण जुट जाते हैं, तभी हवाओं के ये विचित्र रूप एकाएक उठ खड़े होते हैं । इन्हें हम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आँधी, तूफान, बवंडर या चक्रवात के रूप में [illegible] करते हैं । इनका वेग असाधारण होता है । जो भी क्षेत्र इनकी लपेट में आ जाते हैं, उनके लिए भारी खतरा खड़ा हो जाता है ! ऐसी चक्रवाती आँधियों या बवंडरों के दौर समुद्र पर भी उठते रहते हैं और स्थल-भागों पर भी । इन्हें 'हरिकेन', 'टाइफून', 'साइक्लोन', 'टारनेडो' आदि विविध नामों से पुकारा जाता है । जहाँ भी ये उग्र रूप में उठ खड़े होते हैं, वहाँ क्षण भर ही में महानाश की प्रलयंकर झाँकी छा जाती है ! हजारों की संख्या में पेड़ उखड़कर जमीन पर बिछ जाते हैं ! बस्तियों के मकानों की छतें उड़ जाती हैं ! समुद्र की लहरें उमड़कर तट की जमीन को बाढ़ की तरह डुबो देती हैं । जहाजों और नौकाओं के लिए तो साक्षात् काल ही उतर पड़ता है ! लोग बेघरबार हो जाते हैं ! फसलें उजड़ जाती हैं । सारांश यह कि इनकी लपेट में आने पर सब-कुछ पटरा हो जाता है ! कहते हैं, १८८६ ई० में अमेरिका के सेंट लुई नगर में आनेवाली ऐसी ही एक आँधी की गति लगभग ८०० कि० मी० प्रति घंटे के भयानक वेग तक पहुँची हुई थी ! इस आँधी ने कोई छः हजार मकानों को धराशायी कर दिया था । इसके पूर्व १८५१ ई० के तूफान में पश्चिमी द्वीप-समूह के कोई डेढ़ हजार आदमी मारे गये थे ! उस समय बंदरगाहों के जहाज उठकर तट पर फेंक दिये गये थे ! हमारे अपने देश में भी १८०४ ई० में एक बवंडर द्वारा बंगाल के कई एक गाँवों के एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो जाने और लगभग साठ हजार नर-नारियों के काल के गाल में समा जाने के उल्लेख मिलते हैं ! इस प्रकार के बवंडरों का व्यास प्रायः तीस-चालीस से लेकर कई सौ कि० मी० तक का पाया गया है और एक ही दौड़ में वे तीन-चार हजार कि० मी० तक की लम्बाई के प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट कर देते देखे गए हैं !

बवंडर कैसे उपजते हैं ?

ये बवंडर और कुछ नहीं होते, सिवाय इसके कि वे उन वायु के भँवरों के वृहत् विस्तार में फैले हुए अधिक प्रचंड रूप मात्र हैं, जो हमें गरमी की मौसम में सड़कों या खेतों पर एकाएक उठकर प्रायः चक्कर काटते हुए दिखाई देते हैं। इन चक्रवातों और प्रति-चक्रवातों में एक ही केन्द्रीय धुरी के आसपास कुंडलाकार घूमता हुआ वायु का चक्र नीचे से ऊपर की ओर बढ़ता हुआ भँवर के रूप में नाचता रहता है । चक्रवात का भँवर बाहरी हवा को समेटकर अपने केन्द्र की ओर खींचने का प्रयत्न करता है और प्रतिचक्रवात का भँवर केन्द्र की वायु को ठेलकर बाहर धकेलता रहता है । इसका कारण यह बताया जाता है कि चक्रवात के केन्द्र में वायु का दबाव अत्यंत कम होता है, जो चारों ओर समान रूप से बढ़ते-बढ़ते क्रमशः उस वायुचक्र की परिधि पर उच्चतम स्थिति में पहुँच जाता है। इस प्रकार वायु के उस समूह में भीतर से बाहर और बाहर से भीतर की ओर गति का एक प्रकार का आवर्तन-चक्र सा बन जाता है ।

जलस्तंभ--क्या और क्यों ?

जब कोई चक्रवात या बवंडर समुद्र के क्षेत्र में उठ खड़ा होता है अथवा पानी पर से होकर गुजरता है, तो वह उक्त जलराशि में भारी उथलपुथल मचाकर भीषण तूफानी लहरें जाग्रत कर देता है। वह कभी-कभी अपनी लपेट में बहुतेरा पानी आसमान में ऊँचा उठाकर एक अद्भुत दृश्य रच देता है। ऐसे ऊपर उठे हुए पानी को 'जलस्तंभ' (वॉटर स्पाउट)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

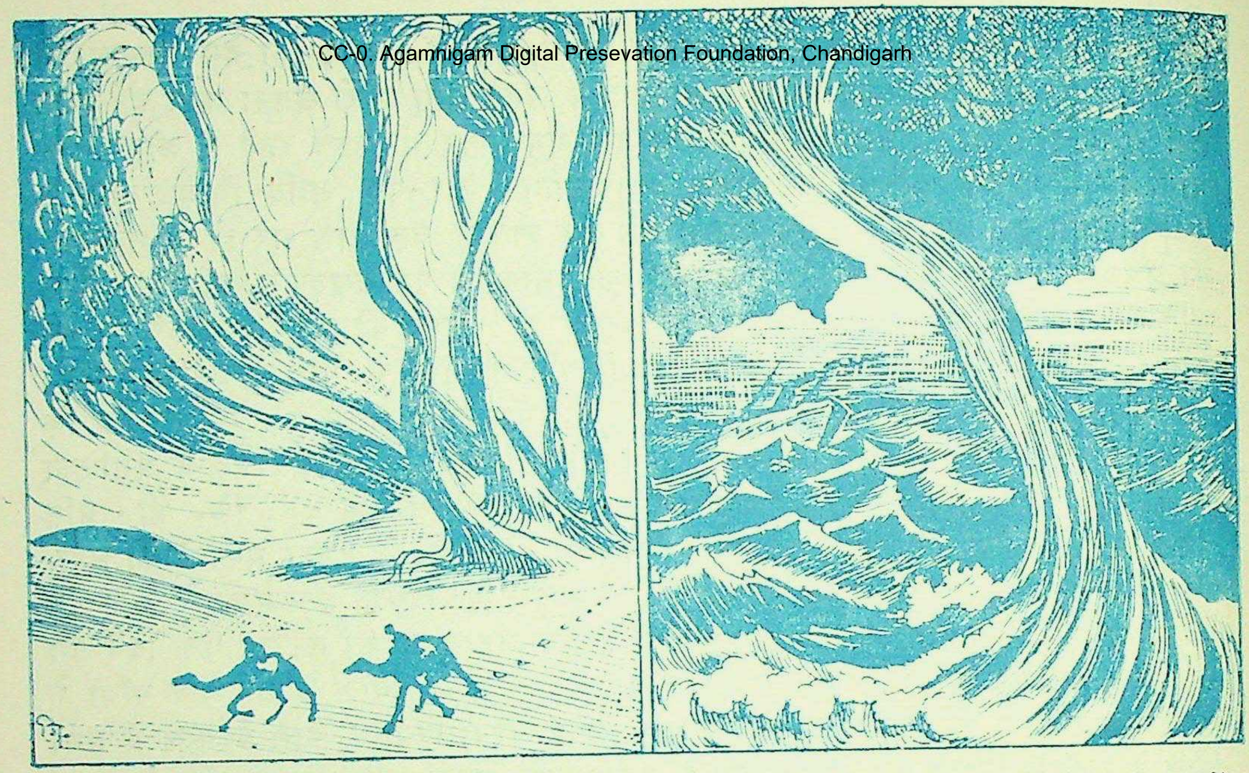

(बाईं ओर) रेगिस्तानी इलाकों में प्रायः उठती रहनेवाली भीषण आँधी एवं उसके साथ-साथ चलनेवाले धूल के बवंडरों या चक्रवातों की झाँकी ! (दाहिनी ओर) सागर पर तूफान के समय उठनेवाले जल-चक्रवात या जलस्तंभ का दिल दहला देनेवाला दृश्य !

का नाम दिया गया है। ऐसा मालूम देने लगता है, मानो नीचे समुद्र से ऊपर ठेठ आसमान के बादलों तक पानी का एक नलिकाकार खंभा-सा रच गया हो, जिसमें से होकर एक मूसलधारा के रूप में ऊपर का पानी नीचे अथवा नीचे का ऊपर चढ़-उतर रहा हो ! ये जलस्तंभ वस्तुतः ऐसे चक्रवात या बवंडर होते हैं, जिनमें जमीन पर उमड़नेवाले चक्रवातों में समेटी हुई धूल की राशि के बजाय पानी की राशि ऊपर उठी हुई होती है। भयंकर चक्र-गति से नाचते हुए ये चक्रवात जब एक से दूसरी ओर भागते हैं, उस समय यदि कोई उनकी लपेट में आ जाय, तो निश्चय ही उसकी खैरियत नहीं होती ! इनका व्यास एकाध मीटर से लेकर सौ डेढ़ सौ मीटर तक और ऊँचाई पाँच सौ मीटर या इससे भी अधिक होती है ! उनकी गति प्रति मिनट हजार डेढ़ हजार मीटर तक हो सकती है। उन्हें देखकर ऐसा भान होने लगता है, मानो जल का एक खंभा सामने भागा चला जा रहा हो, या पानी की दीवार ऊँची उठकर बेतहाशा दौड़ी चली आ रही हो ! एक बार ट्यूनिस बंदरगाह में ऐसे ही एक जलस्तंभ के टूट पड़ने से पाँच जहाज डूब गए थे ! ये जलस्तंभ सागर की सतह पर से उमड़कर, पानी की अपनी दीवार को ऊँची उठाये, तटवर्ती भूभाग पर भी दौड़े चले जाते हैं। १८५६ ई० में कलकत्ते के समीप लगभग पाँच सौ मीटर व्यास के एक चक्रवात के टूट पड़ने से तट की भूमि में एक वर्ग-किलोमीटर क्षेत्र में तालाब-सा भर गया था !

वायुमंडल की इन उग्र उत्पातमूलक हलचलों की उत्पत्ति के कारणों एवं उनके प्रकट होने की पूर्वावस्था के लक्षणों आदि के बारे में वैज्ञानिकों ने बहुत-कुछ जानकारी प्राप्त

कर ली है। अब ताप, वायु-भार आदि मौसम-संबंधी सूचनाओं के आधार पर पहले ही से इस बात के खतरे का डंका बजा दिया जाता है कि अमुक दिन अमुक समय पर अमुक दिशा से भयंकर आँधी आनेवाली है या तूफान उठनेवाला है! कुछ क्षेत्रों में तो वर्ष के निश्चित समयों पर नियमित रूप से कुछ हवाएँ उग्र रूप धारण करके एक ही ढर्रे से उठते और बहते पाई जाती हैं। फलतः उन-उन क्षेत्रों में उनके अपने-अपने अलग-अलग नाम तक षड़ गए हैं। संयुक्त राज्य (अमेरिका) के टेक्साज प्रदेश में एक भीषण सर्द आँधी प्रेरी क्षेत्र से उठकर, घोर सर्वनाश का नाटक रचते हुए, मैक्सिको की खाड़ी की ओर बहा करती है। इसे 'नार्दर्स' का नाम दिया गया है। इसी तरह अन्य एक उत्तर-पूर्वी कटीली सर्द हवा इटली में 'पर्गा' और माल्टा में 'ग्रिगेल' के नाम से पुकारी जाती है। इसके विपरीत लायन्स की खाड़ी में एक जोरदार उत्तर-पश्चिमी सर्द आँधी बहा करती है, जिसे 'मिस्ट्राल' का नाम दिया गया है। दूसरा एक भयानक शीत पवन आल्प्स पर्वतों से उठकर काले समुद्र और एड्रियाटिक सागर की ओर प्रवाहित होता है, जो 'बोरा' के नाम से पुकारा जाता है। इन सर्द हवाओं के अतिरिक्त, अफ्रीका और अरब के रेगिस्तानों में रेत उड़ाकर उथलपुथल मचा देनेवाली 'साइमून' नामक भीषण गरम आँधी, गिनी-तट और वरदी-अंतरीप को झककोर देनेवाली 'हरमाटन' नामक उष्ण हवा और इटली में उत्पात मचा देनेवाली 'सिरोको' नामक गरम वायु के भी नाम नियमित रूप से उठनेवाली ऐसी तूफानी आँधियों में गिनाए जा सकते हैं।

मौसम की जाँच

भाँति-भाँति की इन नियमित हवाओं की गतिविधि का पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु के निर्माण में गहरा हाथ है। वायुमंडल की निरंतर बदलती रहनेवाली उस दशा के निर्धारण में, जिसे हम 'मौसम' के नाम से पुकारा करते हैं, यदि सब से महत्वपूर्ण भाग कोई प्राकृतिक हलचलें लिया करती हैं, तो वे हवाएँ ही हैं! अतः वायुमंडल की गतिविधि के अध्ययन में इन हवाओं की गतिविधि के सूक्ष्म निरीक्षण और जाँच-परख का एक बहुत ही महत्व का स्थान बन गया है। इसके लिए बैरोमीटर के अतिरिक्त एनीमोमीटर (वायु-वेगमापक यंत्र) नामक अन्य एक उपयोगी यंत्र से भी काम लिया जाता है, जो बारीकी के साथ हवा के बहने के वेग की शक्ति का नाप लेता रहता है। इसके अलावा ऊँचाई तक गुब्बारे उड़ाकर विविध यंत्रों द्वारा उनसे भी यह पता लगाया जाता है कि अमुक ऊँचाई पर वायुवेग, ताप, वायुभार, आर्द्रता, आदि किस समय कितने रहते हैं! इन सब आँकड़ों को जुटाकर तालिकाएँ बनायी जाती हैं और तब प्रत्येक क्षेत्र का एक औसत मान निकाला जाता है, जिसके आधार पर किसी भी क्षण के तत्संबंधी आँकड़े मिलाकर यह भविष्य-वाणी की जाती है कि अगले दिन मौसम कैसा रहेगा!

ऋतुओं का चक्र

जिस प्रकार पृथ्वी के आवर्तन के फलस्वरूप दिन-रात के नियमित फेरबदल का नाटक देखने का मौका हमें मिलता है, उसी तरह प्रति दो-तीन महीने के बाद, क्रम से सरदी-गरमी की घट-बढ़ के रूप में दूसरे प्रकार के एक पट-परिवर्तन की भी झाँकी हमें देखने को मिला करती है। यही 'ऋतुओं का चक्र' है। ऋतुओं का यह फेरबदल क्योंकर होता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है ? क्यों गरमी के बाद जाड़ा और जाड़े के बाद पुनः गरमी की ऋतु आती रहती है ? फिर, जाड़े में दिन छोटे और रातें बड़ी क्यों हो जाया करती हैं और गरमी में पुनः इससे उल्टी बात क्यों होती है ? आओ, संक्षेप में इन रहस्यों की जानकारी तुम्हें करा दें।

यह तो तुम जानते ही हो कि पृथ्वी लट्टू की तरह अपनी धुरी पर नाचते रहने के साथ-साथ एक दीर्घवृत्ताकार कक्षा में सूर्य के आसपास लगातार परिक्रमा लगा रही है। चूँकि उसकी भ्रमण-कक्षा ठीक वृत्ताकार न होकर दीर्घवृत्त के आकार की है, अतः अनिवार्य है कि भ्रमण के दौर में कभी तो वह सूर्य के अधिक नजदीक पहुँचती है और कभी दूर जा निकलती है। इस प्रकार वर्ष में दो दिन तो ऐसे आते हैं, जब कि वह सूर्य से निकटतम स्थिति में होती है और दो दिन ऐसे भी आते हैं, जब कि उसकी स्थिति दूरतम हो जाती है। ये निकटतम और दूरतम स्थिति के दिन क्रमशः '२१ मार्च' और '२१ सितंबर' तथा '२१ जून' और '२१ दिसंबर' पर पड़ते हैं।

स्वाभाविक बात तो यह थी कि जब पृथ्वी सूर्य से दूरतम स्थिति में होती, तब प्रकाश से प्राप्त गरमी की मात्रा में अपेक्षाकृत कमी हो जाने के कारण उस पर सर्दी का दौरदौरा छा जाता। इसी तरह जब वह निकटतम स्थिति में होती, तब अधिक गरमी मिलने के कारण वह उष्णतर हो उठती। परन्तु यथार्थ में बात कुछ और ही दिखाई देती है! तुम्हें यह जानकर अचंभा होगा कि ऊपर गिनाये गए निकटतम स्थिति के दिनों में आम तौर से पृथ्वी पर गरमी-सरदी दोनों ही अपेक्षाकृत कम होते और दूरतम स्थिति के दिनों में उनकी मात्रा अपेक्षाकृत बढ़ी हुई मिलती है! कौन नहीं जानता कि जून-जुलाई में, जब कि पृथ्वी दरअसल सूर्य से दूरतम स्थिति में रहा करती है, उत्तरी गोलार्द्ध में गरमी का दौर सबसे बढ़ा-चढ़ा रहता है और उसी तरह पुनः दिसंबर-जनवरी में, जब कि पृथ्वी अपनी कक्षा में फिर से सूर्य से दूरतम स्थिति में पहुँच जाती है, इसके विपरीत घोर सरदी से हमें वास्ता पड़ता है! और दक्षिणी गोलार्द्ध में ठीक इससे उल्टी बात होती है! भला, इस अनोखे चमत्कार का रहस्य क्या है ?

पृथ्वी के अक्ष के झुकाव की करामात

उक्त चमत्कार का रहस्य इस तथ्य में छिपा हुआ है कि पृथ्वी का गोला अपनी धुरी पर एकदम सीधा न रहकर २३।।° का कोण बनाते हुए एक ओर को तनिक झुका हुआ है! उसके इस झुकाव का रुख कभी भी बदलता नहीं! सदैव ही उसके अक्ष का उत्तरी सिरा ध्रुवतारे की सीध में बना रहता है। वर्ष के भिन्न-भिन्न समय में धरातल के विविध भागों के कम या ज्यादा गरम-ठंढा होने का प्रधान कारण पृथ्वी की धुरी का यह झुकाव ही है। दूसरे शब्दों में, जाड़ा-गरमी आदि ऋतुओं के चक्र का निर्माण करने में धुरी के इस झुकाव का सबसे बड़ा हाथ है। इसी तरह दिन-रात के क्रमशः बड़े या छोटे होने का भी प्रधान कारण यही है!

होता यह है कि अक्ष के झुकाव के कारण धरती जब अपनी कक्षा में सूर्य के एक बाजू में पड़ती है, तब उसके अक्ष के उत्तरी सिरे के सूर्य की ओर झुका रहने के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिणी गोलार्द्ध के धरातलीय क्षेत्र से अधिक समय तक एकदम खड़ी प्रकाश-किरणें मिलने लगती हैं। फलतः वहाँ दिन बड़े होने लगते हैं और रातें छोटी! इसी कारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस अवस्था में उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु और दक्षिणी गोलार्द्ध में शीतकाल या जाड़े का दौरदौरा छाया रहता है ! इसके विपरीत जब पृथ्वी इससे बिल्कुल उल्टी स्थिति में सूर्य के दूसरी ओर जा पहुँचती है, तब उसका उत्तरी ध्रुववाला सिरा सूर्य से विमुख होकर परे की दिशा में झुका हुआ दिखाई देने लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि अब दक्षिणी गोलार्द्धवाले स्थान अपेक्षाकृत अधिक समय तक प्रकाश और गरमी पाने लगते हैं। फलतः दक्षिणी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु छा जाती है और दिन रात से बड़े होने लगते हैं। उधर उत्तरी गोलार्द्ध छोटे दिनों एवं बड़ी रातों वाली जाड़े की ऋतु के चक्कर में आ जाता है। इन स्थितियों में ठेठ उत्तरी या दक्षिणी ध्रुवों के आसपास के इलाके, चौबीसों घंटे या तो सूर्य के प्रकाश में रहने या फिर उससे एकदम वंचित होकर चौबीसों घंटे अंधकार में विलीन रहने के कारण, क्रम से छः-छः महीने की रात और छः-छः महीने के दिन का विचित्र अनुभव करने लगते हैं !

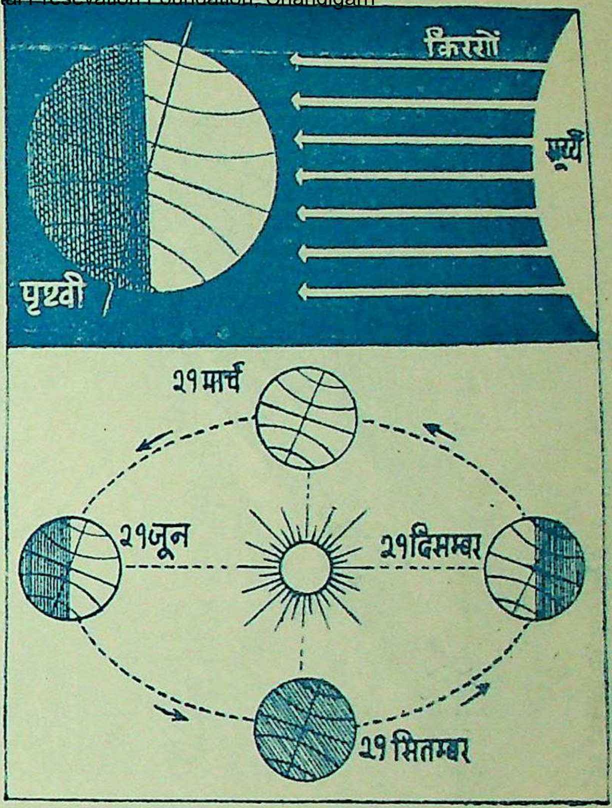

पृथ्वी की धुरी के झुकाव के कारण, वर्ष के कुछ महीनों में उत्तरी गोलार्द्ध में और कुछ महीनों में दक्षिणी गोलार्द्ध में अधिक से अधिक भाग पर अधिक से अधिक मात्रा में सूर्य की रोशनी मिलती है ! उधर अपनी दीर्घवृत्ताकार कक्षा में घूमते समय पृथ्वी वर्ष में दो बार सूर्य से निकटतम और दूरतम स्थिति में जा पहुँचती है। इन्हीं बातों से जाड़ा और गरमी की ऋतुओं के चक्र का निर्माण होता है। २१ दिसम्बर को उत्तरी गोलार्द्ध में रात और दक्षिणी गोलार्द्ध में दिन का परिमाण सब से बड़ा होता है। २१ जून को उत्तरी गोलार्द्ध में दिन और दक्षिणी में रात सब से बड़ी होती है। वर्ष में २१ मार्च और २१ सितंबर ऐसे दिन होते हैं, जब कि दिन-रात का समय समान हो जाता है।

वसंत और शरद संपात

धुरी के झुकाव के कारण ही २३॥° उत्तर और २३॥° दक्षिण में कर्क और मकर रेखा के क्षेत्र में सूर्य की किरणें वर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में सिर पर एकदम खड़ी पड़ने लगती हैं। इन दोनों रेखाओं से ज्यों-ज्यों हम उत्तर या दक्षिण में ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं, त्यों-त्यों दिन और रात छोटे-बड़े होने लगते हैं। उधर भूमध्य प्रदेश में दिन-रात का समय सदैव बराबर रहता है, क्योंकि सूर्य के लिहाज से उस प्रदेश की स्थिति सदैव समान बनी रहती है। हाँ, २१ मार्च और २१ सितंबर को क्रमशः दो दिन वर्ष में अवश्य ऐसे आते हैं, जब अपनी भ्रमण-कक्षा में पृथ्वी ऐसी स्थिति में आ जाती है कि उसका प्रत्येक भाग बारह घंटे तक सूर्य के सामने रहने लगता है ! इन दोनों दिनों को क्रमशः 'वसंत संपात' और 'शरद संपात' के नाम से पुकारा जाता है। इन दिनों में पृथ्वी के प्रत्येक भाग में दिन और रात बराबर होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जल-शक्ति द्वारा धरातल के रूप-परिवर्तन का एक उदाहरण––जल द्वारा शिलाखंडों के निचले स्तरों के कट-छँट जाने से बना १०० मीटर ऊँचा और ६० मीटर चौड़ा यह प्राकृतिक पुल संयुक्त राज्य (अमेरिका) का एक प्रसिद्ध दर्शनीय चमत्कार है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धरती की कहानी उसके निरंतर रूप-परिवर्तन की लंबी गाथा है। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार हमारी इस लीलाभूमि का मुखमंडल किसी बहुरूपिए के चेहरे की तरह नित नए स्वाँग दरसाते हुए लगातार बदलता रहा है! कभी वह जलती हुई गैसों के विशाल गोले के भेस में आग की भयावनी लपटें लपलपाते हुए सामने आया! कभी पिघली हुई धातुओं के खदबदाते हुए भीषण कड़ाहे का स्वाँग रच प्रलय का दृश्य प्रस्तुत करते दिखाई दिया! किसी समय अपने झुलसे हुए वदन पर रंग-बिरंगी चट्टानों का मुलम्मा चढ़ाने में वह लवलीन रहा! कभी एकबारगी ही त्योरियाँ चढ़ा, बात की बात में सारा साज-सिंगार उलट-पलट देते हुए भी हमने उसे देखा!

धरती के रूप-परिवर्तन की लीला संतत जारी है

धरती के फेरबदल की लीला केवल बीते युगों की कहानी नहीं। आज भी प्रति क्षण उसके प्राङ्गण में एक ओर विखंडन और विध्वंस के रूप में क्षय की लीला, तो दूसरी ओर पुराने खँडहरों पर नवीन सृष्टि के अनुष्ठान का महायज्ञ अनवरत रूप से चालू है। प्रतीत होता है कि मानो कलाकार प्रकृति करोड़ों-अरबों वर्षों से धरती की रचना में कार्यरत रहकर भी अब तक उसकी मुखाकृति में अपने मनोराज्य की आदर्श छवि उतारने में सफल नहीं हो पाई है। तभी तो वह उसे बारंबार गढ़ती और काटती, छीलती और तराशती, एवं बना-बनाकर बार-बार उसे बिगाड़ती-सुधारती रहती है! विध्वंस और निर्माण का यह अनूठा दोहरा कार्य वह किस तरह कर रही है? कौन-से वे औजार हैं, जिनसे कि इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

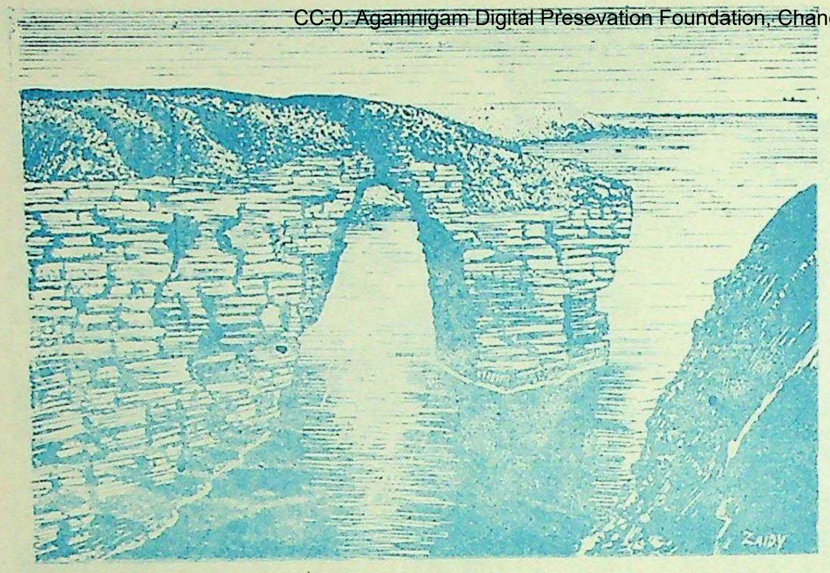

पानी के ऊपर तनी हुई प्राकृतिक मेहराब के रूप में दिखाई दे रही यह समुद्र-तटवर्ती चट्टान जलशक्ति द्वारा स्थल-भंजन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसे यह शक्ल तट के साथ निरंतर जूझती रहनेवाली समुद्री लहरों से मिला है, जिन्होंने बरसों उसके साथ टक्कर लेकर इस प्रकार उसे चाट डाला है।

अनुष्ठान में वह मदद लेती है ? आओ, इस प्रकरण में इसकी मनोरंजक कहानी तुम्हें संक्षेप में सुना दें !

धरातल की तोड़-मरोड़ और पुनर्रचना का महायज्ञ

तुमने वर्षाकाल में नदी-नालों की बाढ़ तथा गरमी और जाड़े के दिनों में आँधी-तूफान जैसे उत्पातों के कारण होनेवाले धरातल के रूप-परिवर्तन के आकस्मिक प्राकृतिक दौरदौरों पर कभी न कभी अवश्य ही ध्यान दिया होगा ! किस तरह हजारों-लाखों टन मिट्टी और बालू, पानी अथवा हवा द्वारा बहाई या उड़ाई जाकर, दूरी तक एक से दूसरे स्थान पर जा पहुँचती है ! किस तरह बड़े-बड़े गिरिपृष्ठ और कगार कटकर या धँसकर अपनी जगह पर से गायब-से हो जाते हैं और जहाँ कभी ऊँची भूमि रही, वहाँ खंदक और गड्ढे दिखाई देने लगते हैं तथा जहाँ खाइयाँ रहीं, वहाँ कंकड़-पत्थर और मिट्टी-रेत के अंबार लग जाते हैं ! ये सब हमारी जानकारी की नितप्रति की सामान्य बातें हैं। न केवल आँधी-तूफान और बाढ़-सैलाब जैसी इन नियमित कुदरती दुर्घटनाओं ही में, बल्कि भूकम्प, ज्वालामुखीय हलचल, समुद्री विस्फोट, आदि विविध अनियमित प्राकृतिक उत्पातों में भी पृथ्वी के भ्रूभंग की अनेक सुपरिचित झाँकियाँ प्रायः हमें देखने को मिलती रहती हैं !

परन्तु यह तो धरती माता के साज-सिंगार बदलने का केवल एक ही पहलू हुआ, जो अपने उग्र रूप के कारण बरबस हमारी निगाह जब-तब खींचता रहता है। इधर उसकी क्रियाशीलता और परिवर्तनमूलक गतिविधियों का एक पहलू और भी है। इसकी चाल-ढाल इतनी गूढ़ और मंद है कि सहसा उसके प्रति हमारा ध्यान नहीं जा पाता ! उसका पता गौर से देखने पर तब कहीं लगता है, जबकि दस-बीस या सौ-पचास बरस पहले जहाँ कभी कोई चट्टान सीना ताने खड़ी दिखाई दिया करती थी, वहीं अब पत्थरों का एक ढेर या ढूह या अजीब शक्ल के कुछ कंकालवत् भग्नावशेष मात्र देखने को मिलते हैं ! जहाँ कभी समुद्र की लहरें थपेड़े मारा करती थीं, वहाँ बालुकाराशि की एक विस्तृत चादर बिछी दिखाई देने लगती है ! जिस जगह कभी कोई सरिता बल खाती हुई बहती थी, वहाँ केवल एक सूखी-सी घाटी या रेत-बालू का अंबार मात्र दृष्टिगत होने लगता है ! यह सब कैसे होता है ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस लीला में भाग लेनेवाली प्रमुख शक्तियाँ

पृथ्वी के रूप-परिवर्तन की यह लीला चुपचाप होती रहती है। इस लीला-नाटक में भाग लेनेवाली प्राकृतिक शक्तियाँ एक ओर उसे तिल-तिल कण-कण काट-छाँटकर और दूसरी ओर कण-कण तिल-तिल पुनर्रचना करती हुई सदियों से हमारी इस लीलाभूमि के विकास के महायज्ञ में योग दे रही हैं! भूवैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी के रूप-परिवर्तन में भाग लेनेवाली इन प्राकृतिक शक्तियों को मोटे तौर पर दो समूहों में बाँटा जा सकता है। पहले समूह में वे शक्तियाँ आती हैं, जिन्हें 'वाह्य' शक्तियों की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। इनकी हलचल चिप्पड़ की ऊपरी सतह तक ही सीमित रहती है। उनका क्रिया-चक्र भूपृष्ठ पर जल, वायु, तुषार, सूर्य की गरमी एवं जैव पदार्थों की भौतिक-रासायनिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप होनेवाले विखण्डन एवं पुनर्निर्माण के दोहरे नाटक के रूप में अभिव्यक्त होता रहता है। दूसरे समूह में पृथ्वी के गोले की भाँति-भाँति की आन्तरिक हलचलों, ज्वालामुखीय और भूकंपीय गतिविधियों एवं चट्टानों के परावर्तन जैसी क्रियाओं से संबद्ध शक्तियों का समावेश है। इन्हें 'आन्तरिक' शक्तियों का नाम दिया जा सकता है। इन क्रिया-चक्रों की गतिविधियों में पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति, सूर्य और चंद्रमा के साथ होनेवाले उसके खिचाव-तनाव तथा आवर्तन और परिभ्रमण-रूपी उसकी दैनन्दिन और वार्षिक गतियों का भी गहरा हाथ माना जाता है।

इस प्रकार न जाने कितने करोड़ या अरब वर्षों से ये शक्तियाँ पृथ्वी के रूप-निर्माण और विकास के लिए कशमकश कर रही हैं, जिसके फलस्वरूप उसका चेहरा निरंतर बदलकर नए-नए स्वाँग दरसाता रहता है। इनमें बाहरी शक्तियाँ (जो अपनी ताकत सूर्य से पाने

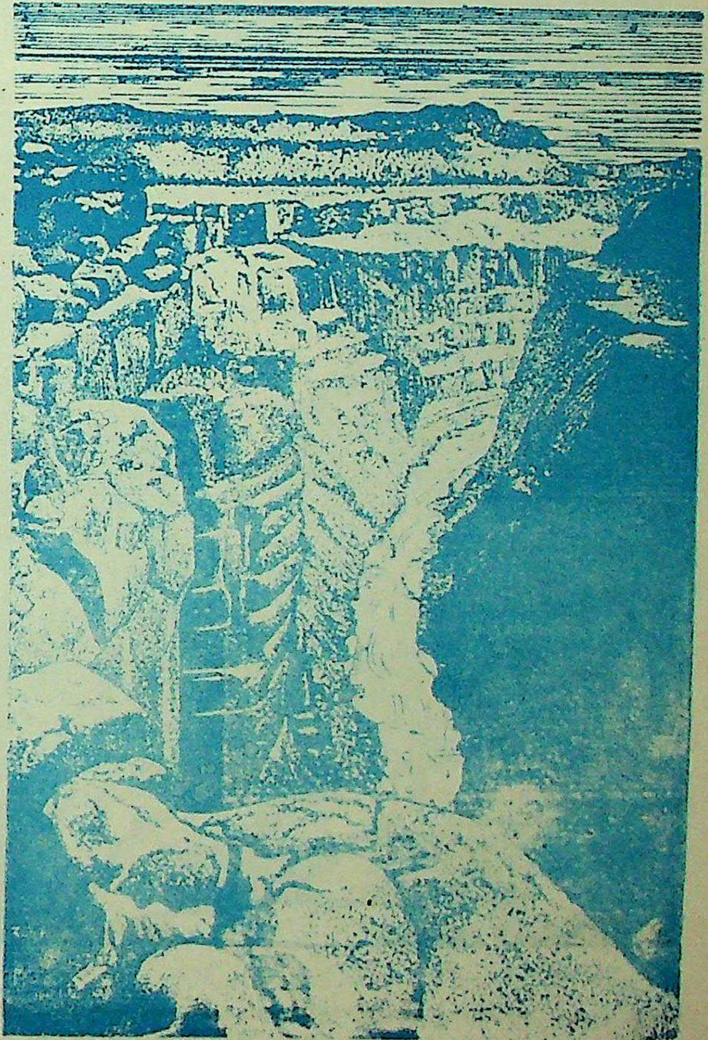

ऊँचे कगारों से युक्त लगभग डेढ़ किलोमीटर गहरी अमेरिका की 'ग्रांड केनियन' नामक यह घाटी कोलोरेडो नदी के कटाव द्वारा निर्मित हुई है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के कारण 'सूर्यजनित' कहा जा सकता है) धरती के स्थल-भाग को विखंडित कर उसे मानो समतल या सपाट बना देने पर उतारू रहती हैं ! और भीतरी शक्तियाँ (जिन्हें भूगर्भ से ताकत प्राप्त होने के कारण 'भूजनित' कहा जा सकता है) मानो पूर्वोक्त बाह्य शक्तियों के विध्वंसात्मक कार्य को हर प्रकार से विफल कर, भूपृष्ठ के स्थल-भाग को नया-नया रूप देने के लिए कटिबद्ध दिखाई देती हैं ! इन दो प्रकार के प्राकृतिक प्रभावों की आपसी खींचतान द्वारा संस्थापित संतुलन पर ही हमारी लीलाभूमि का भाग्य टिका हुआ है। जिस दिन भी यह संतुलन बिगड़ खड़ा होगा, अर्थात् उपर्युक्त शक्ति-समूहों में से कोई एक दूसरे को मात देकर उसकी हलचलों को एकदम दबोच देगा, बस उसी दिन धरती के विकास-क्रम में व्यतीपात की संकटपूर्ण वेला आ खड़ी होगी !

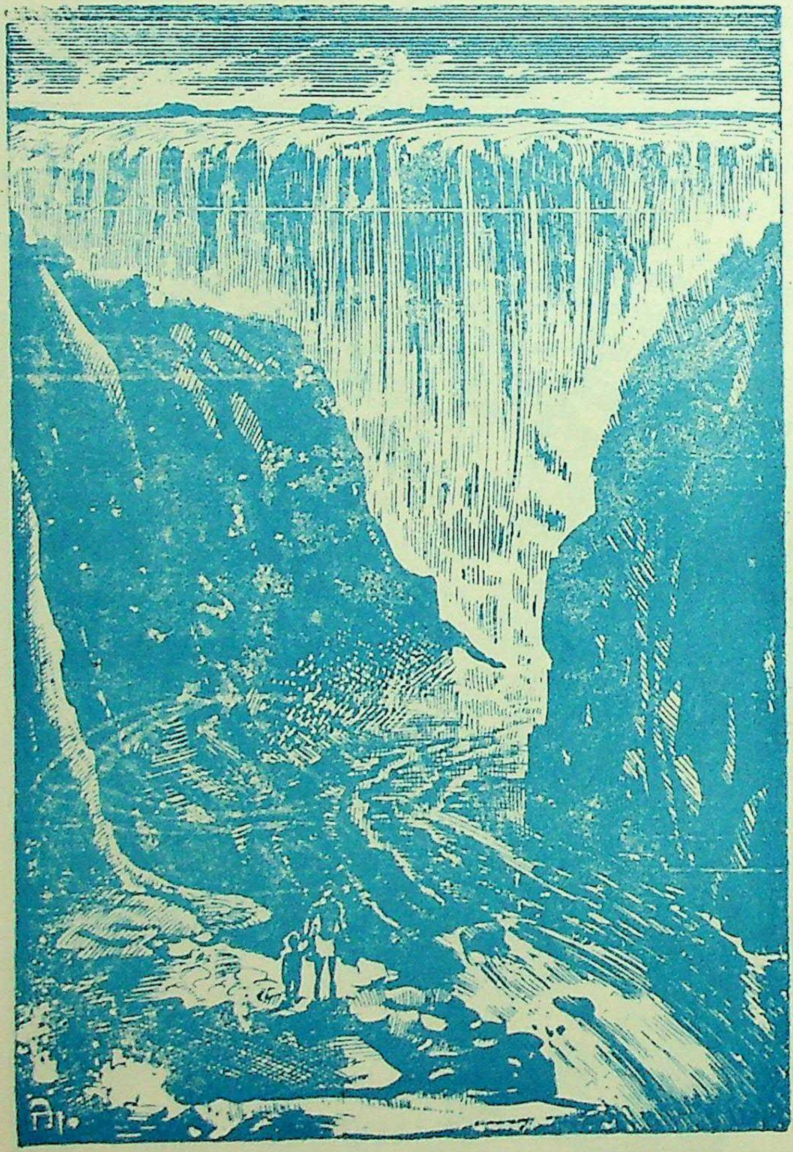

भूपृष्ठ के रूप-निर्माण में संलग्न जल-शक्ति की क्षमता का अन्य एक उदाहरण : अफ्रीका के इस प्रसिद्ध जल-प्रपात का निर्माण जेम्बेसी नदी की लगभग सौ मीटर की कुदान के फलस्वरूप हुआ है। नदी की V आकृति की घाटी एवं S आकृति के प्रवाह-मार्ग पर ध्यान दीजिए !

जल का क्रिया-कलाप

आओ, अब भूपृष्ठ का भाग्य निर्माण करनेवाले प्रकृति के इन भूतों के अपने-अपने कारनामों का अलग-अलग बखान करें। इस क्रम में सबसे पहले हम जल के क्रिया-कलापों को लेंगे, जो कि पृथ्वी के चेहरे को बनाने-बिगाड़नेवाली प्रधान प्राकृतिक शक्ति है।

जल की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह ऊँची से नीची सतह की ओर बहकर अपना धरातल सदैव समान करने का प्रयत्न करता रहता है। उसका एक गुण यह भी है कि जिस सतह पर से वह गुजरता है, उसे रगड़कर एवं रासायनिक क्रिया द्वारा विखंडित और विदीर्ण करके सपाट बनाने से भी वह नहीं चूकता ! भूपृष्ठ की चट्टानों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का क्षय दो प्रकार से होता है––एक तो विभिन्न शक्तियों के प्रहार से होने वाले 'विखंडन' द्वारा; दूसरे, उन्हीं शक्तियों के प्रभाव से उत्पन्न 'रासायनिक विश्लेषण' द्वारा भी ! जल-शक्ति भूपृष्ठ के क्षय के इन दोनों ही प्रकारों पर अपना बोलबाला स्थापित किए हुए है। वह चट्टानी पदार्थ के 'विखंडन' में भी योग देती है और रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा उसकी 'विकृति' में भी !

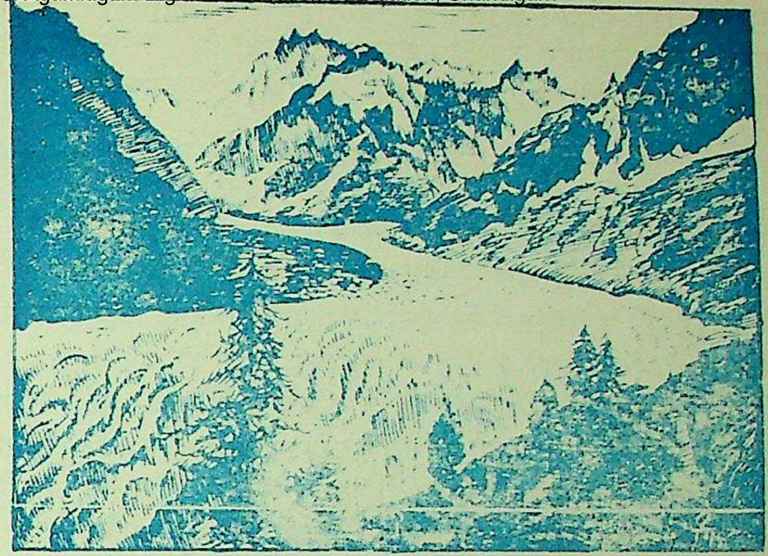

आल्प्स-पर्वतमाला के अंचल में क्रियाशील एक हिमानी :: अपनी रगड़ द्वारा प्रवाह-क्षेत्र को घिसकर सपाट बनाने और छोटे-बड़े शिलाखंडों को अपनी पीठ पर लादकर कहाँ से कहाँ पहुँचा देनेवाली ये हिम-नदियाँ भी भूपृष्ठ के रूप-परिवर्तन में गहरा हाथ बँटाती हैं !

पहले हम विखंडन को ही लें ! तुमने देखा होगा कि वर्षा की एक नन्हीं-सी बूँद भी जब आसमान से टपककर धरती पर कहीं गिरती है, तो उस स्थान पर वह अपने प्रभाव की छाप अंकित किए बिना नहीं रहती। यदि धरातल पथरीला या कड़ा हुआ तब तो उसका प्रभाव अत्यन्त सूक्ष्म और अदृष्ट-सा होता है, परंतु यदि गिरने की जगह मिट्टी की मुलायम सतह हुई, तो वहाँ लघु रूप में ठीक वैसा ही एक नन्हा-सा गड्ढा बन जाते देख पड़ेगा, जैसा कि बृहत् रूप में आसमान से बमों के गिरने पर धरती में बन जाया करता है ! जब एक नन्हीं-सी जल-बूँद का यह हाल हो, तो उस अमित जल-राशि द्वारा होनेवाले 'स्थल-भंजन' और 'विखंडन' की करतूतों का क्या कहना, जो कि मूसलधार वर्षा द्वारा अपनी चोट से निरंतर कुरेदती-रगड़ती हुई, पृथ्वी के स्थल-खंडों को धो-धोकर प्रति वर्ष सागर की ओर बहाये चली जाती है ! कहा जाता है कि मरुक्षेत्रों की कुछ मिलिमीटर जैसी नगण्य वर्षा से लेकर हिमालय-क्षेत्र की सालाना हजार-डेढ़ हजार सेंटीमीटर बरसात तक की पृथ्वी की कुल वर्षा-मात्रा का औसत वार्षिक मान ७२।। सेंटीमीटर के लगभग निकलता है ! इसका अर्थ यह है कि भाप के रूप में वापस आसमान की ओर उड़ जानेवाली तथा जमीन द्वारा सोख ली जानेवाली कुल जल-राशि को निकाल देने के बाद भी कोई सैंतीस हजार घन-किलोमीटर पानी प्रति वर्ष ऐसा बच रहता है, जिसे कि स्थलभाग पर से बहकर निरंतर सागर की ओर जाना पड़ता है ! इस अतुलित जल-राशि के बहाव का परिणाम भूखंड पर क्या होता होगा, इसका अंदाज तुम स्वयं ही लगा लो। यह जल-राशि पहले तो जिधर जगह मिल जाय उधर छोटे-छोटे परनालों और नालों के रूप में बहकर, और अंत में उन सबके समागम से विशाल नदियों का रूप धारण कर, सामने पड़नेवाली तमाम बाधाओं और अड़चनों को चकनाचूर करते हुए, अपने चिर लक्ष्य सागर की ओर अग्रसर होती है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस यात्रा के दौरान धरती के वक्षःस्थल को लगातार कुरेदकर छीलन-छालन का जो पदार्थ बहा-बहाकर वह समुद्र तक ले जाती है, उससे हमारी इस लीलाभूमि की शक्ल-सूरत में स्वभावतः न जाने कितना उलटफेर हो जाता है ।

नदियों, झीलों, आदि के निर्माण की कहानी

भूपृष्ठ का रूप-परिवर्तन करने की अपनी इस जादुई शक्ति का प्रयोग वरुणदेव भाँति-भाँति से करते चले आए हैं । तुम्हें मालूम ही है कि अपने शैशवकाल में पृथ्वी पर न तो नदी-नाले थे, न पहाड़ और मैदान ! आरंभ में यह पृथ्वी केवल आग के एक धधकते हुए गोले जैसी थी, जिसके ठंढा होने पर उसका चिप्पड़ बन पाया और महासागर तथा महाद्वीपों की रूपरेखाएँ निखरीं ! धरती के इतिहास में जब पहले-पहल पानी बरसा होगा, तब उसके बहाव के लिए कोई पूर्वनिर्मित प्रणालियाँ और नालियाँ तथा नदियों के विशाल मार्ग तैयार नहीं रहे होंगे । उनका विस्तृत जंजाल जल को अपनी करतूतों से स्वयं ही धीरे-धीरे रचना पड़ा होगा । इस कार्य में लाखों नहीं, करोड़ों वर्ष लगे होंगे ! जब वर्षा-जल धरती द्वारा सोख लिए जाने के बाद भी काफी बच रहा होगा, तो स्वभावतः वह उस ओर बह चला होगा, जिस ओर उसे सरलता से मार्ग मिला होगा । इस काम के लिए प्रायः दो गिरिपृष्ठों के बीच की उपत्यका अथवा कोई लंबी-चौड़ी दरार स्वाभाविक प्रवाह-मार्ग बन गई होगी । इस प्रकार असंख्य नालों और झरनों के रूप में बह निकलने-वाला वह वर्षाजल इकट्ठा होकर एक विशाल धारा का रूप धारण करके निचान की ओर क्रमशः आगे बढ़ने लगा होगा । इन आदि उपत्यकाओं या घाटियों में बहकर अपनी राह की साधारण अड़चनों को वेग से काँटती-छाँटती हुई जो धारा पृथ्वी के मुख्य जल-भंडार--सागर--की ओर बढ़ती चली गई होगी, वही आगे चलकर लोगों द्वारा 'नदी' के नाम से पुकारी जाने लगी होगी । उधर कतिपय ऐसे भी स्थल रहे होंगे, जहाँ ऐसी लाख कोशिश करने पर भी पानी को समुद्र की ओर बढ़ने का मार्ग नहीं मिल पाया होगा और वह रुँधकर आस-पास की ऊँची दीवारों के बीच घिर गया होगा ! यही घिरी हुई

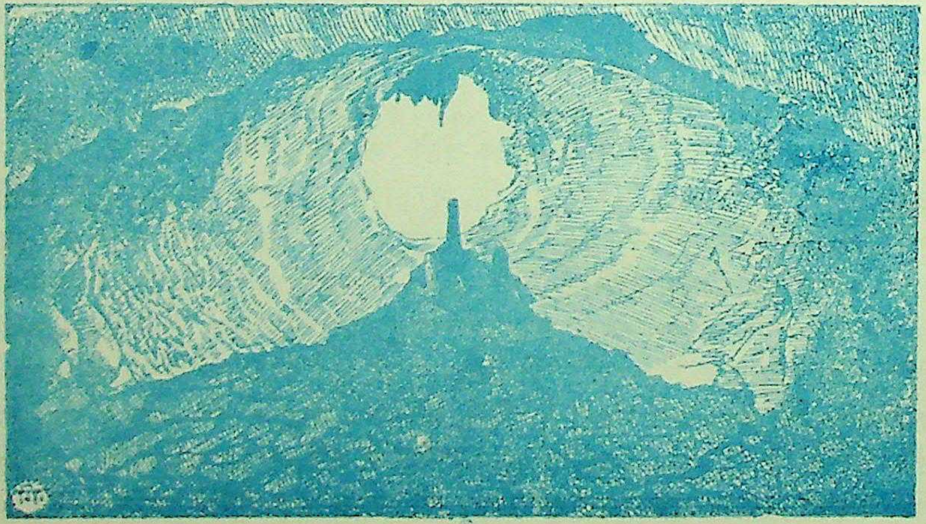

पाताली जल की करतूत से निर्मित एक कंदरा का भव्य दृश्य--ऐसी बहुतेरी कंदराएँ संसार के विभिन्न भागों में देखने को मिलती हैं, जो धरती के भीतर जलस्रोतों द्वारा नीचे ही नीचे चट्टानों को खोखला करके धीरे-धीरे बनाई गई हैं ।

जल-राशि 'झील' बन गई होगी ! कभी ऐसा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी हुआ होगा कि राह में किसी भारी पहाड़ के धँस पड़ने से एक स्थायी बाँध बँध जाने के कारण कोई नदी भी झील में परिणत हो गई होगी। कभी किसी झील की कोई दीवार टूट जाने से उसका जल नदी का रूप लेकर पुनः बह निकला होगा ! इन नदियों को अपने प्रवाह-मार्ग में ऐसे भी अनेक स्थल मिले होंगे, जहाँ धरती का स्तर एकदम धँस जाने के कारण जलधारा को वेग के साथ नीचे गिरने को विवश होना पड़ा होगा। इस प्रकार वे अनूठी रचनाएँ निर्मित हुई होंगी, जिन्हें आज हम 'जल-प्रपात' के नाम से पुकारते हैं।

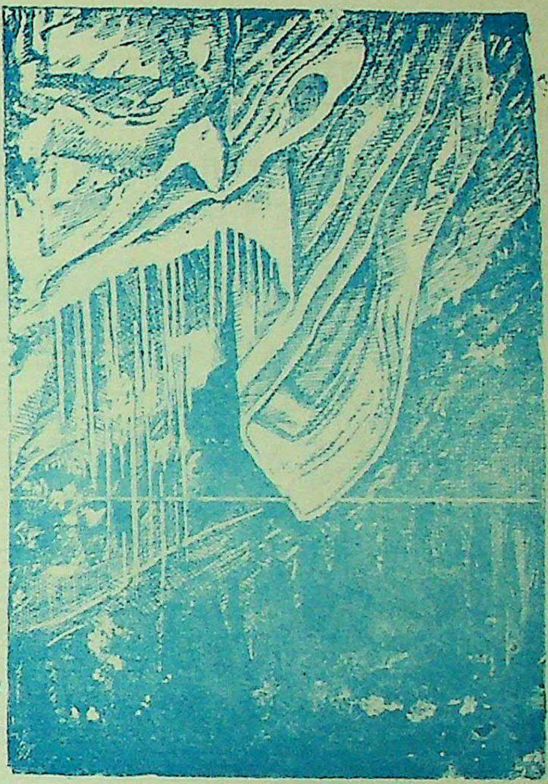

आभ्यन्तरिक जल द्वारा निर्मित कंदराओं में, प्रायः छत से लटकती या फर्श से ऊपर उठी हुई इस प्रकार की चूने की 'स्टेलेक्टाइट' और 'स्टेलेग्माइट' नामक पाषाण-रचनाओं की भव्य झाँकी निखरी रहती है ! ये रचनाएँ चट्टानी द्रव्य पर जल की रासायनिक क्रिया द्वारा उत्पन्न होती हैं।

जब ये धाराएँ पहाड़ों से नीचे उतरकर अधिक समतल इलाके में प्रविष्ट हुई होंगी, तो फैलने की ज्यादा गुंजाइश पाकर उनका पाट बढ़ा होगा। दूसरी ओर वेग के मंद पड़ने के कारण तटवर्ती भूभागों में बहाकर लायी गयी मिट्टी, बालू, बजरी आदि की तह पर तह बिछती चली गयी होगी। फलस्वरूप कछार का क्षेत्र बनना शुरू हुआ होगा। इससे घाटियों का सारा स्वरूप ही बदल गया होगा। इस प्रकार विखंडन और स्थलभंजन के अपने अब तक के विध्वंसात्मक कार्य के साथ-साथ जल ने स्थल की पुनर्रचना के रचनात्मक अनुष्ठान के प्रति भी हाथ बढ़ाया होगा। इसकी पराकाष्ठा हुई होगी अंत में सागर में मिलते समय संगमस्थल पर बहाकर लायी गई सामग्री द्वारा विरचित उन त्रिकोणाकार दलदली मैदानों की सृष्टि में, जिन्हें हम 'डेल्टा' के नाम से पुकारते हैं।

घाटी-निर्माण

हम बता चुके हैं कि नदियों को कहीं भी बने-बनाये रास्ते नहीं मिले थे। उन्होंने स्वयं ही अपने-अपने प्रवाह-मार्ग बनाये हैं। इस तरह की जो घाटियाँ नदियों द्वारा बनाई गई हैं, वे प्रायः अंग्रेजी के अक्षर V की शक्ल की हैं। नदियाँ अपनी इन घाटियों को एक ओर तो निरंतर गहरी बनाते रहने और दूसरी ओर उन्हें चौड़ी करते रहने में ही सदैव प्रवृत्त होती हैं। प्रायः जिस ओर के कगार के शिलास्तर कमजोर पड़ते हैं, उसी ओर जल अपने भंजन-कार्य में विशेष सफलताएँ पाता है। उसके निरंतर आघात और थपेड़ से आहत होकर आखिर एक दिन ये चट्टानें ढीली पड़ जाती हैं। उनका संयोजक द्रव्य पानी में घुलकर नष्ट हो जाता है एवं चट्टानों की दरारों को वह खुली छोड़ देता है। कालान्तर में,

घर्षण और कटाव की शक्तियों के आगे लथड़कर उस कगार का बहुतेरा अंश या तो कट-कटकर सामान्य रजकणों का रूप ले पानी के हवाले हो जाता है, या फिर एकबारगी ही ढह पड़कर वह नदी के मार्ग में रोड़ा बन जाता है और बाढ़ के पानी की तेज धार में पड़कर आखिरकार सदा के लिए मिट जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस बीच सूर्य की गरमी, वायु, वर्षा आदि अन्य प्राकृतिक शक्तियाँ भी अपना काम पूरा करती हैं और वह कगार, जो कि कभी सीधी दीवार की तरह टटार खड़ा था, अब एक ढालू रचना की शक्ल ले लेता है। जो दशा एक ओर के कगार की होती है, वही समय बीतते दूसरे की भी होती है। फलतः नदी की घाटी का उक्त आकार V अक्षर का-सा हो जाता है। इस प्रकार की V -आकृति-वाली नदी-घाटियों का प्रवाह-मार्ग प्रायः एकदम सीधा न होकर अंग्रेजी के अक्षर S की आकृति का वक्र हो जाता है। इस प्रकार के घुमाव में कभी-कभी एक ओर का कगार तो ढालू हो जाता है और दूसरी ओर का एकदम सीधा खड़ा बना रहता है। ऐसी घाटियों में अमेरिका की येलोस्टोन नदी की घाटी का उदाहरण लिया जा सकता है। ज्वालामुखीय आग्नेय चट्टानों को काट-छाँटकर बनी हुई यह घाटी ढाई सौ से चार सौ मीटर तक गहरी है। इसके निर्माण में कोई डेढ़ लाख वर्षों का समय लगा होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है! इसी प्रकार के घाटी-निर्माण के अन्य एक अद्भुत नमूने के रूप में हम अमेरिका के

दक्षिणी अमेरिका में पाया गया हिलने-डुलनेवाली चट्टान का यह नमूना वायु की करतूतों का चमत्कार है, जिसने अपनी रगड़ से इस शिला के कलेवर को छीलछाल-कर उसे इस तरह की बेतुकी संतुलित स्थिति में छोड़ दिया है! लगभग एक हजार टन वजन के इस पाषाण-खंड को एक बच्चा भी हिला सकता है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरिजोना प्रदेश की कोलोरेडो नदी की 'ग्राण्ड कैनयन' नामक डेढ़ किलोमीटर गहरी घाटी का भी उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं। यह प्रदेश एक वर्षाहीन क्षेत्र है। अतः यहाँ नदी तो अपने प्रवाह-मार्ग को अधिकाधिक गहरा करने के प्रयत्न में आसपास के कगारों के तले की चट्टानों को चाटती हुई निरंतर नीचे बैठती चली गई है और उसके कगारों की दीवारें वर्षाजल के भंजन-कार्य के अभाव में प्रायः किले की प्राचीर की तरह हजारों मीटर तक ज्यों-की-त्यों ऊँची टटार ही खड़ी रह गई हैं!

घाटी की चौड़ान बढ़ जाने पर जब उसका एक किनारा दूसरे किनारे से काफी दूर हट जाता है, तब नदी अपने कगारों का आश्रय छोड़कर बीच के समतल मैदान में साँप की तरह बल खाती और इठलाती हुई सागर की ओर बढ़ने लगती है। परन्तु वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते उसके द्वारा बहाकर लायी गई मिट्टी मुहाने पर के समुद्र को पाटने के प्रयत्न में लग जाती है। जब उस मिट्टी की राशि इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसके कारण नदी का प्रवाह रुँधने लगता है, तब जलधारा प्रायः दो शाखाओं में बँट जाती है और उन शाखाओं के बीच के त्रिभुजाकार क्षेत्र में बहाव की मिट्टी की जमावट से एक नया भूभाग रचा जाने लगता है। यह भूक्षेत्र समुद्र की ओर बढ़ते हुए लगातार उसे पाटने का प्रयत्न करता रहता है। यही भूगोल की शब्दावली में 'डेल्टा' कहा जाता है!

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रबल ज्वार-भाटा से उत्पन्न विशेष परिस्थितियों के कारण नदियों के मुहानों पर मिट्टी की वह जमावट नहीं हो पाती, और फलतः नदी का मुहाना बड़े-बड़े जहाजों के आवागमन के लिए चौड़ी आखात के रूप में खुला बना रहता है। ऐसा मुहाना 'इस्चुएरी' कहलाता है।

हिमानी या तुषार-नदी

पृथ्वी के जो भाग अति शीत के कारण सदैव बर्फ से ढके रहते हैं, उनकी बर्फ की चादर गरमी में पिघलकर यदि कुछ पतली पड़ती है, तो जाड़े में तुषारपात के कारण वह फिर से मोटी भी हो जाती है। जब हिम की चादर की मुटाई इतनी बढ़ जाती है कि वजन के मारे वह अपने स्थान से नीचे की ओर खिसकने लगती है, तभी 'हिमानी' या 'ग्लेशियर' का जन्म होता है। इस प्रकार हिमानी एक तरह की बर्फ की नदी जैसी होती है। परन्तु इन बर्फ की नदियों की चाल अपेक्षाकृत बहुत मंद होती

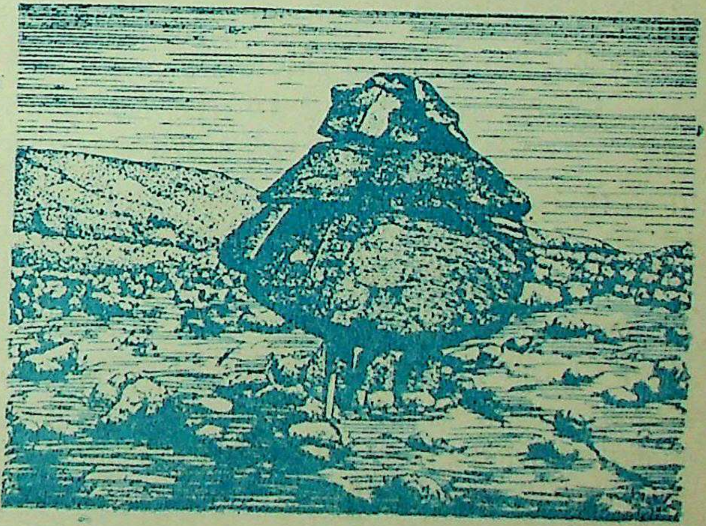

हिमानी की करतूतों का एक नमूना—एक स्थानान्तरित शिलापिण्ड! सिलूरियन युग की चट्टान का यह शिलापिण्ड जिनखड़े शिला स्तंभों पर टिका हुआ है, वे हैं बाद के कार्बोनिफैरस युग के। यह कैसे? बात यह हुई है कि किसी पुराकालीन हिमनदी द्वारा यह भारी चट्टान अपने मूल स्थान से हटाकर यहाँ पहुँचा दी गई है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है । अक्सर ये हिम-नदियाँ प्रति दिन आधे या पौन मीटर से अधिक आगे नहीं खिसकतीं । हाँ, विशेष परिस्थितियों में प्रति दिवस पंद्रह-बीस मीटर तक आगे बढ़ जानेवाली हिमानियाँ भी पाई गई हैं । इनका विस्तार प्रायः एक कि० मी० से लेकर चालीस-पचास या सौ किलोमीटर तक का हो सकता है और गहराई भी कुछ एक मीटर से लेकर कभी-कभी हजारों मीटर तक की मिलती है ।

धरातल के रूप-परिवर्तन में हिमानी का योगदान

ये हिमानियाँ धरातल के रूप-परिवर्तन में किस प्रकार का योग देती हैं ? इसका बहुत ही उपयुक्त उत्तर एक लेखक ने यह कहकर दिया है कि हिमानी इस धरती के उन्नत भागों के विखंडन और समतलीकरण के हेतु प्रकृति द्वारा प्रयुक्त एक साथ ही किसान के हल, लोहार की रेती और बर्फ पर घसीटी जानेवाली बिना पहियों की स्लेज-गाड़ी का सम्मिलित रूप जैसी होती है ! वह हल की तरह अपनी खिसकती हुई हिमशिलाओं की रगड़ से प्रवाह-मार्ग की धरती को गहराई तक खोदकर उसे उलट-पलट डालती है । रेती की तरह आसपास के कगारों को रगड़-रगड़कर और छील-छालकर बड़े-बड़े गिरिपृष्ठों को विदीर्ण कर देती है और स्लेज-गाड़ी की तरह आसपास से लुढ़ककर उसकी पीठ पर आ लदनेवाले अथवा धकेले जाकर राह में पड़नेवाले बड़े-बड़े शिलाखंडों और गोलमटोल पत्थरों की वृहत् राशि को उठाकर कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया करती है ! इस प्रकार दानवों की क्षमता रखनेवाला वरुणदेव का यह विखंडन-यंत्र पृथ्वी के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में चुपचाप अपना काम किया करता है !

हिमानियों की संख्या पृथ्वी के हिममंडित प्रदेशों में आज भी शायद हजारों तक पहुँचेगी ! पुराकाल में भी, जबकि पृथ्वी शीतयुग की बर्फीली लपेट में आकर एक मोटी हिमपर्त से ढक गई थी, लाखों की संख्या में धरातल पर उपजकर उसके रूप-निर्माण के कार्य में इन्होंने बढ़कर हाथ बँटाया था ! इसके साक्षी वे अनेक शिलापृष्ठ हैं, जिन पर शीतयुगों के हिमावरण की रगड़ तथा खरोंच के सुस्पष्ट चिन्ह देखने को मिलते हैं । उधर पर्वतों से दूर यहाँ-वहाँ किसी मैदान के बीच खड़े हुए ऐसे अनेक भारी-भरकम शिलापिण्ड या गोलमटोल पत्थरों के ढूह भी इस बात की याद दिलाते हैं कि वे कभी बर्फ के खिसकते हुए अंबार की पीठ पर लदकर अपने पर्वतीय जन्मस्थान से इतनी दूर आ पहुँचे थे ! मूलतः V-आकृति वाली अनेक घाटियाँ भी, जो कि आज हमें U-आकृति की देखने को मिलती हैं, हिमानियों की पूर्वकालीन करतूतों ही की यादगार हैं ! हिमानियाँ महान् नदियों की जननी भी रही हैं । उदाहरणार्थ, गंगा का उद्गम एक हिमानी ही है । हिमानियों का मुख्य कार्य नई घाटियों की रचना करने के बजाय पुरानी घाटियों का रूप-परिवर्तन होता है । वे छोटे-बड़े शिलाखंडों को अपने साथ बहाकर तथा अपने प्रवाह-क्षेत्र को रगड़कर उसका सारा दृश्य ही बदल देती हैं ।

सागर की करतूत

भूपृष्ठ के विध्वंस-निर्माण के दोहरे यज्ञ में सागर भी बहुत महत्व का योग देता है । इसका जीवित साक्षी स्थलमंडल के साथ उसे मिलानेवाला हजारों किलोमीटर लंबा उसका कटा-फटा तट है । यह हम सभी को मालूम है कि सागर किस प्रकार अपनी उत्ताल तरंगें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उभाड़कर तटवर्ती स्थलखंड पर निरंतर आक्रमण करता हुआ उसे चाट जाने की कोशिश में रहता है ! साथ ही यह भी किसीसे छिपा नहीं है कि किस प्रकार स्वयं स्थल भी नदियों द्वारा बहाकर लायी जानेवाली मिट्टी, बालू आदि की अमित राशि तथा तटवर्ती चट्टानों की चूरचार को सागर में डालकर उसे पाटते रहने के प्रयत्न में संलग्न रहता है ।

समुद्रजल द्वारा स्थल के विखंडन की क्रिया

सागर द्वारा स्थल के विखंडन की क्रिया चार प्रकार से होते पाई जाती है——१. हथौड़े या घन की तरह लहरों की अनवरत चोट से तटवर्ती चट्टानों के विदीर्णीकरण के रूप में; २. लहरों द्वारा निरंतर उछाल-उछालकर तटवर्ती कगार के पृष्ठ पर पटके जानेवाले चट्टानी चूरचार के घर्षण से उत्पन्न स्थलभंजन की प्रक्रिया के रूप में; ३. उस चूरचार के पदार्थ के पिस-पिसकर अधिकाधिक बारीक कणों की शक्ल में परिवर्तित होने की क्रिया-प्रक्रिया के रूप में, जिसका कि परिणाम अंततोगत्वा तटवर्ती बालुकाराशि के रूप में सामने आता है; ४. तटवर्ती शिला-पदार्थ पर समुद्रजल की रासायनिक प्रक्रिया के रूप में, जिसका उदाहरण चूने के पत्थरवाले तट-प्रदेश में देखने को मिलता है ।

प्रचंड वेग के साथ चोट करती हुई सागर की लहरों की शक्ति के सामने मजबूत से मजबूत शिलापृष्ठ भी ढह पड़ते हैं । ऐसे कई उदाहरण हैं, जिनके अनुसार सौ-सौ पचास-पचास टन वजन के शिलाखंड तरंगों द्वारा उछालकर सैकड़ों मीटर की ऊँचाई तक दूर पटक दिये गये हैं ! तट पर जहाँ चट्टानों की खड़ी दीवार-सी उपस्थित होगी, वहाँ प्रायः अधिक अवरोध के कारण लहरों का ताण्डव ज्यादा उग्र होगा । यदि चट्टानें अधिक कड़ी हुईं, तो उन्हें कुरेदने में सागर को उतनी आसानी नहीं होगी, जितनी कि मुलायम चट्टानों को चाटते समय होती है । प्रायः स्तरों के बीच की सेंधें और दरारें क्षय-कार्य को आसान बनाने में आक्रामक लहरों के लिए सहायक बन पड़ती हैं । इन सेंधों में घुसकर जल स्तरों को उसी तरह चीर देता है जैसे कि फन्नी लकड़ी की शहतीरों को ! कगारों की निचली पर्तें जल-तरंगों की अनवरत थपेड़ से आहत होकर जर्जरी-भूत हो जाती हैं और उनमें कई खोखले विवर बन जाते हैं । समय बीतते, इन विवरों के ऊपर लटकते हुए

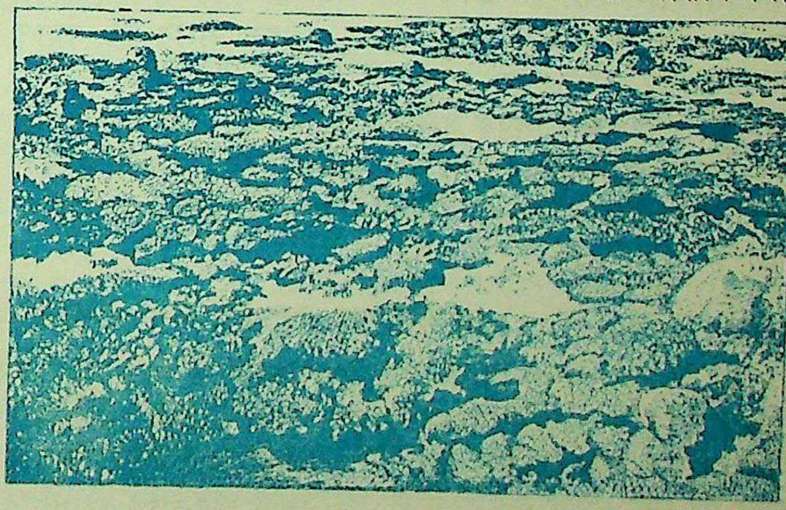

धरती के रूपान्तरीकरण में भाग लेनेवाली शक्तियों में मूँगे जैसे क्षुद्र जलजीव भी महत्व का भाग लेते हैं । ये अपने कलेवरों से ऐसे टापुओं की रचना कर देते हैं, जैसे कि इस चित्र में दिग्दर्शित है । इनसे सैकड़ों किलोमीटर तक समुद्र पट-सा जाता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिलास्तर स्वयं ही अपने बोझ से टूटकर नीचे गिर पड़ते हैं। तब लहरों के लिए उन्हें पूरी तरह विदीर्ण करके अपने साथ बहा ले जाना और भी आसान हो जाता है। कभी-कभी सुदृढ़ शिलाखण्ड लहरों की अनवरत थपेड़ खा-खाकर भी अपना सिर नीचा नहीं झुकाते ! वे नीचे से पूर्णतया जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर भी वृक्षों के पुराने ठूँठों की तरह अपनी जगह पर अड़े रहते हैं ! ऐसी स्थिति में सागर उन्हें जहाँ का तहाँ छोड़कर आस-पास के तट की ओर आजूबाजू से भीतर घुस पड़ता है। तटवर्ती कगारों के ये जर्जराक्रान्त कंकाल अजीब-अजीब रचनाओं के रूप में जल के बीच खड़े देखे जाते हैं। ऐसे अनेक दर्शनीय शिलाखण्ड स्कॉटलैण्ड और आयलैंड के कटावदार समुद्रतट पर विद्यमान हैं !

सागर का रचनात्मक कार्य

स्थल के साथ छिड़े हुए सागर के संग्राम का केवल विध्वंसात्मक पहलू ही नहीं है। उसका एक रचनात्मक पक्ष भी है, जिसके परिणामस्वरूप ऊपर उल्लिखित स्थल-क्षय की पुनः क्षतिपूर्ति होती रहती है। दरअसल, ज्योंही तटवर्ती चट्टानें चूर्ण-चूर्ण होकर ढह पड़ती हैं, त्योंही तट पर सागर के आक्रमण का आरंभिक वेग बहुत-कुछ ठंढा पड़ जाता है। फलतः वही सामग्री, जो कि तट के कटाव के फलस्वरूप स्थल द्वारा जल के हवाले की जा चुकी थी, अब बालू, बजरी और मिट्टी की एक बिछात के रूप में पुनः सागर की छाती पर नई भूमि की रचना करने में जुट जाती है। कुछ ही समय में स्थल अपनी सीमा में घुस आनेवाले सागर को पाटकर पिछली हद तक पहुँचा देता है।

कभी-कभी समुद्र का तला प्रायः स्वयं ही ऊँचा-नीचा हो जाता है और एकदम नवीन द्वीप, पर्वत-शिखर एवं लम्बे-चौड़े दलदली भूभाग उभरकर जल से बाहर निकल आते हैं। इसी तरह कभी-कभी विस्तृत स्थल-भाग भी पानी के भीतर समा जाते हैं। इन घटनाओं से तटवर्ती संधि-रेखा की शक्ल प्रायः बदलती रहती है। उधर नदियाँ भी प्रति क्षण अपरिमित जल के साथ-साथ मिट्टी, बालू, बजरी आदि की महान् राशि सागर के अंचल में उँडेल-उँडेलकर डेल्टा-क्षेत्रों के रूप में नए-नए भूभागों की रचना करती रहती हैं। इनके अतिरिक्त मूँगा जैसे कतिपय जलजीव भी छिछले समुद्रों में अपने कलेवरों द्वारा द्वीपमालाएँ रचकर उक्त क्षेत्रों की भौतिक रूपरेखा को बदल देने में भरपूर योग देते रहते हैं। इस प्रकार जल द्वारा स्थल के विध्वंस के साथ उसके पुनर्निर्माण का भी कार्य संतत जारी रहता है।

आभ्यन्तरिक जल की क्रिया-प्रक्रिया

यह तो तुम जानते ही हो कि शिला-स्तरों में नरम और कड़ी, जल द्वारा भेद्य और अभेद्य एवं विभिन्न रासायनिक खनिजों द्वारा निर्मित भाँति-भाँति की चट्टानें विद्यमान हैं। ये शिला-स्तर एक-दूसरे से संधों और दरारों द्वारा विभाजित हैं। इनकी इस प्रकार की रचना का एक सुफल यह हुआ है कि उनके वक्षःस्थल के भीतर स्थान-स्थान पर जल के अनेक गुप्त भण्डार बन गये हैं। यह जल प्रायः वर्षाजल होता है, जोकि मिट्टी के ऊपरी स्तरों द्वारा सोख लिया जाता है और तब दरारों या संधों की राह से गहराई तक भीतरी चट्टानी स्तरों तक जा पहुँचता है। यह जल कालान्तर में घुलनशील खनिजों को घोलकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उक्त स्तरों में अपने लिए एक खोखला प्रवाह-क्षेत्र-सा बना लेता है। ये प्रवाह-क्षेत्र कभी-कभी बृहत् कंदराओं का रूप ग्रहण कर लेते हैं। ऐसी आभ्यन्तरिक पातालीय कंदराएँ भीतर ही भीतर सेंधों और दरारों द्वारा हजारों किलोमीटर तक एक-दूसरे से संबद्ध होती हैं और उनके बीच एक से दूसरे तक अनेकों जल-प्रणालियाँ जुड़ी रहती हैं। कई एक चट्टानें स्पंज की तरह पानी को सोखकर उससे संपृक्त भी बनी रहती हैं। इस प्रकार धरती के भीतर जल का एक विशाल महाभण्डार बन गया है।

जल की क्रिया-प्रक्रिया से निर्मित ऊपर उल्लिखित कंदराओं में प्रायः चूने की जाति के द्रव्यों से बनी परीलोक की-सी कतिपय पाषाणीय रचनाएँ मिलती हैं, जिन्हें वैज्ञानिकों की बोली में 'स्टेलैक्टाइट' और 'स्टेलैग्माइट' कहते हैं। ये रचनाएँ आभ्यन्तरिक जल में घुले हुए चूने के-से द्रव्यों की जमावट के फलस्वरूप ही बनती रहती हैं। प्रायः इन द्रव्यों को घुलाये रहनेवाला जल तो किसी पातालीय कंदरा की छत पर से टपक-टपककर बह जाता है और उसकी तलछट के रूप में इन घुलनशील खनिज द्रव्यों के अंश उक्त गुफाओं की छतों या फर्शों पर स्तर के ऊपर स्तर जमा हो-होकर एकत्र होते रहते हैं। इस प्रकार जो रचनाएँ बनती हैं, वे ऊपर से लटकते हुए अद्‌भुत झाड़-फानूसों या नीचे खड़े स्तंभों की अनूठी झाँकियाँ उन कंदराओं में दिखाने लगती हैं। ऐसी अनेक नैसर्गिक कंदराएँ योरप तथा अमेरिका में मिलती हैं। इनमें कार्ल्सबाद की गुहाएँ सबसे प्रसिद्ध हैं।

पृथ्वी का यह आभ्यन्तरिक जलभण्डार प्रायः स्रोतों के रूप में अपने पातालीय गर्भालय से ऊपर उमड़कर धरातल पर बह निकलनेवाले ऐसे अनेक छोटे-छोटे नालों और निर्झरों को जन्म देता है, जो कि स्थल का रूप-परिवर्तन करने में लघु रूप में वही काम देते हैं, जो कि नदियाँ बृहत् रूप में किया करती हैं। इस प्रकार चाहे संक्षिप्त ही में सही, फिर भी धरती के भीतर छिपी हुई जल की यह गुप्त राशि उसके रूप-निर्माण के अनुष्ठान में भाँति-भाँति से योग देती रहती है।

वायु द्वारा भूतल का उलटफेर

जल के बाद धरती का रूपान्तरीकरण करनेवाली प्राकृतिक शक्तियों में दूसरा महत्व का स्थान वायु का है। उसका यह काम दो प्रकार से होता है—एक तो एकदम सीधी कार्रवाई द्वारा स्थलमंडल के खुले बदन को निरन्तर अपनी रगड़ से रेत-रेतकर उसे भंजित विखण्डित करके तथा विखण्डित पदार्थ को अपने वेग से दूर-दूर तक स्थानान्तरित करके; दूसरे, परोक्ष रूप से जल की महान् शक्ति को अपने कार्य में सहायता पहुँचाकर। प्रथम प्रकार की सबसे बढ़िया झाँकी सहारा, अरब या राजस्थान की-सी विस्तृत मरुभूमियों में देखने को मिलती है, जहाँ शुष्क धरातल पर बिछी हुई बालू की पर्त में अपने वेग से समुद्री लहरों की-सी तरंगमालाएँ जगाकर वायु निरन्तर उसे उलटते-पलटते रहती है। इस उलटफेर के दौर में बात की बात में ऐसे-ऐसे बालू के टीले या स्तूप बनते-बिगड़ते देखे जाते हैं, जो तीस-चालीस मीटर तक ऊँचे होते हैं! इसके अतिरिक्त समुद्रतटों पर भी रेत को उड़ाकर वायु किनारे की भूमि को पाटते हुए देखी जा सकती है। वायु के झोंकों द्वारा उड़ाये गये रजकण आपस में रगड़ खा-खाकर न केवल स्वयं ही अधिकाधिक सूक्ष्म होते चले जाते हैं, बल्कि अपनी रगड़ और खरोंच द्वारा बड़े-बड़े शिलापृष्ठों को रेगमाल की तरह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रेतते हुए उनको क्षत-विक्षत करने से भी वे चूकते नहीं। वायु द्वारा प्रताड़ित प्रदेशों के अंचल में प्रायः ऐसे अनेकों छिन्न-भिन्न शिलाखण्ड, पर्वत-शिखर, चट्टानों के जर्जरीभूत कंकाल आदि भाँति-भाँति की आकृतियों की झाँकी प्रस्तुत करते हुए देख पड़ते हैं, जो कि वायु के प्रहारों से विमर्दित होकर ही अपनी ये अनोखी शक्ल-सूरतें पा सके हैं !

तुम कहोगे कि वायु की ये सूरतें क्या केवल विध्वंस की क्रिया तक ही सीमित हैं, उनका कोई रचनात्मक पहलू नहीं है ? इसके जवाब में हमें चीन, योरप एवं उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के उन मैदानों पर नजर डालनी होगी, जो हजारों किलोमीटर तक 'लोएस' नामक एक तरह की बारीक कणवाली भूरी-पीली मिट्टी की सैकड़ों मीटर गहरी तहों से आच्छादित हैं। मिट्टी की यह अमित राशि, जिसमें लंबी-लंबी घाटियाँ, दर्रे और उपत्यकाएँ आदि बनी हुई हैं, शताब्दियों से दूर-दूर से उड़ाकर वायु द्वारा वहाँ लाकर जमा कर दी गई है ! चीन की अधिकांश उपजाऊ भूमि इसी मिट्टी द्वारा रचित है। इस पीली मिट्टी के कारण ही चीन की ह्वाँगहो नामक नदी, जो कि उसे बहाकर सागर तक ले जाती है, 'पीली नदी' के नाम से पुकारी है और चीनी सागर का वह अंश भी, जिसमें कि वह गिरती है, इसी की बदौलत 'पीला सागर' कहलाता है।

धरती के रूपान्तरीकरण में भाग लेनेवाली अन्य शक्तियाँ

जल और वायु के अतिरिक्त, अन्य प्राकृतिक शक्तियाँ भी पृथ्वी के रूप-परिवर्तन में अपने-अपने ढंग से हाथ बँटाती हैं। उनका विवरण संक्षेप में निम्न प्रकार से है :—

सूर्य की गरमी— रेगिस्तानी इलाकों में सूर्य की प्रखर किरणों द्वारा चट्टानों की ऊपरी पर्तें बेतरह तप जाती हैं। फलस्वरूप उनके खनिज फूलकर पसर जाते हैं। रात को पुनः शीत का वातावरण छाने पर वही तेजी के साथ ठंढे पड़कर सिकुड़ने भी लगते हैं। इस प्रकार के नितप्रति के ताप के चढ़ाव-उतार के कारण चट्टानों के अवयव काफी ढीले पड़ जाते हैं और उनका शीघ्रता से विखंडन होने लगता है। सूर्य की शक्ति से वायुमंडल में भी अनेक फेरबदल (यथा, बादलों की प्रक्रिया, वर्षा, आँधी-बवंडरों की उपज आदि) होते हैं। ये भी धरातल के विखंडन में सहायक होते हैं। इस प्रकार परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही प्रकार से सूर्य धरती के चिप्पड़ के रूपान्तरीकरण की क्रिया में महत्व का योग देता है। मरुभूमि की बालुकाराशि की उपज में तो मुख्य हाथ सूर्यदेवता का ही है।

भूकंप—यह धरती का रूप-परिवर्तन करनेवाली सबसे उग्र, आकस्मिक और अति रहस्यपूर्ण प्राकृतिक प्रक्रिया है। इसके फलस्वरूप धरातल की ऊपरी और भीतरी सारी व्यवस्था एकदम उलट-पलट जाया करती है और उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता है।

ज्वालामुखी और भाप तथा गरम जल के फव्वारे—ये सभी भूपृष्ठ की रचना में मौलिक परिवर्तन कर देनेवाली पृथ्वी की 'आन्तरिक' अथवा 'भूजनित' शक्तियों के महत्वपूर्ण उपकरण हैं।

उल्कापात और अन्य आकाशीय उपद्रव—आसमान में भ्रमण करनेवाले छोटे-बड़े उल्काओं और धूमकेतुओं के अंग से छूटे हुए धूलिकाकणों की वृहत् राशि समय-समय पर पृथ्वी पर गिरती रहती है। इससे धरातल पर कई प्रकार के उथल-पुथल होते पाये जाते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं। कतिपय स्थानों में उल्काओं के बज्रपात के फलस्वरूप ज्वालामुखियों के क्रेटर जैसे कई किलोमीटर व्यास के गहरे गर्त तक बन गए हैं और आस-पास के चट्टानी स्तर एकदम उलट-पलट-से गए हैं।

विविध प्रकार के जीव, वनस्पति आदि—मूँगा या प्रवाल नामक क्षुद्र जलजीव अपने अनंत कोटि कलेवरों का अंबार रच-रचकर सागर के वक्षः-स्थल पर सैकड़ों-हजारों वर्ग किलो-मीटर क्षेत्र में

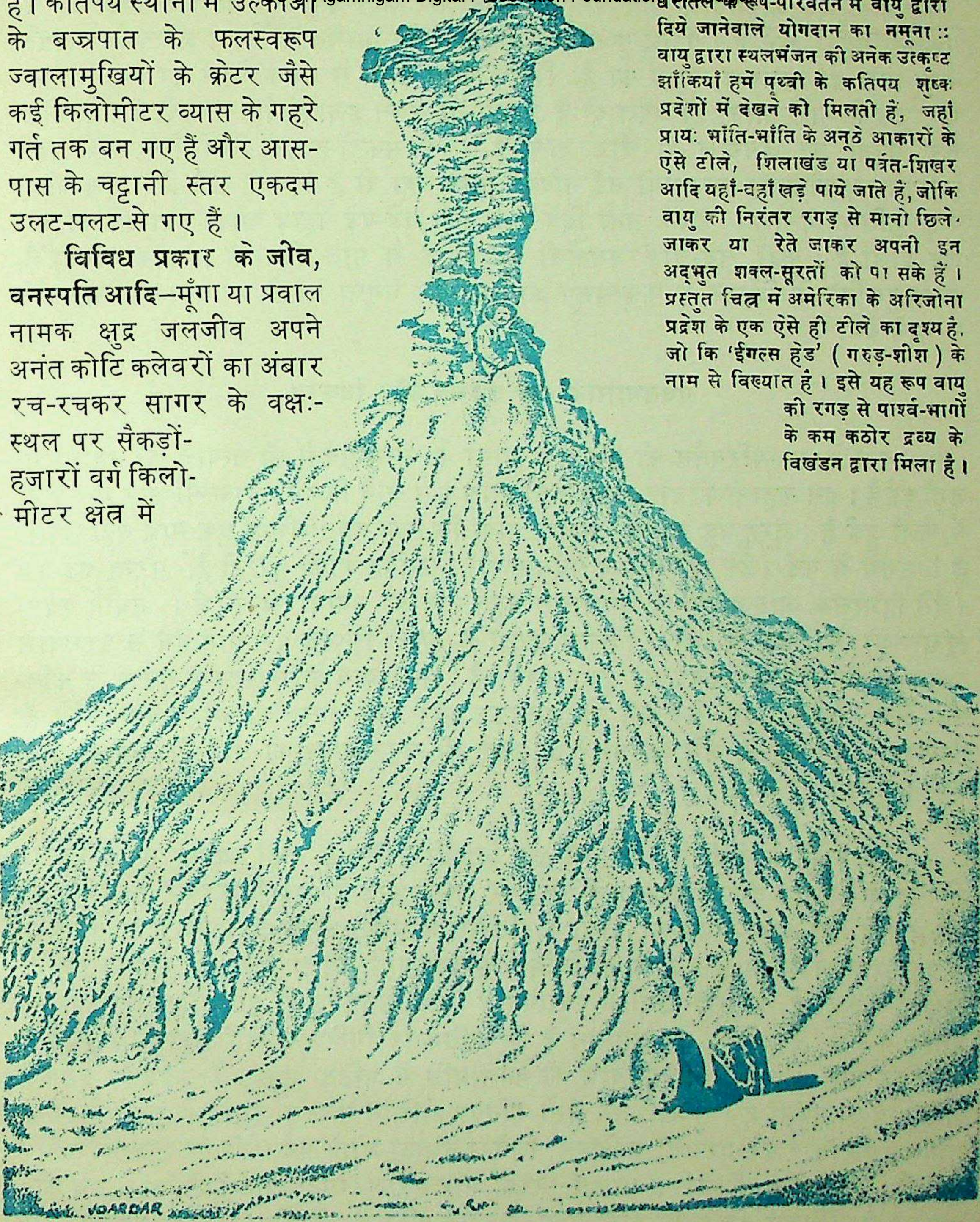

धरातल के रूप-परिवर्तन में वायु द्वारा दिये जानेवाले योगदान का नमूना :: वायु द्वारा स्थलभंजन की अनेक उत्कृष्ट झाँकियाँ हमें पृथ्वी के कतिपय शुष्क प्रदेशों में देखने को मिलती हैं, जहाँ प्रायः भाँति-भाँति के अनूठे आकारों के ऐसे टीले, शिलाखंड या पर्वत-शिखर आदि यहाँ-वहाँ खड़े पाये जाते हैं, जोकि वायु की निरंतर रगड़ से मानो छिले जाकर या रेते जाकर अपनी इन अद्भुत शक्ल-सूरतों को पा सके हैं। प्रस्तुत चित्र में अमेरिका के अरिजोना प्रदेश के एक ऐसे ही टीले का दृश्य है, जो कि 'ईगल्स हेड' (गरुड़-शीश) के नाम से विख्यात है। इसे यह रूप वायु की रगड़ से पार्श्व-भागों के कम कठोर द्रव्य के विखंडन द्वारा मिला है।

द्वीप-शृंखलाओं की रचना करते पाये जाते हैं। उधर कई पौधों की जड़ें भी चट्टानी स्तरों की दरारों और सेंधों में घुसकर उन्हें ढीला कर देतीं और विखंडन की क्रिया को अधिक वेग-वती बना देती हैं। इससे तुम समझ सकते हो कि धरातल का रूप-परिवर्तन करने में जल,

वायु आदि जड़ शक्तियों के साथ-साथ वनस्पति और जीव-जंतु जैसी चेतन शक्तियों का भी कितना गहरा हाथ है। परन्तु पृथ्वी का रूप-परिवर्तन करनेवाली चेतन शक्तियों में सबसे बड़ा हाथ तो आजकल मनुष्य का है, जिसने भाँति-भाँति से उसके चेहरे को बना-बिगाड़कर उसकी सारी झाँकी ही बदल दी है। कहीं तो उसने हजारों मीटर गहरी खदानें खोदकर धरती का अंतराल ही चीर डाला है! कहीं सैकड़ों-हजारों किलोमीटर लंबी नहरें बनाकर उसकी सतह पर मानो नई नदियाँ उसने बहा दी हैं! कहीं ऊँचे-ऊँचे बाँध बाँधकर कृत्रिम जलाशय उसने बना दिये हैं! कहीं बड़े-बड़े पहाड़ खोदकर धरती का अंग छेद डाला है। कहीं लंबे-चौड़े जलक्षेत्रों को मिट्टी से पाट दिया है। कौन जानता है, परमाणुशक्ति के विकास के फलस्वरूप आगे चलकर मनुष्य धरती पर क्या-क्या परिवर्तन न लाने देगा!

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर्वतमालाओं का उद्भव और विकास

धरती के रूप-परिवर्तन की इस लंबी गाथा के साथ पर्वतों की उत्पत्ति की कहानी भी जुड़ी हुई है। इस कहानी की डोर पृथ्वी के इतिहास के न जाने कितने महाकल्पों और मन्वन्तरों में फैली हुई है। तुम्हें यह जानकर अचंभा होगा कि सभी पर्वतश्रेणियाँ एक साथ नहीं उपजी हैं! उनमें से कई (जैसे अपेलेशियन पर्वतमाला) निस्संदेह काफी पुरानी हैं, परन्तु कई एक (जैसे हिमालय, आल्प्स आदि) अपेक्षाकृत बहुत बाद की नवीन रचनाएँ हैं। नवीन पर्वत-श्रृंखलाओं का उद्भव और विकास धरती के ऊपरी चिप्पड़ पर आड़ ढंग से पड़नेवाले दबाव के कारण समय-समय पर हुआ करता है। इस दबाव के फलस्वरूप भूपृष्ठ के कतिपय क्षेत्र लँबोतरे ढंग से कहीं तो उभड़कर और कहीं भीतर की ओर दबकर, वैसे ही शिकनदार बन गए हैं, जैसे कि चमड़े या रबड़ की सतह बगल की ओर से दबाव पड़ने पर आकुंचित हो जाती है।

भूवैज्ञानिकों ने पृथ्वी पर ऐसे कई क्षेत्र निर्धारित किए हैं, जहाँ व्यापक रूप से चिप्पड़ की चट्टानें दर्शनीय ढंग से धरातल में से ऊपर उभड़ आई हैं एवं सिकुड़कर आकुंचित हो गई हैं। ये क्षेत्र समय-समय पर पृथ्वी के इतिहास में घटित अनेक हड़कंपकारी भूव्यतिक्रमों के फलस्वरूप पैदा हुए हैं। आज जो विविध पर्वतश्रेणियाँ हमें धरातल को सुशोभित करते दिखाई दे रही हैं, वे इन्हीं क्षेत्रों में स्थापित हैं तथा उनके उन्हीं पूर्वकालिक हड़कंपों का प्रसाद वे हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अधिकतर गिरिश्रृंखलाएँ करोड़ों वर्ष पूर्व के जुरासिक तथा टर्टिएरी युगों के बीच की कालावधि में घटित भूपृष्ठ के प्रलयंकर हड़कंपों के फलस्वरूप उपजी हैं। अपेलेशियन जैसी कतिपय श्रेणियाँ संभवतः इससे भी पूर्व के युगों की होंगी। मोटे तौर पर एटलस, कॉकेशश, सिएरा नेवादा आदि पर्वतश्रेणियाँ उत्तर-जुरासिक युग की; पिरैनीज, दिनारिक आल्प्स, रॉकी और एंडीज आदि उत्तर-क्रिटेशियश युग की; आल्प्स, कार्पेथियन, हिमालय आदि मध्य और पूर्व-टर्टिएरी युग की; तथा शिवालिक जैसी उपश्रेणियाँ उत्तर-टर्टिएरी युग की उपज कही जा सकती हैं। इन पर्वतश्रेणियों के उन्नत श्रृंग एवं गहरी घाटियाँ तथा उपत्यकाएँ, जो हमें इस समय देखने को मिलती हैं, बाद की उपज हैं। वे जल, वायु, तुषार, आदि पूर्वोल्लिखित प्राकृतिक शक्तियों की करतूतें हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh